—: अनुक्रमणिका :—

प्रकाशकीय

हिन्दी पद सग्रह के प्रकाशन के कुछ मास पश्चात् ही 'जिणदत्त चरित' को पाठको के हाथो मे देते हुए अतीव प्रसन्नता है। 'जिणदत्त चरित' हिन्दी साहित्य की आदिकालिक कृति है और इसके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक नया अध्याय जुड सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके पूर्व साहित्य शोध विभाग की ओर से 'प्रद्युम्न चरित' का प्रकाशन किया जा चुका है। इस प्रकार हिन्दी के दो आदिकालिक एव अज्ञात काव्यो की खोज एव प्रकाशन करके साहित्य शोध विभाग ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की महती सेवा की है। दोनो ही कृतिया प्रबन्ध काव्य हैं और हिन्दी के आदिकाल की महत्वपूर्ण कृतिया हैं। प्रद्युम्न चरित का जब प्रकाशन हुआ था तो उसका सभी ओर से स्वागत हुआ था तथा स्व० महापडित राहुल साकृत्यायन, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एव डा० सत्येन्द्र जैसे प्रभृति विद्वानो ने उसकी अत्यधिक सराहना की थी। उसी समय पडित राहुल साकृत्यायन ने तो हमे 'जिणदत्त चरित' को भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की प्रेरणा दी थी लेकिन इसकी एकमात्र प्रति डा० कस्तूरचद कासलीवाल को जयपुर के पाटोदी के मदिर के हस्तलिखित ग्रथो की सूची बनाते समय उपलब्ध हुई थी इसलिए दूसरी प्रति की आवश्यकता थी। इसके पश्चात् इसकी दूसरी प्रति की तलाश करने का भी काफी प्रयास किया गया लेकिन उसमे अभी तक कोई सफलता नही मिली। अत एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर ही इसका प्रकाशन किया जा रहा है। — --

जिणदत्त चरित के सम्पादन मे हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डा० माताप्रसाद जी गुप्त अध्यक्ष हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम आभारी हैं। डा० गुप्त जी की हमारे साहित्य शोध विभाग पर सदैव कृपा रही है। उन्होंने पहिले भी प्रद्युम्न चरित पर प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया था।

रचना का नाम

लिपिकार ने प्रारम्भ में कृति का नाम 'जिणदत्त कथा' तथा अन्त में 'जिणदत्त चउपई' लिखा है। स्वयं कवि भी अपने काव्य के सम्बन्ध में स्थिर मंतव्य नहीं रख सका है। वह भी कभी चरित कभी 'पुराण' एवं कभी 'चउपई' के नाम से रचना का उल्लेख करता है। लेकिन जैन चरित काव्यों में जीवन चरित कथा आख्यायिका तथा धर्म कथा आदि के लक्षणों का समन्वय प्रायः हुआ है। इसलिये चरित-काव्य को कभी धर्म कथा एवं 'पुराण' भी कहते हैं। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर रल्ह कवि ने भी अपने काव्य को चरित 'कथा' एवं 'पुराण' शब्दों से अभिहित किया है। 'चउपई' शब्द का प्रयोग मुख्यतः इसी छन्द में कवि ने अपनी रचना निबद्ध करने के कारण किया है जैसा कि अन्यत्र उल्लिखित चउपई-बन्ध शब्द से प्रकट है[1]। प्रस्तुत काव्य को 'चरित' नाम से कहना ही अधिक उचित रहेगा क्योंकि कवि ने इसे प्रायः 'चरित'[2] ही कहा है और यह (चरित) धार्मिक है इसलिए इसे 'पुराण'[3] भी कहा है।

कवि परिचय

मंगलाचरण सरस्वतीवन्दना एवं अपनी लघुता प्रदर्शित करने के पश्चात् कवि ने अपना परिचय देते लिखा है कि वे जैसवाल जाति के श्रावक

---

१ चरण होइ पुहुन्तरिण भणु जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ॥२४॥
जिणदत्त पूरी भई चउपही पण्डिय होणाधि छमहु सही ॥५५३॥

२ मइ पसाउ स्वामिनि करि तैम जिणदत्त चरितु रचउ हउ जम ॥१६॥
तउ पसाइ णाणु पयर कहउ ता जिणदत्त चरित हउ कहउ ॥१ ॥
पढ जिणदत्त चरित निय चरित्र पढहु मम्मु चुइ गुण समइद ॥५४ ॥

३ हउ पभउ जिणदत्त पुराणु पढिउ न लक्खणु छंद बखाणु ॥२ ॥
मइ जायउ जिणदत्त पुराणु भाणु वि पउ परमु पमाणु ॥५५ ॥

दो

थे [1] । पाटल उनका गोत्र था । कवि के पिता का नाम 'पचऊलीया अभइ' था जो एक स्थान पर 'आते' भी कहा गया है । किन्तु 'आते सभवत अभि ✓ अभड से पाठ-प्रमाद के कारण हुआ है । इनकी माता का नाम 'सिरीया' था [2] । इनके पिता का सभवत. वचपन मे ही स्वर्गवास होगया था और लालन पालन माता ने ही किया था, इसलिये इन्होंने माता के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सिरिया माता ने इनका वडे ही करूणा भाव से पालन किया तथा दश मास तक उदर मे रक्खा जिसकी कृतज्ञता से उऋण होना सभव नही था । इनकी माता धार्मिक विचारो वाली थी । कवि का नाम रल्ह था लेकिन उसके कितने ही छन्दो मे **'राजसिह'** अथवा **राइसिह** भी नाम आए हैं सभवत कवि का नाम **राजसिह** था लेकिन उनका लघु नाम, जिससे वे जन-साधारण मे सम्बोधित किये जाते रहे होगे 'रल्ह' रहा होगा । इसलिये कवि ने अपनी इस कृति मे दोनो ही नामो का उल्लेख किया है । वैसे उस युग मे छोटे नामो का अधिक प्रयोग होता था । वल्ह, पल्ह, बूचा, छीहल, पूनो आदि नाम वडे नामो के ही विकृत नाम हैं जिन्हे कवि ही नही किन्तु जन-साधारण भी प्रयोग मे लाते थे । ग्रथ प्रशस्तियो में ऐसे सैकडो नाम पढने को मिलते है । इसलिये यह निश्चित है कि 'रल्ह और 'राजसिह कवि के ही दो नाम थे ।

---

१ जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ **पाडल** उतपाति ।
पचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥२६॥

जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु ।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह **अभई** कउ पुत्तु ॥५५१॥

२ माता पाइ नमउ ज जोगु, देखालियउ जेहि मत लोगु ।
उवरि माश दश रहिउ धराइ, धम्म वुधि हुइ सिरीया माइ ॥२७॥

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ ।
म उवयारण हुइमउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिणसरणु ॥२८॥

साहित्य शोध विभाग द्वारा खोज एवं प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है और शीघ्र ही "Jain Granth Bhandars in Rajasthan" 'राजस्थानी जैन सन्तों की साहित्य साधना' पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची का पांचवा भाग भी शीघ्र ही तैयार होकर सामने आने वाला है। इसमे ५ हजार से अधिक ग्रंथों का परिचय रहेगा। इस तरह और भी पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। साहित्य शोध विभाग की एक पंचवर्षीय योजना भी क्षेत्र कमेटी के विचाराधीन है। तथा खोज एवं प्रकाशन के कार्य को और भी अधिक गतिशील बनाने का प्रयास जारी है। अभी कुछ समय पूर्व भारतीय ज्ञानपीठ के व्यवस्थापक डा. गोकुलचंद जी जैन जब जयपुर आये थे तब उन्होंने इस सम्बन्ध मे कुछ सुझाव भी दिये थे। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आगामी कुछ ही वर्षों में प्राचीन साहित्य की खोज एवं प्रकाशन तथा अर्वाचीन साहित्य के निर्माण की दिशा में हम पर्याप्त प्रगति कर सकेंगे।

महावीर भवन
१-१२-६५

गैंदीलाल साह एडवोकेट
अवैतनिक मंत्री

भूमिका

"जिणदत्तचरित" की उपलब्धि डा० कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची बनाते समय हुई थी। इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सगृहीत है। गुटके का आकार ६½"x८" है। इसमे ३४ पत्र हैं। प्रथम १३ पत्रो मे 'जिणदत्त चरित' लिखा हुआ है। शेष २१ पत्रो मे अन्य छोटी १३ रचनाओ का सग्रह है। ये कृतियाँ सवत् १७४३ मगसिर बुदी ७ से लेकर सवत् १७७० तक लिपिबद्ध हुई है। 'जिणदत्त चरित' का 'लेखन काल स १७५२ कार्तिक सुदी ५ शुक्रवार'[1] है। यह प्रति पालम निवासी पुष्करमल के पुत्र महानद द्वारा लिखी गई थी जो पञ्चमीव्रत के उद्यापन के निमित्त व्रतकर्ता की ओर से साहित्य- जगत् को भेंट दी गयी थी। प्रति कागज पर लिखी हुई है। लिपि सामान्यत स्पष्ट है। प्रत्येक पृष्ठ पर सामान्यत ३२ पंक्तियाँ तथा प्रति पक्ति मे इतने ही अक्षर हैं। लेकिन प्रारम्भ के ३ पत्र मोटी लिपि में लिखे हुये हैं। इसी तरह अन्तिम पत्रो मे लिपि किंचित् पतली हो गयी है। गुटके के पत्रो का एक छोर टेढा कटा हुआ है जिससे कुछ अक्षर कट भी गये है।

---

१ स १७५२ वर्षे कार्तिक सुदि ५ शुक्रवासरे लिखित महानद पालव निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृश पुस्तकं दृष्ट्वा, तादृश लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्ध वा, मम दोषो न दीयते॥

शुभ भवेत् लेखकाध्यापकयो' ।श्रीरस्तु।
पचमीव्रतोपमनिमित्त ।शुभ।

रचना का नाम

लिपिकार ने प्रारम्भ में कृति का नाम 'जिणदत्त कथा' तथा अन्त में 'जिणदत्त चउपई' लिखा है। स्वयं कवि भी अपने काव्य के सम्बन्ध में स्थिर मतव्य नहीं रख सका है। वह भी कभी चरित कभी 'पुराण' एवं कभी 'चउपई' के नाम से रचना का उल्लेख करता है। लेकिन जैन चरित काव्यों में जीवन चरित कथा आख्यायिका तथा धर्म कथा आदि के लक्षणों का समन्वय प्राय: हुआ है। इसलिये चरित-काव्य को कभी धर्म 'कथा' एवं 'पुराण' भी कहते हैं। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर रल्ह कवि ने भी अपने काव्य को 'चरित' 'कथा' एवं 'पुराण' शब्दों से अभिहित किया है। 'चउपई' शब्द का प्रयोग मुख्यत: इसी छन्द में कवि ने अपनी रचना निबद्ध करने के कारण किया है जैसा कि अन्यत्र उल्लिखित चउपई-बन्ध शब्द से प्रकट है[1]। प्रस्तुत काव्य को 'चरित' नाम से कहना ही अधिक उचित रहेगा क्योंकि कवि ने इसे प्राय: चरित[2] ही कहा है और यह (चरित) धार्मिक है इसलिए इसे पुराण[3] भी कहा है।

कवि परिचय

मंगलाचरण सरस्वतीवन्दना एवं अपनी लघुता प्रदर्शित करने के पश्चात् कवि ने अपना परिचय देते लिखा है कि वे जैसवाल जाति के श्रावक

---

१ अन्य होइ कुरुम्तगि अणु जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ॥२६॥
जिणदत्त पूरी भई चउपही अप्पन होएमि छड्डमइ नहीं ॥५५३॥

२ मइ पसाउ स्वामिणि करि देम जिणदत्त चरितु रचउ हउं जेम ॥१६॥
तउ पसाइ णाण पयर लहउ ता जिणदत्त चरित हउ कहउ ॥१ ॥
कर जिणदत्त चरित मिथ चहिउ पभुइ पम्मु घुं गुरु नमहुं ॥५४ ॥

३ हउ अगउ जिणदत्त पुराणु पढिउ न लगण छर वखाण ॥२ ॥
पर चायउ जिणदत्त पुराणु भागु विणयउ पदमु नमाण ॥५५ ॥

दा

थे [1]। पाटल उनका गोत्र था। कवि के पिता का नाम 'पचऊलीया अभइ' था जो एक स्थान पर 'आते' भी कहा गया है। किन्तु 'आते सभवत अभि ⁄_ अभड से पाठ-प्रमाद के कारण हुआ है। इनकी माता का नाम 'सिरीया' था [2]। इनके पिता का सभवत बचपन मे ही स्वर्गवास होगया था और लालन पालन माता ने ही किया था, इसलिये इन्होंने माता के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सिरिया माता ने इनका बडे ही करुणा भाव से पालन किया तथा दश मास तक उदर मे रक्खा जिसकी कृतज्ञता से उऋण होना सभव नही था। इनकी माता धार्मिक विचारो वाली थी। कवि का नाम रल्ह था लेकिन उसके कितने ही छन्दो मे 'राजसिह' अथवा राइसिह भी नाम आए हैं सभवत कवि का नाम राजसिह था लेकिन उनका लघु नाम, जिससे वे जन-साधारण मे सम्बोधित किये जाते रहे होंगे 'रल्ह' रहा होगा। इसलिये कवि ने अपनी इस कृति मे दोनो ही नामो का उल्लेख किया है। वैसे उस युग मे छोटे नामो का अधिक प्रयोग होता था। वल्ह, पल्ह, बूचा, छीहल, पूनो आदि नाम बडे नामो के ही विकृत नाम हैं जिन्हे कवि ही नही किन्तु जन-साधारण भी प्रयोग मे लाते थे। ग्र थ प्रशस्तियो में ऐसे सैकडो नाम पढने को मिलते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि 'रल्ह और 'राजसिह कवि के ही दो नाम थे।

---

१ जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ पाडल उतपाति।
पचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥२६॥
जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह अभई कउ पुत्तु ॥५५१॥

२ माता पाइ नमउ ज जोगु, देखालियउ जेहि मत लोगु।
उवरि माश दश रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ ॥२७॥
पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
म उवयारण हुइसउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिण सरणु ॥२८॥

रचनाकाल

हिन्दी के आदिकाल की कृतियों में 'जिणदत्त चरित' ऐसी इनी-गिनी कृतियों में से है जिसमे स्वयं कवि ने रचनाकाल का उल्लेख किया हो। इस दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है। रल्ह कवि ने इस काव्य को संवत् १३५४ (सं १२९७) भादवा सुदि ५ गुरुवार के दिन समाप्त किया था[1]। उस दिन चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर था तथा तुला राशि थी। भारत पर उन दिनों अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२९६-१३१६) का शासन था। कवि ने उस समय की राजनैतिक अवस्था का कोई उल्लेख नही किया है। संभवत उसने शासन के पक्ष-विपक्ष में लिखना ही उचित नही समझा।

पद्य प्रमाण

कवि ने काव्य के तीन स्थलो पर पद्यो की संख्या का भी उल्लेख किया है। अन्तिम दो पद्यों म पद्यों की सख्या क्रमश ५४३ व ५४४ भी कही है[2] जबकि प्रतिलिपि कार ने इन पद्यों की सख्या ५५१ दी है। असंभव नही कि मूल के छंदों को प्रतिलिपिकारों ने तोड़ तोड़ कर पढा हो इसलिए भी छन्द-सख्या में कुछ वृद्धि हो गई हो। अन्य कारण भी संभव है। अत छन्द-प्रमाण हमें कवि द्वारा दिया हुआ ही स्वीकार करना चाहिए। लेकिन वे पद्य कौन से है जो बाद मे बढा दिये गये है इसका निर्णय तब तक नही हो सकता जबतक इस रचना की दूसरी प्रति उपलब्ध न हो।

कथा का आधार

सेठ जिनदत्त की कथा जैन समाज मे बहुत प्रिय रही है। इस कथा

---

१ संवत तेरहसै चउवण्णे भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे।
स्वाति नखत्तु, चंदु तुलहती कवइ रल्हु पणवइ सरसती ॥ ६॥

२ गय सत्तावन सहसम माहि (५५२)
छन्दन हीणहि सहसम नही (५५१)

पर प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श एव हिन्दी आदि सभी भापाओ मे कृतिया मिलती है। 'अभिवान राजेन्द्र' कोश मे इस कथा का उद्भव प्राकृत भाषा मे निवद्ध आवश्यक कथा एव आवश्यक चूर्णि ग्रथो मे वतलाया गया है[1]। यह कथा वहाँ चक्षुरिन्द्रिय के प्रसग पर कही गयी है क्योकि जिनदत पाषाण की पुतली को देखकर ही ससार की ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राकृत भापा मे एक और रचना नेमिचन्द्र के शिष्य सुमति गणि की भी मिलती है[2]। सस्कृत भापा मे जिनदत्त चरित्र आचार्य गुणभद्र का मिलता है। यह एक उत्तम काव्य है और जिनदत्त के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालने वाली एक सुन्दर कृति है। यह माणकचन्द्र दि० जैन ग्रथमाला से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके पश्चात् अपभ्र श भापा मे 'जिणयत्त कहा' की रचना करने का श्रेय कविवर लाखू अथवा लक्ष्मण को है जिन्होने उसे सवत् १२५७ मे समाप्त की थी[3]। अपभ्र श भापा मे रचित यह रचना जैन-समाज मे अत्यधिक प्रिय रही है अत ग्रथ भण्डारो मे इस ग्रथ की कितनी ही प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। इसमे ११ सधियाँ हैं और जिनदत्त के जीवन पर सुन्दर काव्य रचना की गई है। हमारे कवि रल्ह अथवा राजसिंह ने लाखू कवि द्वारा विरचित 'जिणयत्त कहा' अथवा 'जिणयत्त चरित' के आधार पर नवीन रचना का सर्जन किया जिसका उल्लेख उन्होने अपने काव्य के अन्त मे वडे आभार पूवक किया है[4]। रल्ह कवि ने लाखू कवि द्वारा विरचित

---

१ वसन्तपुरे नगरे वसन्तपुरस्थे स्वनामख्याते श्रावके, आ क ।
वसन्तपुरे नगरे जियसत्तू राया जिणदत्तो सेट्ठी, आव, ५ अ ।
आ चू (तत्कथा चक्षुरिन्द्रियोदाहरणे चक्खदिय शब्दे तृतीय भागे-
११०५ पृष्ठे काउसग्गा शब्दे ४२७ पृष्ठे च प्ररूपिता) पृष्ठ सख्या १४६२

२ देखिये जिनरत्न कोश – पृष्ठ सख्या- १३५

३ देखिये डा० कासलीवाल द्वारा सपादित- प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ सख्या-१०१

४ मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइम पमाणु ।
देखि विनूरु रयउ फुडु एहु, हत्यालवण वुहयण देहु ॥५५०॥

रचना को 'जिणदत्त पुराण' के नाम से सम्बोधित किया है। रल्ह कवि के पश्चात् भी १५ वी शताब्दी में दो विद्वानों ने जिनदत्त के जीवन पर अलग अलग कृतियां लिखी। इनमें प्रथम महापंडित रइधू हैं जो अपभ्रंश के भारी विद्वान थे तथा उस भाषा में रचना करना गौरव समझते थे। इसी शताब्दी में गुणसमुद्र सूरि ने संस्कृत गद्य में संवत् १४६४ में जिनदत्त कथा लिखी। इसके पश्चात् २० वी शताब्दी में पन्नालाल चौधरी ने जिनदत्त चरित्र वचनिका एवं बख्तावर सिंह ने जिनदत्त चरित्र भाषा (छन्द बद्ध) लिखा। इस प्रकार श्रेष्ठि जिनदत्त की कथा प्राय प्रत्येक युग में लोकप्रिय रही है और जैन विद्वान उसके जीवन पर एक न एक रचना लिखते आ रहे हैं। रल्ह कवि द्वारा रचित जिणदत्त चरित' पूर्वापर समय के अनुसार चतुर्थ रचना है इस दृष्टि से भी रचना का महत्व है। रल्ह की रचना के अनुसार जिनदत्त की जीवन-कथा निम्न प्रकार है —

कथा सार

(११ से ६५) जिनदत्त बसंतपुर के सेठ जीवदेव का इकलौता पुत्र था। उसकी माता का नाम जीवनसा था। उस समय बसंतपुर पर चन्द्रशेखर नाम का राजा राज्य करता था। जीवदेव नगर सेठ था और उसकी सम्पत्ति का कोई पार नहीं था। जिनदत्त को खूब लाड प्यार से पाला गया था। १२ वर्ष की अवस्था में उसे पढ़ने के लिये उपाध्याय के पास भेजा गया। वहां उसने लक्षण ग्रन्थ छन्द शास्त्र तर्क शास्त्र व्याकरण रामायण एवं महा-पुराण पढ़े। इसके पश्चात् उसे अन्य कलायें सिखलाई गई।

(६६ से ७९) युवा होने पर जब उसने विवाह करने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की तो सेठ को बहुत चिन्ता हुई। सेठ ने नगर के जुआरियों एवं लंपटों को बुलाया और जिनदत्त को मार्ग पर लाने का उपाय करने के लिये कहा। अब जिनदत्त जुआरियो की संगति में रहने लगा और नगरवधुओं के पास जाने लगा लेकिन फिर भी उसका मन उनकी ओर नहीं झुका।

(७७ से १०५) एक दिन वह नन्दन वन गया और वहाँ उसने एक पाषाण की पुतली को देखा और उसकी सुन्दरता की प्रशसा करने लगा। अब वह भी ऐसी ही किसी सुदरी से विवाह करने की इच्छा करने लगा। जुवारियो ने जिनदत्त को जब इस मन स्थिति मे सेठ को लौटाया तो सेठ बडा प्रसन्न हुआ। जुवारियो ने सेठ से अपार धन प्राप्त किया। शिल्पकार को बुलाकर सेठ ने पूछा कि यह प्रतिमा किस स्त्री की थी। शिल्पकार ने बताया कि यह चपापुरी के नगर सेठ विमलसेठ की कन्या विमलामती की प्रतिमा थी। सेठ ने चित्रकार से अपने पुत्र जिनदत्त का चित्र उतरवाया और एक ब्राह्मण को वह चित्र देकर चपापुर भेजा।

(१०६ से १२७) विमलसेठ उस चित्र को देखकर एव माता पिता के सम्बन्ध मे जानकारी कर विमलामती का विवाह जिनदत्त के साथ करने की स्वीकृति देदी। वसन्तपुर से बडी धूम धाम से बारात चम्पापुर के लिये रवाना हुई। बारात मे हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि सभी थे। दोनो का विवाह हो गया और बारात वसन्तपुर लौट आई। जिनदत्त और विमलामती सानन्द रहने लगे।

(१२८ से १४५) एक दिन पालकी मे बैठकर जिनदत्त चैत्यालय जा रहा था कि उसकी जुवारियो से भेंट हो गयी। उन्होने जिनदत्त को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया। जिनदत्त उनकी बात टाल न सका। वह जुआ खेलने लगे और जिनदत्त उसमे ११ करोड़ द्रव्य हार गया। जिनदत्त जब दाँव हार कर घर जाने लगा तो जुवारियो ने उसे बिना रुपया चुकाये जाने नही दिया। जिनदत्त ने अपना आदमी अपने पिता के भण्डारी (मुनीम) के पास भेजा लेकिन उसने जुआ में हारे हुये रुपयो को चुकाने से मना कर दिया। आखिर उसे विमलावती की काँचली ६ करोड रुपयो मे बेचनी पडी। जिनदत्त को इससे अत्यधिक दु ख हुआ। वह घर आकर विदेश जाकर धन कमाने की सोचने लगा।

(१४६ से १५८) इसी समय उसने एक चाल चली और एक झूठा पत्र अपने श्वसुर के यहाँ से मगा लिया जिसमे उसको बुलाने के लिये लिखा

मात

हुआ था। जिनदत्त एवं विमलामती चंपापुरी के लिये चल दिये। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी। विमल सेठ ने उनका अच्छा सत्कार किया। लेकिन ४–५ दिन पश्चात् ही वह उस विमलामती को चैत्यालय में अकेली छोड़कर दसपुर के लिये रवाना हो गया। पति के वियोग में विमलामती अत्यधिक रुदन करने लगी और उसके लौटने तक वह वहीं चैत्यालय में रहने लगी।

(१५१ से १७६) जिनदत्त दसपुर नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचा तो वहाँ के उद्यान को देखने लगा। इतने में ही वहाँ नगर सेठ सागरदत्त आया। इधर वह बागीचा जिनदत्त के आगमन से हरा होने लगा। हरी बाडी को देखकर सागरदत्त प्रसन्न हो गया और उसने जिनदत्त से उस बाडी को सुवासित एवं फलयुक्त करने को कहा। जिनदत्त ने शीघ्र ही अंजलि का जल उन पेड़ों में सिंचन किया और वे शीघ्र ही हरे एवं फलवान हो गये। अब वहाँ आम नारंगी छुहारा दाख इलायची जामुन आदि के वृक्ष लहलहाने लगे। सागरदत्त उसके इन कार्यों से बड़ा प्रभावित हुआ और उसे अपने घर ले जाकर अपना धर्म-पुत्र घोषित कर दिया।

(१७७से१ ९) कुछ समय पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेशयात्रा पर रवाना हुआ। उनके साथ नगर के अनेक व्यापारी एवं १२ हजार बैलों का टांडा था। वे जहाजों में सामान लादकर चले।

(१९ से२) उन्हें समुद्र-यात्रा का ज्ञान था। वे हवा के प्रवाह को देखकर चलते थे। बेलाउलनगर को छोड़ कर वे कमरण द्वीप में पहुँचे। वहाँ से कंचणपाटन चलकर पुरुखलपुर पहुँचे और मदनद्वीप में होकर वे पाडल तिलक द्वीप में पहुँचे। शीघ्र ही वे लहुआवती नगरी को छोड़कर कोकणनगरी में प्रवेश किया। फिर वहाँ के कितने ही द्वीपों को पार करते हुये सिंहल द्वीप पहुँचे। वहाँ वे अनेक वस्तुओं का क्रय विक्रय करने लगे। वे अपनी वस्तुओं को तो महँगा बेचने एवं सस्ते भावों से वहाँ की वस्तुओं को खरीदने।

(२०१से२१६) सिंघल द्वीप का उस समय घनवाहन नाम का सम्राट था। उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जो एक भयकर व्याधिसे पीडित थी। जो भी व्यक्ति रात्रि को उसका पहरा देता था, वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। इस कार्य के लिये राजा ने पहरे पर भेजने के लिये प्रत्येक परिवार को अवसर बाँट रक्खा था। उस दिन एक मालिन के इकलौते पुत्र की वारी थी, इसलिये वह प्रात काल से ही रो रही थी। जिनदत्त उसके करुण विलाप को नही सह सका और उसके पुत्र के स्थान पर राजकुमारी के पास स्वय जाने को तैयार हो गया।

(२१७से२३२) सायकाल को जव वह जिनदत्त राजा की पीडित कन्या के पास पहरा देने गया, तो राजा उसे देखकर वडा दुखित हुआ और राजकुमारी की निंदा करने लगा। जिनदत्त राजकुमारी से मिला। राजकुमारी ने उसके रूप, यौवन एव आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। वे वातचीत करने लगे और इसी वीच मे राजकुमारी को निद्रा आगयी। वातचीत के समय जिनदत्त ने उसके मुँह मे एक सर्प देख लिया। जव राजकुमारी सो गई, तो वह श्मशान मे जाकर एक नर-मु ड उठा लाया और उसे राजकुमारी की खाट के नीचे रख दिया और तलवार हाथ मे लेकर स्वय वही छिप गया। रात्रि को राजकुमारी के मुख मे से वह भयकर काला सर्प निकला। वह नर मुड के पास जाकर उसे डसने लगा। जिनदत्त ने जव यह देखा तो उसने सर्प को पूछ पकड कर घुमाया, जिससे वह व्याकुल होगया और फिर उसे पोटली मे वाँध कर निशक सोगया।

(२३३से२३९) प्रात होने पर राजा को जिनदत्त के जीवित रहने के समाचार मालूम पडे तो वह तुरन्त ही कुमारी के महल मे आया और सारी स्थिति से अवगत हुआ। राजा ने श्रीमती के साथ जिनदत्त का विवाह कर दिया। कुछ दिनो तक वे दोनो वही सुखपूर्वक रहे और जव जलयान चलने लगा तो वह भी राजा से आज्ञा लेकर श्रीमती के साथ रवाना हुआ। राजा ने विदा करते हुये उसे अपार सम्पत्ति दी।

नौ

हुआ था। जिनदत्त एवं विमलामती चंपापुरी के लिये चल दिये। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी। विमल सेठ ने उनका अच्छा सत्कार किया। लेकिन ४-५ दिन पश्चात् ही वह उस विमलामती को चैत्यालय में अकेली छोड़कर बसपुर के लिये रवाना हो गया। पति के वियोग मे विमलामती धर्मध्यान करने लगी और उसके लौटने तक वह वहीं चैत्यालय में रहने लगी।

(१५१ से १७६) जिनदत्त बसपुर नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचा तो वहाँ के उद्यान को देखने लगा। इतने मे ही वहाँ नगर सेठ सागरदत्त आया। इधर वह बगीचा जिनदत्त के आगमन से हरा होने लगा। हरी वाडी को देखकर सागरदत्त प्रसन्न हो गया और उसने जिनदत्त से उस बाडी को सुवासित एवं फलयुक्त करने को कहा। जिनदत्त ने शीघ्र ही प्रयास कर उन पेड़ों में सिंचन किया और वे शीघ्र ही हरे एवं फलवान हो गये। अब वहाँ आम नारंगी छुहारा दाख इलायची जामुन आदि के वृक्ष लहलहाने लगे। सागरदत्त उसके इस कार्यों से बड़ा प्रभावित हुआ और उसे अपने घर ले जाकर अपना धर्म-पुत्र घोषित कर दिया।

(१७७से१ १) कुछ समय पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेशयात्रा पर रवाना हुआ। उनके साथ नगर के अनेक व्यापारी एवं १२ हजार बैलों का टांडा था। वे जहाजों मे सामान लादकर चले।

(११ सेर) उन्हें समुद्र-यात्रा का ज्ञान था। वे हवा के प्रवाह को देखकर चलते थे। देशान्तर को छोड़ कर वे कवाड़ द्वीप में पहुँचे। वहाँ से गंगापाटन चलकर कुम्भलपुर पहुँचे और मदनद्वीप मे होकर वे पावल तिलक द्वीप मे पहुँचे। शीघ्र ही वे सहजावती नगरी को छोड़कर लोकनगरी में प्रवेश किया। फिर वहाँ के कितने ही द्वीपों को पार करते हुये सिंहल द्वीप पहुँचे। वहाँ वे अनेक वस्तुओं का क्रय विक्रय करने लगे। वे अपनी वस्तुओं को तो महँगा बेचते एवं सस्ते भावो से वहाँ की वस्तुओं को खरीदते।

(२०१मे२१६) सिंघल द्वीप का उस समय धनवाहन नाम का सम्राट था। उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जो एक भयकर व्याधिमे पीडित थी। जो भी व्यक्ति रात्रि को उसका पहरा देता था, वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। इस कार्य के लिये राजा ने पहरे पर भेजने के लिये प्रत्येक परिवार को अवसर बांट रक्खा था। उस दिन एक मालिन के इकलौते पुत्र की वारी थी, इसलिये वह प्रात काल से ही रो रही थी। जिनदत्त उसके करुण विलाप को नही सह सका और उसके पुत्र के स्थान पर राजकुमारी के पास स्वय जाने को तैयार हो गया।

(२१७मे२३२) सायकाल को जव वह जिनदत्त राजा की पीडित कन्या के पास पहरा देने गया, तो राजा उसे देखकर बडा दुखित हुआ और राजकुमारी की निंदा करने लगा। जिनदत्त राजकुमारी से मिला। राजकुमारी ने उसके रूप, यौवन एव आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। वे वातचीत करने लगे और इसी बीच मे राजकुमारी को निद्रा आगयी। वातचीत के समय जिनदत्त ने उसके मुँह मे एक सर्प देख लिया। जव राजकुमारी सो गई, तो वह श्मशान मे जाकर एक नर-मुड उठा लाया और उसे राजकुमारी की खाट के नीचे रख दिया और तलवार हाथ मे लेकर स्वय वही छिप गया। रात्रि को राजकुमारी के मुख मे से वह भयकर काला सर्प निकला। वह नर मुड के पास जाकर उसे डसने लगा। जिनदत्त ने जव यह देखा तो उसने सर्प को पूछ पकड कर घुमाया, जिससे वह व्याकुल होगया और फिर उसे पोटली मे बांध कर नि शक सोगया।

(२३३से२३९) प्रात होने पर राजा को जिनदत्त के जीवित रहने के समाचार मालूम पडे तो वह तुरन्त ही कुमारी के महल मे आया और सारी स्थिति से अवगत हुआ। राजा ने श्रीमती के साथ जिनदत्त का विवाह कर दिया। कुछ दिनो तक वे दोनो वही सुखपूर्वक रहे और जव जलयान चलने लगा तो वह भी राजा से आज्ञा लेकर श्रीमती के साथ रवाना हुआ। राजा ने विदा करते हुये उसे अपार सम्पत्ति दी।

(२४०से२४१) सागरदत्त श्रीमती के रूप एवं यौवन को देखकर कामासक्त हो गया एवं उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। उसने एक पोटली समुद्र में गिरा दी। पोटली के गिर जाने पर वह जोर २ से रोने लगा तथा उसे प्राप्त करने के लिये हाहाकार करने लगा। जिनदत्त सागरदत्त की पीड़ा को देखकर एक रस्सी के सहारे पोटली को निकालने के लिये समुद्र में उतर गया। तब सागरदत्त ने डोरी को बीच ही में से काट दिया जिससे जिनदत्त समुद्र में रह गया।

(२४४से२४८) श्रीमती उसे डूबा हुआ जानकर विलाप करने लगी। सागरदत्त उसे मीठी २ बातों से फुसलाने लगा। लेकिन उसके शील के प्रभाव से जलयान ही डगमगाने लगा। जलयान के अन्य व्यापारियों ने सागरदत्त को खूब फटकारा तथा सब लोग श्रीमती के हाथ पैर जोड़ने लगे। आखिर जलयान एक द्वीप पर आ लगा। फिर वह श्रीमती सागरदत्त को छोड़कर अन्य व्यापारियों के साथ चम्पापुरी चली गई और चैत्यालय में विमलमती के साथ रहने लगी।

(२४९से२५८) समुद्र में गिरते ही जिनदत्त ने भगवान का स्मरण किया। इतने में ही उसे दो लकड़ी के टुकड़े मिल गये और उनके सहारे वह एक विद्याधर-नगरी में पहुँच गया। तट पर आते हुये देखकर पहिले तो वहाँ के चौकीदार उसे मारने के लिये दौड़े लेकिन बाद में उसकी शक्ति एवं साहस को देखकर उन्होंने उसका स्वागत किया और उसे विमान में बैठाकर विद्याधरों की नगरी रथनूपुर ले गये। वहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ और वहाँ के राजा अशोक ने अपनी कन्या शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया। जिनदत्त को दहेज में १६ विद्याए मिली तथा इनके अतिरिक्त उसने और भी विद्याए प्राप्त की। जिनदत्त वहाँ काफी समय आनन्द से रहा तथा अन्त में प्रस्थान की तैयारी करने लगा। राजा ने उसे काफी सम्पत्ति दी तथा एक विमान दिया। वह विमान से शृंगारमती सहित चम्पापुरी आ गया।

(२६६से३१६) वहाँ सबसे पहिले उसने वही वाडी देखी । वे दोनो उस रात उद्यान मे ही ठहर गये । पहिले जिनदत्त सो गया और वाद मे शृ गार-मती सो गई और जिनदत्त जागने लगा । जिनदत्त ने अपनी स्त्री को अपना कौशल दिखलाने के लिये वौना का रूप धारण किया । शृ गारमती जव जगी और उसने जिनदत्त को नही पाया तो वह विलाप करने लगी । वह जिनदत्त का नाम लेकर रोने लगी । इतने मे ही वहाँ विमल सेठ आया और उसे चैत्यालय मे ले गया जहाँ विमलमती एव श्रीमती पहिले से जिनदत्त की प्रतीक्षा कर रही थी ।

(३२०से३३३) जिनदत्त वौने का रूप धारण कर नगर मे अनेक कौतूहल पूर्ण कार्य करने लगा । उसने राजा से भेंट की और अपनी स्थिति पर उससे निवेदन किया । उसने कहा कि वह भूखो मरने के कारण ब्राह्मण से वौना वन गया है । उसने राजा से उसके द्वारा किये हुये कौतुक देखने की प्रार्थना की । राजा ने उसे आज्ञा देदी । वह खेल दिखलाने लगा । वह अपनी विद्यावल से आकाश मे उड गया और अनेक ताल धर कर ताली वजाने लगा । राजा ने प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार मांगने के लिये कहा । तव राज-सभा के किसी सदस्य ने कहा कि यदि यह विमल सेठ की तीनो लडकियो को जो चैत्यालय मे मौन रह रही थी बुला सके तव ही इसे पुरस्कार दिया जाए । वौने ने कहा कि मानव ही नही वह पाषाण प्रतिमा को भी बुला सकता है । फिर उसने विद्यावल से पाषाण की शिला को भी हँसा दिया ।

(३३४से३४३) राजा ने फिर उससे पुरस्कार के लिये कहा । इस पर किसी अन्य व्यक्ति ने कहा कि जव तक वह विमल सेठ की तीनो लडकियो को न हँसा दे, तव तक उसे पुरस्कार नही दिया जाए । जिनदत ने यह भी स्वीकार कर लिया और एक २ दिन उक्त तीनो मे से एक २ स्त्री को बुलाने के लिये कहा । उसके कहे अनुसार वारी २ से वे स्त्रियाँ आई और जिनदत्त ने उनकी सारी वातें वतलादी । इससे राजा और भी प्रभावित हुआ ।

(१४४से१६) इसी समय राजा के महल का एक हाथी उन्मत हो गया और सब बंधन तोड़कर वह नगरी में स्वच्छंद फिरने लगा। चारों ओर कोलाहल मच गया। तीन दिन तक वह हाथी किसी से भी नहीं पकड़ा जा सका। लोग नगर छोड़कर भागने लगे। राजा ने घोषणा की कि जो भी वीर हाथी को वश मे कर लेगा उसे वह अपनी कन्या एव आधा राज्य देगा। बौने ने राजा की घोषणा को स्वीकार किया। बौने ने विद्या-बल से हाथी को वश में कर लिया उसने उस पर चढ़कर खूब घुमाया और अंत में उसे ले जा कर ठाण में बाँध दिया। बौने का यह चमत्कार देखकर उपस्थित जनता ने उसकी जयजयकार की।

(१६१से१८४) बौने ने राजा से राजकुमारी के साथ विवाह के लिये कहा। राजा जिन मंदिर गया और उसने अपने गुरु से सारी बात कही। गुरु ने राजा से जिनदत्त द्वारा किये गये अद्भुत के कामों का सविस्तार वर्णन किया। फिर राजा ने बौने को वास्तविक बात बताने के लियेकहा तो वह राज कुमारी के साथ विवाह करने स इन्कार करने लगा। मन्त्रियों ने राजा से बौने के साथ राजकुमारी का विवाह करने के लिये मना किया।

(१८५से४२७) मंत्रियों ने बौने से फिर अपने जीवन की सत्य कथा कहने के लिये कहा तो उसने अपनी सारी राम कहानी कहदी और कहा कि विहार (चैत्यालय) मे रहने वाली तीनों स्त्रियां उसकी पत्नियां थी। यह सुन राजाने उन स्त्रियों को बुलाने भेजा तो वे मौन धारण कर बैठ गयी। इस पर राजा मंत्रीगण एव प्रजाजन उस चैत्यालय मे गये और उनसे बौने द्वारा कही हुई बात पर प्रकट करने के लिये कहा। बौने और उन स्त्रियों में खूब वाद विवाद हुआ। तीनो स्त्रियो ने उसे अपना पति मानने से इन्कार कर दिया तथा हुण्डा सेठ की कथा कही जिसके विदेश जाने पर एक दूसरा धूर्त आकर हुण्डा सेठ बन गया था और उन स्त्रियो ने भी उसे अपना स्वामी मान लिया था।

(४२८से४४६) अन्त में तीनों स्त्रियों की उसने परीक्षा ली। उसकी परीक्षा में सफल होने के पश्चात् जिनदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया।

वह कामदेव के समान देह वाला हो गया। सभी उसके रूप को देखकर चकित हो गयी। तीनों स्त्रियाँ उनके चरणों मे पडगई और अपनी २ कथा कहने लगी। राजा ने भी उससे क्षमा मांगी तथा अपनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया। राजा ने उसे अपार धन, सम्पदा, एव हाथी घोडे आदि वाहन दिये।

(४४७से४५६) जिनदत्त कुछ दिनों तक वहाँ रहने के पश्चात् सागरदत्त से मिलने गया। उसके पापोदय से हाथ-पाँव गल गये थे। जिनदत्त ने उससे अपना सारा धन ले लिया और चम्पापुर से विदा लेकर वह अपने देश वसतपुर को रवाना हुआ। उसने अपने साथ एक बडी भारी सेना ली। उसकी सेना को देखकर बडे २ राजा काँपने लगे और इस तरह वह बडे ठाट-वाट से से वसतपुर के समीप पहुँच गया।

(४५७से४६४) वसतपुर की प्रजा सेना को देखकर डर से भागने लगी तथा सारा नगर सेना से वेष्टित हो गया। खाइयाँ खोद कर उन्हें जल से भर दिया। चन्द्रशेखर राजा ने प्रजा को सान्त्वना दी और कहा कि जबतक उसके पास दो हाथ हैं, तबतक कोई भी शत्रु परकोटे मे पैर नही रख सकता। चारो ओर मोर्चाबदी होने लगी। राजा ने अपने मत्रियो से मत्रणा करके वास्तविक स्थिति जानने के लिये जिनदत्त के पास दूत भेजा।

(४६५से४७४) चन्द्रशेखर का दूत जिनदत्त के दरबार मे गया और उसने उसके आगे रत्नो का थाल रखकर यथायोग्य अभिवादन किया। दूत ने जिनदत्त से व्यर्थ ही प्रजा का सहार न करने एव उचित दण्ड लेकर वापस लौटने के लिये प्रार्थना की। लेकिन जिनदत्त ने कहा कि उसे किसी प्रकार के दण्ड की आवश्यकता नही। वह तो नगर सेठ जीवदेव एव उसकी पत्नी जीवजसा को लेना चाहता है। दूत ने सेठ के पवित्र जीवन की प्रशसा की और कहा कि सभवत राजा ऐसे भव्य पुरुष को नही दे सकता। लेकिन जिनदत्त ने दूत की एक न सुनी और शीघ्र ही उन्हें समर्पित करने का आदेश दिया।

(४०५से४८६) दूत ने वापस लौटकर राजा से सारी बात कही। राजा चन्द्रशेखर ने किसी भी परिस्थिति में सेठ को देना स्वीकार नहीं किया। जब यह बात सेठ को मालूम हुई तो वह जिनदत्त को याद करने लगा और उसने अपने फूटे भाग्य को धिक्कारा। सेठ अपने ही कारण सारे नगर पर इतना संकट लेने को तैय्यार नहीं हुआ और स्वयं सेना में स्वयं जाने को तैय्यार हो गया किन्तु उसकी आंखे फड़कने लगी एवं चित्त पुलकित हो उठा जो उसको पुत्र मिलन की मानो सूचना दे रहे थे। सेठ सेठानी कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये राजा से मिलने चल दिये।

(४८७से५१२) डरते २ सेठ राजा के पास पहुँचा। जिनदत्त अपने माता पिता को देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसने उनके मौन रहने का कारण पूछा तो सेठ ने अपने विदेश गये हुये पुत्र के बारे में सारी बात कही। सेठानी ने कहा उसके समान उनके भी एक पुत्र था। यह सुनकर जिनदत्त उनके पैरों में गिर गया और उसकी चारों पत्नियां भी उनके चरणों में लिपट गयीं। माता के स्तनों से दूध की धारा बह निकली। राजा चन्द्रशेखर ने जिनदत्त की बड़े आदर के साथ अगवानी की और दोनों वसन्तपुर में राज्य करने लगे। कुछ वर्षों बाद जब चन्द्रशेखर का स्वर्गवास होगया तो जिनदत्त अकेला ही राज्य करने लगा।

(५१३से५४०) एक बार वसंतपुर में निर्ग्रन्थ मुनि का आगमन हुआ जिनदत्त अपनी स्त्रियों के साथ उनके दर्शनार्थ गया और उनका धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् उसने अपने पूर्व भवो के बारे में जानना चाहा तो उनका भी समाधान कर दिया। संसार की असारता को जानकर उसने चारों पत्नियों सहित जिन दीक्षा ले ली और तपश्चरण कर अष्टम स्वर्ग प्राप्त किया। उसकी चारों स्त्रियां भी मर कर स्वर्ग गयीं।

(५४१से५५३) अन्त में कवि ने जिनदत्त चरित की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि जो कोई भी इस काव्य को सुनेगा सुनावेगा लिखेगा तथा लिखवायेगा उसे धन धान्य सम्पदा एवं पुण्य लाभ होगा।

जैन कथा साहित्य का स्वरूप एवं विकास

जैन कवियो एव विद्वानो ने कथा ग्र थो के लिखने मे पूर्ण रुचि ली है। इन कथा ग्र थो का मुख्य उद्दे श्य सामान्यत किसी पुरुप-स्त्री का चरित्र सक्षेप मे वर्णित कर उसके सासरिक सुख-दुखो का कारण उसके स्वय कृत पाप-पुण्य के परिणाम को प्रकट करना है। धर्मोपदेश के निमित्त लघु कथाओ का निर्माण श्रमण-परम्परा मे वहुत ही प्राचीन काल से रहा है। इसके अतिरिक्त कथाकारो का मुख्य उद्दे श्य जगत् के प्राणियो को कल्याण मार्ग की ओर प्रे रित करने का रहा है। लघु कथाओ के स्वाध्याय मे साधु एव गृहस्थ दोनो ही विशेप रुचि लेते हैं और वे उन्हे अच्छी तरह से हृदयस्थ कर लेते हैं। इसीलिये लघु एव वृहद् दोनो ही प्रकार के कथा काव्य हमे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श एव हिन्दी भापा मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। कथाओ के मुख्य विपय का वर्णन करने का ढग प्राय इन सभी भापाओ मे एकसा रहा है।

जैन कथा साहित्य को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते हैं।

(१) व्रत कथा साहित्य—

एक प्रकार की कथायें व्रतो के माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिये लिखी जाती रही हैं। ये प्राय लघु कथाओ के रूप मे मिलती हैं जिनमे किसी एक घटना को लेकर किसी पात्र-विशेष के जीवन का उत्थान अथवा पतन दिखाया जाता रहा है। कथा के मध्य मे किसी सकट अथवा व्याधि विशेप के निवारणार्थ व्रत को पालन करने का उपदेश दिया जाता है। व्रत की निर्विघ्न समाप्ति पर उसके सभी कष्ट दूर हो जाते है और तव उसके जीवन को उदा-

हरण स्वरूप रख कर पाठकों से किसी एक व्रत विशेष का पालने का उपदेश दिया जाता है। ऐसी कथाओं में अनन्तव्रत कथा अष्टाह्निकाव्रत कथा रोहिणीव्रत कथा दशलक्षणव्रत कथा श्रावणवत कथा रविव्रत कथा मेघव्रत कथा पुष्पांजलिव्रत कथा सुगन्धदशमीव्रत कथा मुक्तावलिव्रत कथा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(२) जीवन कथायें—

कुछ ऐसी लघु अथवा वृहद् कथायें हैं जिनमें किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक अथवा घटना-प्रधान कथायें भी लिखी जाती रही हैं। अठारह नाता कथा तथा रक्षाबन्धन कथा कुछ ऐसी ही कथा कृतियाँ हैं। तीर्थंकर, आचार्य अथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित कथाओं में ज्येष्ठ जिनवर कथा अकलंक देव कथा अंजन चोर कथा सम्मेदसम्पादगिरि कथा धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा मायमी कथा निशिभोजन कथा एवं भीम कथा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये कथायें भी जीवन के लिये प्रेरणादायक सिद्ध हुई हैं।

(३) रोमान्चक कथा साहित्य—

तीसरी प्रकार की वे कथायें हैं जो किसी नायक एवं मुनि विशेष के जीवन पर आधारित रहती हैं और उनमें नायक के जीवन का आद्योपान्त वर्णन रहता है। इनमें अधिकांश कथायें रोमान्चक होती हैं जिनमें नायक द्वारा आश्चर्यजनक कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। इसके जीवन का कभी उत्थान होता है तो कभी उसका मार्ग संकटों से अवरुद्ध दिखाई देने लगता है लेकिन नायक अपनी विशिष्ट योग्यता एवं साहस से उन्हें पार करके पाठकों की प्रशंसा का पात्र बनता है और पुण्य की महिमा का यशोगान किया जाने लगता है। ऐसी कथाओं में नायक का एक से अधिक विवाह सिंहल-यात्रा वन में अकेले भ्रमण करके कितनी ही अलौकिक विद्याओं को प्राप्त करना सम्यक्त्व को दृढ़ न करना अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करना आदि घटनायें मुख्य रूप

सोलह

से वर्णित होती हैं जो पाठकों में नायक के जीवन के प्रति उत्सुकता बनाये रखती हैं। ऐसे रोमाञ्चक कथा-काव्यो मे श्रीपाल, रत्नचूड, जिनदत्त, नागकुमार, भविष्यदत्त, करकडु, सनत्कुमार, धन्यकुमार, रत्नशेखर, जीवन्धर, प्रद्युम्न आदि विशिष्ट महापुरुषो के जीवन पर आधारित काव्य उल्लेखनीय हैं। ये काव्य प्राय उपर्युक्त सभी भाषाओ मे मिलते हैं। इन पुण्य पुरुषो के जीवन मे घटने वाली प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार हैं —

श्रीपाल—

सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य को प्रकट करने के लिये श्रीपाल के जीवन का स्मरण किया जाता है। उसके जीवन मे सर्व प्रथम कुष्ठ रोग पीडा की घटना आती है जिनके कारण उसे राज्य-भार छोडकर जगल की शरण लेनी पडती है। इसी बीच उसका राजकुमारी मैनासुन्दरी से विवाह हो जाता है पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुख की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त पर अटल रहने के कारण वह अपने पिता की कोप भाजन बनती है। मैनासुन्दरी अपनी पतिभक्ति एव सिद्धचक्र पूजा के प्रभाव से श्रीपाल एव उसके साथियो का कुष्ठ दूर करती है। श्रीपाल को नया जीवन मिलता है और वह यश एव सम्पत्ति अर्जन के लिये विदेश जाता है वहाँ उसका कितनी ही राजकुमारियो के साथ विवाह होता है, लेकिन धवल सेठ के द्वारा समुद्र मे गिराया जाना, अपने बाहुबल से उसे तैर कर पार करना, राजकुमारी के साथ विवाह होने के समय अपने विरोधियो के कुचक्रो से शूली का आदेश मिलना, पुन. दैवी सहायता से उससे भी बच जाना एव राजकुमारी के साथ विवाह होना आदि घटनायें उसके जीवन मे इस प्रकार आती हैं, इससे पाठक यह कल्पना भी नही कर सकता कि भविष्य मे नायक के जीवन मे कौन सी विपत्ति एव सम्पत्ति आने वाली है। श्रीपाल के जीवन की कथा जैन समाज मे बहुत प्रिय है।

रत्नचूड—

रत्नचूड कमलसेन राजा का पुत्र था। उसका जीवन भी अनेक रोमा

सम

रोमांचक घटनाओं से भरा पड़ा है। रत्नचूड़ ने एक मदोन्मत्त गज का दमन किया था किन्तु वह गज के रूप में विद्याधर था अत उसने रत्नचूड़ का ही अप हरण कर उसे जंगल में ला पटका। इस के पश्चात् वह नाना प्रदेशों में भ्रमण करता रहा और उसने अनेक सुन्दर राजकन्याओं स विवाह किया अनेक विद्यायें प्राप्त की। तदनंतर राजधानी आकर उसन कितनों ही वर्षों तक राज्य सुख भोगा और अन्त में साधु जीवन अपना कर स्वर्ग लाभ लिया। रत्नचूड़ के जीवन पर प्राकृत भाषा में अनेक रचनायें मिलती हैं

नागकुमार—

श्रुतपंचमी व्रत के माहात्म्य को प्रगट करने के अवसर पर नागकुमार के जीवन का वर्णन किया जाता है। नागकुमार कनकपुर के राजा जयन्धर एव रानी पृथ्वी देवी का पुत्र था। शैशव मे नागों के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पड़ा। नाग देश में ही अनेक विद्यायें सीखकर वह युवा हुआ और वहाँ की सुन्दर किन्नरियों से उसने विवाह किया। नाग कुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे विद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने मे सफल होगया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता की सलाह मानकर कुछ समय के लिये विदेश भ्रमण के लिये चला गया। सर्व प्रथम वह मथुरा पहुंचा और वहाँ के राजा की कन्या को बन्दीगृह से निकाल कर काश्मीर पहुँचा वहाँ पर वीणा वादन में त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन में उसका काल गुफावासी भीमासुर से साक्षात्कार हुआ। कांचन गुफ पहुंच कर उसने अनेक विद्यायें एव अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् उसकी गिरिशिखर के राजा वनराज से भेंट हुई और ऊर्जयन्त पर्वत की ओर उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसने विवाह किया। नागकुमार वहाँ से ऊर्जयन्त पर्वत की ओर गया। वहाँ उसने सिन्धु के राजा चंडप्रद्योत से अपने मामा

अठारा

गिरिनगर के राजा की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अवन्ति नगर के अत्याचारी राजा सुकंठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त मे उसने पिहितास्रव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एव श्रुतपचमी के उपवास के फल का वर्णन सुना। श्रीधर द्वारा दीक्षा लेने के कारण उसके पिता ने नागकुमार को बुलाकर और उसे राज्य देकर स्वय दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्य सुख भोग कर अन्त मे साधु जीवन अपनाया और मर कर स्वर्ग प्राप्त किया। महाकवि पुष्पदत का अप भ्रंश भाषा मे निबद्ध "णायकुमार चरिउ" इस कथा की एक बहुत सुन्दर रचना है।

भविष्यदत्त—

भविष्यदत्त एक श्रेष्ठि पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेश जाता है वहां वह खूब धन कमाता है और विवाह भी करता है। उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देता है और एक दिन वन मे उसे अकेला छोडकर उसकी पत्नी के साथ लौट आता है। भविष्यदत्त भी एक पथिक की सहायता से घर लौटता है और राजा को प्रसन्न करके राज-कन्या से विवाह कर लेता है। भविष्यदत्त का पूर्वार्द्ध जीवन रोमाञ्चक और साहसिक यात्राओ एवं आश्चर्यजनक घटनाओ से भरा पडा है। उत्तरार्द्ध मे युद्ध एव पूर्व भवो के वर्णन की बहुलता है। भविष्यदत्त के जीवन पर कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इन रचनाओं में धनपाल कृत "भविसयत्तकथा" अत्यधिक सुन्दर काव्य है।

करकुण्डु—

मुनि कनकामर ने करकुण्डु के जीवन पर अपभ्रंश मे बहुत सुन्दर काव्य लिखा है जो दश सधियो मे विभक्त है। यह एक प्रेमाख्यानक कथा है जिसमे करकण्डु का मदनावली से विवाह, विद्याधर द्वारा मदनावली-हरण, सिंहलयात्रा, वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा के साथ विवाह, मार्ग मे मच्छ

उगणोमें

द्वारा माक्रमण विद्याधरी द्वारा नरकम्बु का अपहरण एवं विवाह रतिवेगा एवं मदनावली से मिलन की घटनाओं का रोमांचक रीति से वर्णन किया गया है। बीच बीच में अवान्तर कथायें भी वर्णित हैं। करकण्ड अन्त में साधु जीवन व्यतीत कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

प्रद्युम्न—

प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र थे। रुक्मिणी इनकी माता का नाम था। जन्म की छठी रात्रि को ही इन्हें धूमकेतु असुर हरण कर ले गया और वन में इन्हें एक शिला के नीचे दबा कर चला गया। उसी समय कालसंवर विद्याधर ने इन्हें उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र रूप में पालने के लिये दे दिया। प्रद्युम्न ने युवावस्था को प्राप्त होने पर कालसंवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का बल एवं उसकी शक्ति देखकर अन्य राजकुमार उससे जलने लगे। जिनमन्दिर के दर्शन के बहाने वे उसे वन में ले गये और उसको विपत्तियों से लड़ने के लिये अकेला छोड़ कर भाग आए। लेकिन प्रद्युम्न डरा नहीं और उनपर विजय प्राप्त कर उसने अनेकों विद्याएं प्राप्त की। वापिस लौटने पर अपनी माता कनकमाला से तीन विद्यायें चतुरता से प्राप्त की किन्तु उसके कहे अनुसार काम न करने कारण उनको माता का ही कोप भाजन बनना पड़ा। कालसंवर भी प्रद्युम्न को मारने की सोचने लगा लेकिन अन्त में नारद द्वारा बीच बचाव करने पर वास्तविक स्थिति का पता लगा। प्रद्युम्न द्वारिका वापस लौट आये। मार्ग में वे दुर्योधन की कन्या को बल पूर्वक छीन कर विमान द्वारा द्वारिका आए। द्वारिका पहुंचने पर सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार को अपनी अनेकों विद्याओं से खूब छकाया। तदनंतर ब्रह्मचारी का वेश बना कर वे अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुंचा। वहाँ उन्होंने सत्यभामा की दासियों का विरूप कर कर दिया। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी की बांह पकड़ कर उसे श्रीकृष्ण की सभा के आगे से ले जाते हुए ललकारा। दोनों ओर की सेना आमने सामने आ डटी तथा श्रीकृष्ण एवं प्रद्युम्न में खूब घमासान युद्ध हुआ। किसी की भी हार न होने से पूर्व

नारद ने बीच में आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बडी प्रसन्नता हुई और प्रद्युम्न का खूब स्वागत हुआ तथा नगर मे उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने वर्षों राजसुख भोगा तथा अन्त मे दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया। महाकवि सिंह की अपभ्रंश भाषा मे पज्जुण्णकहा तथा कवि सधारु कृत हिन्दी मे प्रद्युम्न चरित दोनो ही सुन्दर काव्य हैं।

इस प्रकार रोमाञ्चक कथा काव्य लिखने की परम्परा जैनाचार्यों एव विद्वानो मे बहुत प्राचीन काल से रही है। इनके सहारे पाठक असद्गुण को छोडकर सद्गुणो की ओर प्रवृत्त होता है। इन रोचाञ्चक जीवन कथाओ मे बहुत सी घटनाएँ समान रूप से मिलती है जिनका कुछ वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) रोचाञ्चक कथा काव्यो मे पुण्यपुरुषो, श्रेष्ठियो तथा राजकुमारो का जीवन वर्णित होता है। ये महापुरुष अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किसी भी बडी से बडी विपत्ति का सामना करने मे समर्थ होते हैं। इन कथाओ मे धार्मिकता एव लौकिकता का मेल कराया गया है। प्रत्येक नायक अन्त मे साधु जीवन धारण करता है और मर कर स्वर्ग अथवा निर्वाण प्राप्त करता है। प्रद्युम्न, जिनदत्त, करकण्डु मर कर निर्वाण प्राप्त करते हैं, जबकि भविष्यदत्त, नागकुमार मर स्वर्ग जाते हैं। इस प्रकार ये कथायें शान्त रस मे पर्यवसान्त हैं।

(२) सभी रोमाञ्चक कथाओ में प्रेम, विरह, मिलन का खूब वर्णन मिलता है। इससे जैन कवियों के प्रेमाख्यानक काव्य लिखने के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है। जिनदत्त, भविष्यदत्त, श्रीपाल, नागकुमार के जीवन मे कितनी ही घटनायें घटती हैं, उनका कभी किसी पत्नी से मिलन होता है तो कभी किसीसे विरह। वास्तव मे इस प्रकार की जीवन-कथाओ को १५वी शताब्दी तक खूब महत्व दिया गया और इस तरह अनेको कथा-ग्रंथो का निर्माण हुआ।

(३) ये काव्य युद्ध-वर्णन से भरे पडे हैं। प्रद्युम्न के जीवन का अधिकाश भाग युद्ध मे व्यतीत होता है। कभी-कभी नायक अपनी विद्याओ से युद्ध लडते

है। जिनमें सारी सेना एक बार मर भी जाती है किन्तु युद्ध शान्त होने पर नायक उसे अपनी विद्या के बल से फिर जीवित कर देते हैं। वास्तव में ये कथायें वीर रस से ओत प्रोत होती हैं।

(४) इन कथा-काव्यों में मदोन्मत्त हाथी पर विजय सागर को तैर कर किसी राजकुमारी से विवाह विद्याधर कुमारियों से विवाह तथा तथा उनसे अनेक विद्याएं प्राप्त कर लेना समुद्र-यात्रा विदेश-गमन यक्ष-गन्धर्व-विद्याधरों से युद्ध आदि ऐसी घटनायें हैं जिनमें एक से अधिक प्रत्येक नायक के जीवन मे मिलती हैं।

(५) रोमान्चक कथा काव्यों के नायक एक से अधिक विवाह करते हैं तथा वे सभी जातियों की कन्याओं को ले आते हैं। इसे मध्यकाल में बहु विवाह प्रथा प्रचलित होना माना जाता है। नागकुमार एक सौ से भी अधिक राजकुमारियों से विवाह करता है।

(६) इन चरित-नायकों के जीवन में देवता राक्षस गन्धर्व यक्ष विद्याधर नाग आदि की पूरी सहायता मिलती है और कभी कभी विरोध भी सहना पड़ता है। जिनदत्त एवं प्रद्युम्न को विद्याधरों से अनेक विद्यायें प्राप्त हुई थी। इसी तरह नागकुमार को नागों से खूब सहायता मिली थी।

(७) चरित-नायकों के इन कथा काव्यो में पूर्व भवों का भी वर्णन मिलता है जिससे उनके पूर्व भव मे किये गये पुण्यापुण्य का फल वर्णित होता है। बाद में वे व्रत अथवा साधु जीवन धारण करने की ओर प्रवृत्त होते हैं।

इसी प्रकार का जिनदत्त चरित भी एक रोमान्चक शैली का काव्य है जिसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जिनदत्तचरित—एक अध्ययन

भाषा —हिन्दी के आदिकाल मे निर्मित एवं विकसित काव्यों में 'जिणदत्तचरित' का स्थान विशेषतः उल्लेखनीय है। इस कृति की रचना उस समय हुई थी जब यहाँ साहित्य में अपभ्रंश की प्रधानता थी। महाकवि

वाईस

स्वयम्भू, पुष्पदत, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल कनकामर, लाखू जयमित्र-हल, नरसेनदेव जैसे विद्वानो ने अपनी कृतियो से अपभ्र श साहित्य को श्रीवृद्धि प्रदान कर रक्खी थी। वर्त्तमान भारतीय भापाओ के साहित्य पर भी अपभ्र श का प्रभाव बना हुआ था। विक्रमीय ग्यारहवी से चौदहवी शताब्दी का काल जिसे हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है, भाषा की दृष्टि से अपभ्र श से बहुत प्रभावित है। जिणदत्त चरित की भाषा को हम पुरानी हिन्दी के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। 'जिणदत्त चरित' अपभ्र श एव हिन्दी भाषा की एक बीच की कडी है। अपभ्र श भाषा ने धीरे धीरे हिन्दी का रूप किस प्रकार लिया, यह इस काव्य से और सधारु के 'प्रद्युम्न-चरित[1]' जैसी रचनाओ से अच्छी तरह जाना जा सकता है। रचना अपभ्र श एव राजस्थानी बहुल शब्दो से युक्त है किन्तु हिन्दी के ठेठ शब्दो का भी उसमे प्रयोग हुआ है।

भारत पर उस समय यद्यपि मुसलमानो का शासन था लेकिन उनकी साहित्य एव सस्कृति का उस समय तक भारतीय जीवन, साहित्य एव सस्कृति पर अधिक प्रभाव नही पडा था। साहित्य मे प्राय पूर्ण रूप से भारतीयता थी। हिन्दी के काव्यो का विकास प्राय अपभ्र श काव्यो के अनुसरण से हुआ। १४ वी शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई उस पर तो अपभ्र श का प्रभाव रहा ही, किन्तु १४ वी के बाद लिखे गये पौराणिक एव रोमाचक शैली के प्रबन्ध काव्यो पर भी अपभ्र श के काव्यो का सीधा प्रभाव दिखलाई पडता है।

काव्य—रूप

'जिणदत्त चरित' रोमाञ्चक शैली का चरित है जिनका नायक धीरोदात्त है। वह सद्वशोत्पन्न है, वीर है। अनेक विपत्तियो मे भी नही

---

१ प्रद्युम्न चरित – सपादक डॉ कस्तूरचद कासलीवाल
प्रकाशक – दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी।

घबराता और उसमें सफल होकर निरमता है। अपनी सूझ-बूझ से ही वह प्रतिष्ठित होकर भी राज्य प्राप्त करता है और वर्षों तक योग्यता पूर्वक शासन चलाता है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग प्राप्त करता है। महाकाव्य की जो विशेषताएं प्रस्तुत काव्य में मिलती हैं वे निम्न प्रकार हैं —

(१) जिनदत्त का कथानक पुराण सम्मत लिखा गया है। कवि ने उसमें अपनी ओर से न कहीं जोड़ा है और न घटाया है।

(२) नायक एवं उससे सम्बन्धित पात्रों की पूर्व भव की कथा मुख्य कथा का एक अंग मात्र है।

(३) यह काव्य अन्त में वैराग्य मूलक एवं शान्तरस पर्यवसायी है। नायक अन्त में मुनि बनकर स्वर्ग लाभ करता है और उसकी चारों पत्नियां भी स्वर्ग जाती हैं।

(४) प्रस्तुत काव्य में अलौकिक तत्वों का समावेश हुआ है जैसे अपनी भुजा से अपने आप को प्रच्छन्न करना विद्याधरों से विद्याओं को प्राप्त करना आकाश मार्ग से विमान में बैठकर जिन चैत्यालयों की वन्दना करना अपने बाहुबल से सागर पार करना बौना बनकर अनेक कौतुक करना तथा मदोन्मत्त हाथी को वश में करना आदि।

(५) प्रारम्भ में तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। सरस्वती का स्मरण एवं काव्य रचना का उद्देश्य बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त विनम्रता का प्रदर्शन हीनता का प्रकाशन करते हुए लोक भाषा में काव्य लिखने का हेतु बताया गया है।

इस प्रकार उक्त विशेषताओं के आधार पर 'जिणदत्त चरित' महाकाव्य कोटि में आ सकता है किन्तु इसमें वर्णनों की कमी है शैली का चमत्कार नहीं है और न छन्द विधान में किसी प्रकार की विशिष्टता लाने का प्रयास किया गया है। इससे यह रचना एक उदात्त व्यक्ति का चरित-काव्य ही मानी जानी चाहिए।

पुन: इसे कवि ने सर्गो मे विभाजित नही किया है । केवल जब कथा को नया मोड देना होता है तो कवि यह कह उठता है कि 'एतहि अवरु कथतरु भयउ' (१२७) अर्थात् अब कथा का प्रवाह दूसरी ओर मुडता है । काव्य को सर्गों मे विभाजित करने की परम्परा को हिन्दी मे जैन विद्वानो ने बहुत कम अपनाया है । दो-चार कवियो के अतिरिक्त किसी ने भी अपनी रचनाओ को सर्गों एव अध्यायो मे विभाजित नही किया । जैन कवियो ने रास, वेलि, फागु, चरित, कथा, चौपई, ब्याहलो, सतसई, सबोधन आदि के रूप मे जो काव्य लिखे, वे प्राय बिना सर्गों अथवा अध्यायो मे विभाजित हुए रचे गये हैं । सभवत इन कवियो का उद्देश्य कथा को बिना किसी व्यवधान के अपने पाठको को सुनाने का रहा है ।

नायक—नायिका

काव्य के नायक जिनदत्त हैं किन्तु नायिका का सम्मान किसको दिया जावे इस विषय मे कवि मौन है । जिनदत्त एक नही चार विवाह करता है । चारो ही पत्निया परिणीता हैं । किन्तु इन सबमे प्रथम पत्नी का अवश्य उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि उसी के कारण जिनदत्त का चरित्र आगे बढता है तथा दूसरी एव तीसरी पत्नी भी उसी के आश्रय मे आ कर रहती हैं । इसलिये यदि नायिका का ही स्थान किसी को अवश्य देना हो तो वह प्रथम पत्नी विमलमती को दिया जा सकता है । लेकिन प्रतिनायक का पद तो किसी भी पात्र को नही दिया जा सकता । यद्यपि सागरदत्त सेठ उसकी पत्नी पर आसक्त होकर उसे समुद्र मे डुबो देता है लेकिन यह घटना तो उसके जीवन को एक और मोड पर ले जानेवाली घटना है । सागरदत्त प्रारम्भ मे तो जिनदत्त का परम सहायक रहा है । इसलिये इस काव्य मे कोई प्रतिनायक नही है । घटनाओ मे एक नायक का स्वयमेव व्यक्तित्व निखरता रहता है और उसमे अन्य किसी विरोधी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नही होती ।

रस

जिनदत्त चरित शान्त रस का काव्य है । यद्यपि काव्य मे कहीं नहीं

[illegible]

शृंगार, वीर बीभत्स रसों का भी वर्णन हुआ है किन्तु काव्य का मुख्य रस शान्तरस ही है। जिनदत्त वणिक-पुत्र है। विवाह होने के पश्चात् वह व्यापार के लिये देशाटन को निकल जाता है और उसमें अपार सम्पत्ति अर्जन कर वापस स्वदेश लौट आता है। राजा चन्द्रशेखर और उसकी सेनाओं में जो युद्ध की भावना होती है वह केवल आशंका मात्र बन कर ही रह जाती है। हां इतना अवश्य है कि जिनदत्त भी अपने ऐश्वर्य एवं विद्याओं के बल पर चन्द्रशेखर की उपस्थिति में आधा राज्य और उसकी मृत्यु के पश्चात् संपूर्ण राज्य का एक मात्र स्वामी बन जाता है। लेकिन इस परिवर्तन में खून की एक धारा भी नहीं बहती तथा न चन्द्रशेखर और न जिनदत्त को हथियार उठाने की आवश्यकता पड़ती है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग लाभ करता है।

शृंगार रस का वर्णन विमलमती के सौन्दर्य-वर्णन करने के प्रसंग में हुआ है। कवि ने विमलमती की सुन्दरता का अच्छे एवं अलंकृत भाषा में वर्णन किया है। उस का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वह अनिंद्य सुन्दरी थी[1]। हंस के समान उसकी गति थी। वह क्रीड़ा करती हुई, सरोवर तट पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई रूपराशि लगती थी। उसकी पिण्डलियों में लाल वर्ण शोभित थे मानो वे कंबु की पिंडलियां हो। कदली के समान उसकी जांघें थी तथा उसकी कटि मैं समा जाने वाली थी। वह मानों कामदेव का कल थी। उसका शरीर चंपा के समान था। वह पीन स्तनों वाली थी। उसकी उदर की त्रेवलियां एवं करितल फैले हुए थे। चन्द्रमा के समान उसका मुख था। उसके नेत्र दीर्घ थे तथा वह मृगनयनी थी। उसके शरीर से

सोवि सुन्दरी रायण पुत्तार।
ललिय हंस गइ कीलमाण सरवर बइठी।
बेलंती जल पयड रूप रासि गइ दिठ्ठि॥ 1

किरणें फूटती थी। उसकी भौंहे कामदेव के धनुष के समान थी। उसकी चाल मस्ती को लिये हुये थी एवं उसकी एक झलक पाकर ही कुमुनि भी पिघल जाते थे।

सहिय समाणिय तहो भणिय, इम जपइ सुतधारी।
तासु रूव गुण वण्णियउ, कइ रल्ह सविचार ॥९०॥
मुदडिय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हसु देउ तस भाउ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ॥९१॥
सवई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुथू पिंडरी।
जघ जुयल कदली ऊयरइ, तासु लक मूठिहि माइयइ॥९२॥
जणु हइ छति अणगहु तणी, सहइ जु रग रेह तहि घणी।
नीले चिहुर स उज्जल काख, अवरु सुहाइ दीसहि काख ॥९३॥
चपावण्णी सोहइ देह, गल कदलह तिण्णि जसु रेह।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल वित्थार ॥९४॥
हाथ सरिस सोहहि आगुली, णह सु त दिपहि कुद की कली।
भुव वल जतु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्ह ते कहे ॥९५॥
इलोणी अरु माठी लीव, हरु सु पट्टिया सोहय गीव।
काणि कुडल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ॥९६॥
मुह मडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जहि केहो वर चाले किरण, जणु रि डमणी हीरा मणि छिरण॥९७॥
भउह मयण धणु खचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कचुरी।
सिरह माग मोत्तिय भरि चलिइ, अवर पीठ तलि विणी रूलई ॥९८॥
नाद विनोद कथा आगली, पहिरी रयण जडी कचुली।
इकु तहि अत्थि देह की किरणी, अवर रल्ह पहिरइ आभरण ॥९९॥
जिस तणु वाहइ दिठि पसारि, काम वाण वसु घालइ मारि।
तिह को रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ ॥१००॥
माल्हतो विलामगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।

मत्ताईम

वीर रस का वर्णन जिनदत्त के स्वदेश लौटने के समय हुआ है। उसके प्रचुर वैभव परिजन सेवक एवं योद्धाओं को देखकर चम्पशेखर राजा उसे आक्रमण कारी राजा मानकर उसका सामना करने के लिये युद्ध की तैय्यारी करने लगता है। इसी प्रसंग को लेकर कवि ने कुछ पद्य लिखे है जिन्हे वीर-रस से युक्त कहा जा सकता है। जिनदत्त की सेना में दस लाख घुड सवार छह हजार हाथी एवं असंख्य ऊंट थे। पैदल एवं धनुषधारी दस करोड़ थे जब उसकी सेना ने प्रमियान किया तो धूल के उड़ने से सूर्य का दिखना बन्द होगया और जब निशानों को जोड़कर चोट मारी गई तो उसकी ध्वनि से बहुत से नागरिक एवं राजा देश छोड़ कर भाग गये। किसी राजा ने भी उसका सामना करने का साहस नहीं किया। जब वह वसन्तपुर के पास पहुँचा तो वहाँ की सारी प्रजा भागकर किले मे चली गई। चारों ओर की परिखा को जल से भर दिया गया। राजा चन्द्रशेखर ने दरवाजे की रक्षा का भार स्वयं सम्हाल लिया। चारों दिशाओ में सुभट खड़े हो गये [1]

---

१ लए तुरंग मोल बहु लाख मइगल दस सहस करइ मसंल।
सहस बत्तीस चाडरिण .. चाउरंगु बलु बसु दीन पवाणु ॥४५१॥
पाइक धानुक हुइ बहु कोडि पक्खल चलउ रायसिहु जोडि।
छत्रधारी बुधि गिरि जिणु पाहि ते असंख रावत बल माहि॥४५२॥
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी।
हाकि निसाण जोडि घणु हुए भक्खइ देस पलाले बले ॥४५३॥
चउरगड भरहिउ उटवहि बाट क (उणइ) राय दिखावहि बाट।
दूसहु राउ ण को अंगवइ नागु कहइ बहली चक्कवइ ॥४५४॥
आवइ नयर देस बिमल पर चक भउ नवि असिउन्न सहहि।
चाले कटक किए बहु रोल भरि मडल मणि हस्त कलोल ॥४५५॥
ठा ठा करत जोडि नीसरइ बान्ति भमच देस पइसरहि।
परिखा भाजि गई अहि राउ बैठिउ सो बसंतपुर ठाउ ॥४५६॥
परिखा भाजी बहुइ महुत नाजी पउलि तिठ नेहन।
भमउ ढोवुलि भर गोपग्गी रचे मार बहु सील भली ॥४५७॥

जिनदत्त के चरित मे साहस और वीरता के स्थल है, देशाटन के लिये निकल पडना, सागरदत्त की गिरी हुई पोटली के लिये उसका समुद्र मे कूद पडना, तथा अन्य अनेक उदाहरण इस सवध मे दिये जा सकते हैं। कवि ने इन प्रसगो मे भाव चित्रो को प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य बहुत कम किया है। जिनदत्त ने जो कौतुक दिखाए हैं, वे अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। कुछ अन्य रसो का भी यत्र तत्र समावेश हुआ है ।

छन्द

काव्य का मुख्य छन्द चउपई है किन्तु वस्तु बन्धछन्द का भी खूब प्रयोग हुआ है। काव्य के ५५३ पद्यो मे से ५५३ चउपई छन्द एव वस्तु बन्व हैं लेकिन कितनी चौपई छन्द के वाद मे वस्तुवन्ध छन्द प्रयोग होगा इस का कोई निश्चित सिद्धान्त कवि की दृष्टि मे नही था। वस्तुवन्ध तथा चौपई छन्द का प्रयोग उसकी इच्छानुसार हुआ है। काव्य मे दोहे छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

समग्र रूप से रचना चउपई-वन्ध काव्य रूप मे प्रस्तुत की गई है, जिससे यह प्रकट है कि उसका मुख्य छन्द चउपई है, केवल एक रसता निवारण के लिये उसमे कुछ अन्य छन्दो का समावेश भी कर दिया गया है।

वर्णन और उल्लेख

प्रस्तुत काव्य मे जिन वस्तु व्यापारो का वर्णन हुआ उन्हे हम निम्न श्रेणियो मे विभक्त कर सकते है —

(१) देश एव नगर वर्णन—

इस काव्य मे मगधदेश, (३१) वमन्तनगर (४०-४२), चपापुरी (८६-८८), दशपुर (१६०), वेणानगर (१६६), कुण्डलपुर (१६६), ममापाटन (१६६) मदनद्वीप, पाटल द्वीप (१६६), मिहलद्वीप २००-२०१), रयनुपुर (२६८) आदि देशो, नगरो एव द्वीपो का वर्णन एव उल्लेख हुआ है।

चम्पापुरी और रथनुपुर नगरो का वर्णन हुआ है। रथनुपुर के राजा की ८४ स्त्रियो से प्राचीन काल के देशो का पता चलता है [1]।

सूर सामीय साहु सोतियहि ।
सरि सरवर सावयह सव्वल अत्थि सारग साहरण सिऊ ।
सोहा सहियरणह सिखी सत सहीयरण समारणह ।।
दसरण सीमा सत्थवइ सत्थ सवरण सुहसार ।
सुव्वस सील वसतपुर छहि चउवीस सकार ।।
मोह मछरु मारणु मायारु ।
मउ मरी मारणु मरन्तिणु मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ
महु मस मयरासहि उतहि मछिदु मउरउण दीसड ।।
मूढु मुसरण म गलु मखरु जहि ण मलइ जल मीणु ।
मरणइ रल्ह सु वसतपुर वीस मकार विहीणु ।।३९।।
राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चखु सग्गु खड जाणियइ ।
वसइ वसतु णयरु सो घणउ, चदसिहरु राजा तह तणिउ ।।४०।।
चदसेखर राजा के भवरण, दिपहि त माणिक मोती रयण ।
सयलु अतेउरु रूपनिवासु, वीस वीस सवण्हु अवासु ।।४१।।
वसहि त सयल लोय सुपियार, कचणमइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण वछइ कोइ, जीव दया पालइ सव कोइ ।।४२।।
कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इ छहि मया ।
पारधी जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सवही भाउ ।।४३।।
बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धर्म्म ।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णवहि छत्तीसउ कुली ।।४४।।

× × ×

१ तहि असोक विज्जाहर राउ, असोकसिरी राणि कहु भाउ ।
ण सुरेन्द्र जो थाविउ सुरह गरुव णरेंद सेवज सु करह ।।२६८।।
साहण वाहण न मुणउ अ तु, करहि राजु मेइणि विलसत ।

सामाजिक रीतिरिवाज—

जिनदत्त चरित' के अध्ययन से प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजों का भी थोड़ा आभास मिलता है। विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिये ब्राह्मण जाया करते थे[1]। वे ही लड़की को देखकर सम्बन्ध निश्चित कर दिया करते

अतेउर चउरासी राणि तिन्ह के नाम रल्ह कवि जाण ॥२६६॥
काणडि गूजरि अरु मरहटी लाडि चोडि दक्षिण सोरठी।
पूरबिणी कणवजि बंगालि मंगाली तिलंग सुरतारि ॥२८ ॥
दबडी गउडी करणा मणो क्याले कंचणदे बसी।
उपमादे मामादे नारि, प्रभावत सुलखउ रूव मुरारि ॥२७१॥
चित्तरेह हेमिर सो रेह चित्तरेख बणु सोवन रेख।
मुखया सुरगा नवरख देइ मोगमती गुणमती मणेइ ॥२७२॥
करमादे रंभादे कांति सिद्दसणदे प्रभइ विलसंति।
मुमयादेवि रूपसुन्दरी पदमावती मयणसुन्दरी ॥२७३॥
मारोगा कमहादे राणि सावलदे सुहृयीदे जाणि।
देइ सुमई सुय पदमणि मोमविलासनि हंसागमणि ॥२७४॥
करधणिदे सुलखेणावलि तारादे कहु रल्ह समालि।
मंदोदरि अरु चंद्रामती हीरादे राणी रेवती ॥२७५॥
मारणदे अरु चंद्रावयलि वीरमदे रत्नी माधवी।
गयादे राणि पदमर्माण कमलादे अरु हंसागमणि ॥२७६॥
मुक्तादेवि रूव मागली चित्रलि हंसिनी अरु पदिमिनि।
सोनवती चरबल हो बणी — ॥२७७॥
मवती माला पोवा सिरी पिमसुंदरी सुमइच्च समपुरी।
मोरवती रामा अविचार मोगवती कइलास कुमारि ॥२७८॥
श्रीवसंतमाला सोमाप हरइ चित्त कामिणी कलाप।
सव्वइ राणि राणिउ मानहिं सव्वइ मनोहराय बालही ॥२७९॥

× × ×

१ विप्रु एक तउ पाइसु भयउ सो पइ लइ चंपापुरि गयउ।
वेढिउ विमलमती सा बाल देइ असीस पउ छोडि विशाल ॥१ २॥

थे। वे कभी-कभी अपने साथ लडके का चित्र भी ले जाते थे। बारात खूब सज-धज के साथ निकलती थी[1]। बारात की खातिर भी खूब की जाती थी। विवाह में ज्यौनार होती थी। विवाह मण्डप में होता था जहा चौक पूरा जाता था। स्त्रियां माङ्गलिक गीत गाती थी। दहेज देने की प्रथा तब भी खूब थी। जिनदत्त को चारो विवाहो मे इतना अधिक दहेज मिला कि उससे सम्हाले न सम्हाला गया[2]। पुत्र जन्म पर खूब खुशिया मनायी जाती थी। गरीबो अनाथो और अपाहिजो को उस अवसर पर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्त के जन्म पर उसके पिता ने दो करोड का दान दिया था[3]। भविष्यवाणियो पर विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा कभी २ अपनी कन्याओ का विवाह भी इन्ही भविष्यवाणियो के आधार पर कर दिया करते थे। समाज मे बहु विवाह की प्रथा थी। राजागण तो अनेक विवाह करते ही थे, बडे-बडे सेठ साहूकार एव व्यापारी भी चार-चार पाँच-पाच विवाह तक कर लिया करते थे और इन्हे कोई बुरा भी नही बतलाता था। जिनदत्त ने चार विवाह किये और तब भी उसका भारी स्वागत हुआ। जिस समय को ध्यान मे रखते हुए कथा

१, पच सबद बाजेवि तुरतु, बहु परियणु चाले सु बरातु ॥१२०॥
एकति जाहि सुखासण चढे, एकतु वाखर भीडे तुरे।
एकतु साजित सिगरी घरी, एकणु साजि पलाणी वरी ॥१२१॥
एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चढे विगसाहि।
एकति जाहि विवाहणु बइठ, सबु मिलि चपापुरीहि पइठ ॥१२२॥
चपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो।

+ + + +

२ राय सोय पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मडिय थीय।
अरु मनु चितिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाणु ॥२६५॥

× × × ×

३ देहि तबोल त फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाण।
पूत बधाए नाही खोरि, दीने सेठि दाम दुइ कोडि ॥६१॥

की रचना की गई है उस समय सामाजिक बन्धन कम ही था। जिनदत्त के विवाह अपनी ही जाति तक सीमित न रह कर अन्य जातियों में भी हुए थे।

नगर में जुआरी होते थे एवं वेश्यायें होती थी। कभी २ भद्र व्यक्ति भी अपने लड़कों को चतुर एवं व्यावहारिक जीवन में उतारने के पहले ऐसे स्थानों में भेजा करते थे। जिनदत्त को कुछ दिनों तक ऐसे व्यक्तियों की छाया में रखा गया था। ऐसे ही लोगों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है —

बार बार वेसा घरि जाहि अरु जूवा खेलत न अघाहि।
चोरी करत न आलसु करइ गांठ काटि अंतराल धरइ॥
जिन कै बस्तु गहय तिन्हु दिठि सो वसु किमहु आपुणी मुठि।
घवणु कबू मारि विणु सही तिरिए सहु सेठि बात सहु कही॥

समाज में जुआ खेलने की प्रथा थी और उसे समाज विरोधी नहीं समझा जाता था। उसके बड़े बड़े अन्ड्डे थे जहां भोले भाले एवं नवविविम व्यक्ति फँस जाया करते थे। जिनदत्त भी एक बार में ११ करोड़ का दांव हार गया था[१]। हारे हुए पैसों को दिये बिना जुआरियों से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं था।

विद्याध्ययन की प्रथा थी किन्तु कभी-कभी १४ १५ वर्ष होने के बाद उसे उपाध्याय के पास भेजते थे। शिक्षक को उपाध्याय कहते थे। जहाँ उसे लक्षण छन्द छंद शास्त्र न्याय शास्त्र व्याकरण रामायण महाभारत भरत का नाट्य शास्त्र ज्योतिष तन्त्र एवं मंत्र शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। विद्याध्ययन के पश्चात् उसे शस्त्र चलाना भी सिखाते थे जिससे वह समय आने पर अपनी आत्म रक्षा भी कर सके।

समाज में जातियों एवं उप जातियों की संख्या पर्याप्त थी। कवि ने

---

१ खेलत गई जिणदत्तहि हारि जुवारिन्हु जीति पच्चारि।
मगाइ रसु हमु नाही लाडि हारिउ दम्मु एगारह कोडि॥११॥

अपने काव्य मे २४ प्रकार की 'वकार' एव २४ प्रकार की 'सकार' नाम वाली जातियो के नाम गिनायें है जो उस समय वसतपुर मे रहती थी। उस नगर की एक और विशेषता यह थी कि २० प्रकार की 'मकार' वाली जातियाँ वहाँ नही थी जिन से उस नगर का वातावरण सदैव शात एव पवित्र रहता था।

प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। कवि को पेड पोधो एव फल-पुष्पो से अधिक प्रेम था इसलिये उसने नगर-वर्णन के साथ उनका भी वर्णन किया है। सागरदत्त सेठ के उद्यान मे विविध पौधे थे। अशोक एव केवडा के वृक्ष थे। नारियल एव आम के वृक्ष थे। नारगी, छुहारा, दाख, पिडखजूर, सुपारी, जायफल, इलाग्रची, लोग आदि कितने ही फलो के नाम गिनाये हैं पुष्पो मे मरुआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकन्द, मोलसिरि, जपापुष्प, पाडल, कठ पाडल, गुडहल आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस प्रकार का वर्णन हिन्दी की वहुत कम रचनाओ मे मिलता है। सधारु कवि ने भी आगे चलकर प्रद्युम्नचरित (स १४११) मे भी इसी तरह का अथवा इससे भी विशद वर्णन किया है। परवर्त्ती अपभ्र श काव्यो में भी ऐसे वर्णनो की प्रमुखता है।

रल्ह कवि ने इन वृक्षो पौधो एव लताओ के नाम उनकी विशेषता सहित गिनाये हैं। कवि के शब्दो मे ऐसा ही एक वर्णन देखिये —

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु।
जो छउ कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ खीर भयो रूवडउ ॥१६९॥
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइ हार पटोले किए।
जे छे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अकवाल दिवाए वाल ॥१७०॥
नारिगु जत्रु छुहारी दाख, पिंडखजूर फोफिली असख।
जातीफल इलायची लवग, करणा भरणा कीए नवरग ॥१७१॥

की रचना की गई है उस समय सामाजिक बन्धन कम ही था। जिनदत्त के विवाह अपनी ही जाति तक सीमित न रह कर अन्य जातियों में भी हुए थे।

नगर में जुआरी होते थे एवं वेश्यायें होती थीं। कभी २ भद्र व्यक्ति भी अपने लड़कों को चतुर एवं साहस्य जीवन में उतारने के पहले ऐसे स्थानों में भेजा करते थे। जिनदत्त को कुछ दिनों तक ऐसे व्यक्तियों की छाया में रखा गया था। ऐसे ही मार्गों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है —

> वार वार वेसा धरि जाहि अरु जूवा खेलत न अघाहि।
> चोरी करत न मानमु करइ गांठ काटि धनदारसइ वरइ ॥
> जिन कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो धणु कियउ आपुणी मुठि।
> बनलु कवू मारि विगु सहो तिहि सहु सेठि बात सहु कही ॥

समाज में जुआ खेलने की प्रथा थी और उसे समाज विरोधी नहीं समझा जाता था। उनके बड़े बड़े केन्द्र थे जहां मोग मासे एवं नवसिखिये व्यक्ति फँस जाया करते थे। जिनदत्त भी एक बार में ११ करोड़ का दांव हार गया था [1]। हारे हुए पैसों को दिये बिना जुआरियों से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं था।

विद्याध्ययन की प्रथा थी किन्तु कभी-कभी १४ १५ वर्ष होने के बाद उसे उपाध्याय के पास भेजते थे। शिक्षक को उपाध्याय कहते थे। वहां उसे लक्षण छन्द तर्क शास्त्र न्याय शास्त्र व्याकरण रामायण महाभारत भरत का नाट्य शास्त्र ज्योतिष तन्त्र एवं मन्त्र शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। विद्याध्ययन के पश्चात् उसे शस्त्र चलाना भी सिखाते थे जिससे वह समय आने पर अपनी आत्म रक्षा भी कर सके।

समाज में जातियों एवं उप जातियों की संख्या पर्याप्त थी। कवि ने

---

१ खेलत भई बिणवरतहि हारि जुवारिनु जीति पच्चारि।
मजइ रत्तु इमु नाही छोडि हारिउ दव्वु एगारह कोडि ॥११॥

अपने काव्य मे २४ प्रकार की 'वकार' एव २४ प्रकार की 'सकार' नाम वाली जातियो के नाम गिनायें है जो उस समय वसतपुर मे रहती थी। उस नगर की एक और विशेषता यह थी कि २० प्रकार की 'मकार' वाली जातियाँ वहाँ नही थी जिन से उस नगर का वातावरण सदैव शात एव पवित्र रहता था।

प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। कवि को पेड पोधो एव फल-पुष्पो से अधिक प्रेम था इसलिये उसने नगर-वर्णन के साथ उनका भी वर्णन किया है। सागरदत्त सेठ के उद्यान मे विविध पौधे थे। अशोक एव केवडा के वृक्ष थे। नारियल एव आम के वृक्ष थे। नारगी, छुहारा, दाख, पिडखजूर, सुपारी, जायफल, इलायची, लोग आदि कितने ही फलो के नाम गिनाये हैं पुष्पो मे मरुआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकन्द, मोलसिरि, जपापुष्प, पाडल, कठ पाडल,गुडहल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार का वर्णन हिन्दी की बहुत कम रचनाओं मे मिलता है। सधारु कवि ने भी आगे चलकर प्रद्युम्नचरित (स १४११) मे भी इसी तरह का अथवा इससे भी विशद वर्णन किया है। परवर्त्ती अपभ्रश काव्यों में भी ऐसे वर्णनो की प्रमुखता है।

रल्ह कवि ने इन वृक्षो पौधो एव लताओ के नाम उनकी विशेषता सहित गिनाये है। कवि के शब्दो मे ऐसा ही एक वर्णन देखिये —

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु।
जो छ्उ कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ खीर भयो रूवडउ ॥१६६॥
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइ हार पटोले किए।
जे छे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अकवाल दिवाए वाल ॥१७०॥
नारिगु जत्रु छुहारी दाख, पिडखजूर फोफिली असख।
जातीफल इलायची लवग, करणा भरणा कीए नवरग ॥१७१॥

कायु कपित्थ बेर पिपली हरड बहेड खिरी मावली ।
सिरीखंड प्रमर गलीबी धूप राएहिं नारि तहिं ठाह सरूप ॥१७२॥

धाई जुहि बेल सेवती दवरणा मरुवउ मद मालती ।
चपउ राइचंपउ मचकुर्द कूजउ वउलसिरी जासउनु ॥१७३॥

इसी तरह जब चंपापुरी में मदोन्मत्त हाथी अपने बंधन तोड़कर राज पथ पर विचरण करने लगा उस समय का भी कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कवि ने कहा कि वह मत्त गिड़गम हाथी अंकुश को नहीं मान कर खम्भ को उखाड़ कर सांकल के टुकड़े२ कर दिये। उसके दांत एवं सूड भूमि को भयंकर रूप से खोद रहे थे। उसको बड़े २ वीर पकड़े हुये थे। उसकी भयंकर चीत्कार थी। भ्रमरों की पंक्ति उसके पास मंडरा रही थी। लोग उसे साक्षात् काम ही समझने लग थे। लोग टीलों पर जा चुके थे। इसी वर्णन का अंश देखिये —

मय मिमगु पउ अंकुस मोडी खमु उपाडि वदु सनि तोडि ।
सांकल तोडि करि वक चूनि गयउ महाबलु पर कौ पूतु ।
गयउ महाबलु गणमरी त्रिणि गज भूडउ मऊ मसइ तणु ।
हउ उबरिउ पुन लूटउ कामु तउ सूडिउ ताडिउ मासु ॥

इस प्रकार के वर्णनों से ज्ञात होता है कि कवि मे वर्णन करने की यथेष्ट क्षमता थी यद्यपि उसने उसका उपयोग सीमित ही परिमाण में किया है।

रोमाञ्चक तत्व

काव्य में रोमाञ्चक कार्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। सर्व प्रथम त्रिनदत्त ने प्रज्ञनीमुस पक्षी के सहारे अपने आप को प्रच्छन्न कर लिया। जब वह समुद्र तैर कर रथनूपुर पहुंचा तो उसका विद्याधर कुमारी से विवाह हुआ जो दहेज में मोताह विद्यार प्राप्त हुई। इनमें बहुरूपिणी

दमीग

जलसोखणी, जलस्तंभिनी, हृदयालोकिनी, अग्निस्तभिनी, सर्वसिद्धि विद्याताारिणी, पातालगामिनी, मोहिनी, अ जणी, रत्नवर्षिणी, शुभदर्शिनी, वज्रणी आदि विद्याओ के नाम उल्लेखनीय हैं। जिनदत्त ने वहाँ तिमिरदृष्टि विद्या अणीवध एव सर्वौषध विद्याएँ भी प्राप्त की थी। विद्याबल से ही उसने विमान बनाया और अकृत्रिम चैत्यालयो की वन्दना की [1]। चम्पापुर पहुँच कर वहाँ राज दरबार मे बौने के रूप मे जो उसने अपनी विद्याओ का प्रदर्शन किया और मदोन्मत्त हाथी को वश मे किया वह सब उसकी प्राप्त विद्याओ के आधार पर ही था। जैन काव्य एव पुराणो मे इसी तरह की विद्याओ का बहुत वर्णन मिलता है। जैन काव्यो के नायक प्राय ऐसी विद्याएँ प्राप्त करते हैं और फिर उनके सहारे कितने ही अलौकिक कार्य करते हैं।

विदेश यात्रा

कवि के समय मे भारत व्यापार के लिए अच्छा माना जाता था। व्यापारी लोग समूह बनाकर तथा बैलो पर सामान लाद कर एक देश से दूसरे देश एव एक नगर से दूसरे नगर तक जाया करते थे। कभी नावो से यात्रा करते तो कभी जहाज मे चढ कर व्यापार के लिये जाते। इस व्यापारिक यात्रा के समय एक प्रमुख चुन लिया जाता था और उसी के आदेशानुसार सारी व्यवस्था चलती थी। जिनदत्त जब व्यापार के लिए निकला तो रचना के अनुसार उसके सघ मे १२ हजार बैल थे एव अनेक वणिक-पुत्र थे। सिंहल द्वीप उस समय व्यापार के लिये मुख्य आकर्षण का केन्द स्थान था। वहाँ जवाहरात का खूब व्यापार होता था। लेन देन वस्तुओ मे अधिक होता था। सिक्को का चलन कम ही था। ऐसे अवसरो पर व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। नाविक एव जहाज के कप्तान जलजतुओ का पूरा पता लगा लिया

---

१ आयउ जगमगतु सो तित्यु, जीवदेव नदणु हुइ जित्यु।
विज्जा चवदह निमुरा जिरादत्त, वदि अकिट्टमि जिणमलचनु ॥

करते थे। वे अपने साथ मुद्गर एवं लोहे की सांकल भी रखा करते थे। समुद्र में बड़े बड़े मगर रहते थे उनसे बचने का उपाय भी वे लोग भली प्रकार जानते थे। व्यापारिक यात्रा से वापिस लौटने पर उनका राजा एवं प्रजा द्वारा बड़ा स्वागत-सत्कार किया जाता था। उन्हें उचित रीति से सम्मानित करने की भी प्रथा थी।

इस प्रकार जिणदत्त हिन्दी के आदिकाल की एक उत्कृष्ट रचना है आशा है उसको हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

ग्रंथ सम्पादन

'जिणदत्त चरित' की पर्याप्त खोज करने के पश्चात् भी कोई दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इस कारण इसका सम्पादन एक ही प्रति के आधार पर किया गया है और इसी कारण से इसके पाठ-भेद आदि नहीं दिये जा सके। फिर भी हमें संतोष है कि ऐसे प्राचीनतम हिन्दी काव्य का सम्पादन एवं प्रकाशन हो सका है। मूल प्रति प्रारम्भ में काफी स्पष्ट लिखी हुई है लेकिन अन्त के कुछ पृष्ठ प्रतिलिपिकार ने सम्भवतः जल्दी में लिखे हैं। इसलिये उसने प्रारम्भ के समान आगे प्रत्येक पद्य के आगे संख्या भी नहीं दी है। फिर भी प्रति सामान्यतः शुद्ध एवं स्पष्ट है। पाठकों की सुविधा के लिये मूल ग्रन्थ का हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है तथा पद्यों के नीचे महत्वपूर्ण शब्दों के अर्थ एवं उनकी उत्पत्ति तथा अन्त में विस्तृत शब्दकोश अर्थ सहित दिया गया है। हिन्दी शब्दकोश के विद्वानों को इस काव्य में कितने ही नये शब्द मिलेंगे जिनका संभवतः अभी तक अन्य काव्यों में उपयोग नहीं हुआ है।

जिणदत्त चरित के समान राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में और भी महत्वपूर्ण काव्य उपलब्ध हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है इसलिये इस दिशा में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

माताचीत

आभार :—

हम श्रीमहावीर क्षेत्र कमेटी एव उसके अध्यक्ष महोदय कर्नल डा० राजमलजी कासलीवाल तथा मत्री श्री गेंदीलालजी साह एडवोकेट के आभारी हैं जिन्होने इस को अपने साहित्यशोध विभाग से प्रकाशित कराया है। क्षेत्र के साहित्यशोध विभाग की ओर से प्राचीन हिन्दी रचनाओ के प्रकाश मे लाने का जो महत्वपूर्ण काम हो रहा है उसके लिये सारा हिन्दी जगत उनका कृतज्ञ है। क्षेत्र के स हित्य शोध विभाग के अन्य विद्वान् श्री अनूपचद न्यायतीर्थ, सुगनचद जैन एव प्रेमचद रावका के भी हम आभारी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। श्री दि० जैन मन्दिर पाटोदी जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री नाथूलालजी वज के भी हम कृतज्ञ हैं जो अपने शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति देकर इस काव्य के प्रकाशन मे सहायक बने है। अन्त मे हम श्री प० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के प्रति पूर्ण आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी सतत प्रेरणा ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

माताप्रसाद गुप्त
कस्तूरचंद कासलीवाल

जिणदत्त चरित की पाण्डुलिपि का एक चित्र

जिणदत्त चरित

(स्तुति - खण्ड)

(वस्तुबंध)

[१]

णविवि जिणवर आसि जे वित्त ।

रिसहाइ धम्मुद्धरण, णविवि त जि गय कालि होसहि ।
सइ सत्थहि खित्ति पुणु, ताह णविवि ज कमसोहहि ॥

णाहिणरेसरु सुउ रिसहु, वरिसिउ धम्म पवाहु ।
सो जय कारणि रल्ह कइ, आइ-अणाहु जगणाहु ॥

अर्थ —धर्म का उद्धार करने वाले जो ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकर हैं, उन्हे नमस्कार करके तथा जो तीर्थंकर हो गये हैं और जो भविष्य मे होंगे, उन्हे नमस्कार करके तथा उनके साथ (सघ) मे पृथ्वी तल पर जो कर्मों का शोषण करने वाले सिद्ध हुए, उन्हें नमस्कार करके नाभि नरेश के सुत जिन ऋषभदेव ने धर्म-प्रवाह की वर्षा की रल्ह कवि ऐसे जय के कारण स्वरूप जगत् के नाथ आदिनाथ (को नमस्कार करता है) ।

आसि – अस् – होना । वित्त (वि० प्रसिद्ध, विख्यात) अथवा वृत विं० उत्पन्न, सजात, अतीत । रिसहु – ऋषभ । सोहहि-सोह – शोषय । सुउ – सुत । कइ – कवि । आइ-अणाहु – आदिनाथ ।

[२]

संजमु नेमु धम्मु तसु जाणु जो निसुणइ जिणदत्त पुराणु ।
संपत्ति पुत्त अवर जसु होइ महियलि दुक्खु न देखइ कोइ ॥

अर्थ —जो इस जिनदत्त पुराण को सुनता है (जीवन में) संयम नियम और धर्म उसको (प्राप्त हुआ) जानो । उसको वैभव सन्तान तथा यश (का लाभ) होता है तथा वह पृथ्वी पर कोई भी दुःख नहीं देखता है ।

संजमु पु (संयम) – हिंसादि पाप कर्मों से निवृत्ति दस धर्मों में से एक धर्म । नेमु – नियम धर्म व्रत उपवास आदि ।

[३]

जय जगणाहु रिसीस जिणेंद लग्गहुँ अजिय अम गणहरविंद ।
जिणु संभव अहिणंदण देउ सुमइणाहु पणवउं गय लेउ ॥

अर्थ —जगत् प्रभु ऋषभ जिनेन्द्र की जय हो । तथा गणधरों द्वारा पूजित अजितनाथ के चरणों में नमस्कार हो । जिनेन्द्र संभवनाथ अभिनन्दनदेव सुमतिनाथ को प्रणाम करता हूँ जो गत लेप (निष्पाप) हुये हैं ।

रिसीस – ऋषभेश ऋषभदेव स्वामी । गणहरविंद – गणधरवृन्द । गय लेउ – गतलेप—चला गया है पाप जिसका ।

[४]

पउमप्पहु सामिउ दुहहरण जिण सुपासु जण असरण सरण ।
चंदप्पहु समचित्त अहार पुप्फयंतु निव्वुरि कय रार ॥

अर्थ —पद्मप्रभ स्वामी दुःखों का हरण करने वाले हैं तथा सुपार्श्वनाथ

जिनेन्द्र अनाथो को शरण देने वाले हैं। चन्द्रप्रभ स्वामी शान्त चित्त एव शान्त स्वभाव वाले हैं तथा पुष्पदत मोक्ष नगरी के राजा हैं।

पउमप्पहु – पद्मप्रभ। सामिय – स्वामी। सहाउ – स्वभाव। सिवपुरि – शिवपुरी–मोक्षनगरी।

[५]

जिण सीयलु अरु सीयल वयणु, तुहु सेयस जयत्तय सरणु।
वासुपुज्ज अरुणंइ सरीरु, जय जय विमल अतुल बलवीर॥

अर्थ —और शीतलनाथ जिनेंद्र शीतल वचन वाले हैं तथा हे श्रेयासनाथ, तुम तीन-जगत के शरणभूत हो। वासपूज्य स्वामी, तुम लाल रग के शरीर वाले हो तथा अतुल बल के धारक हे विमलनाथ तुम्हारी जय हो।

सीयलु – शीतल। जगत्तय – जगत्रय।

[६]

जिणु अनंतु तिहुवरण जगरणत्थु[1], धम्मु धम्म उद्धरणु समत्थु।
जय पहु सतिणाह दुह हरण, जय जय कुथु जीव दय करण॥

अर्थ —अनन्तनाथ जिनेंद्र जो तीनो लोको तथा जगत के स्वामी हैं, धर्मनाथ जो धर्म का उद्धार करने मे समर्थ हैं, शान्तिनाथ जो जगत के नाथ हैं तथा दुखो का हरण करने वाले हैं तथा जीवो पर दया करने वाले कुथनाथ स्वामी की जय हो।

तिहुवरण – त्रिभुवन। धम्मु – धर्मनाथ। समत्थु – समर्थ।

[७]

अर अरिकम्म वम्मु जिणु हरिउ मल्लिणाहु सुर णियरें णमिउ ।
मुणिसुव्वउ जिणु गुण की रासि णमि[1] जिणवर णव दोसह णासि ॥

अर्थ —अरहनाथ जिन्होंने कर्म शत्रु के दर्प का हरण किया है देवताओं के द्वारा पूजित मल्लिनाथ को नमस्कार हो मुनिसुव्रत जिनेन्द्र जो गुणों की राशि है तथा नमि जिनेन्द्र निश्चय ही दोषों का नाश करने वाले है ।

णियर – निकर-समूह । १ मूलपाठ 'णवि' है ।

[८]

समद विजय सुतु णेमि जिणेंदु, पासणाहु पय परसइ इंदु ।
कर सिर लाइ राइसिंघु कहइ बहुफलु वीरणाहु जो लहइ ॥

अर्थ —समुद्रविजय के पुत्र जिनेन्द्र नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनके चरणों का स्पर्श इन्द्र करता है (इन सभी को नमस्कार है) । कवि राजसिंह (रल्ह) साष्टांग नमस्कार करके कहता है कि सबसे अधिक फल उसे होता है जो भगवान् वीरनाथ (महावीर) को नमस्कार करता है ।

परसइ – स्पृश-स्पर्श करना ।

[९]

चउवीसइ सामिय दुह हरण चउवीसइ मुक्के जर मरण ।
चउवीसह मोक्खह कउ ठाउ जिण चउवीस नमउ धरि भाउ ॥

अर्थ —चौबीसों स्वामी (तीर्थंकर) दुःखों के हर्त्ता हैं सभी चौबीस जरा एवं मरण से मुक्त हो चुके हैं । सभी चौबीस मोक्ष के निवासी हैं इसलिये सभी चौबीस तीर्थंकरों को भाव धारण कर (भाव पूर्वक) नमस्कार करता हूँ ।

मुक्के – मुच–मुच्–छूटना मुक्त होना । ठाउ – स्थान ।

[१०]

चक्केसरि रोहिणि जयसारु, जालामालणि अरु खेनपालु ।
अविमाइ तुव नवऊ सभाइ, पदमावती कइ लागउ पाइ ।।

अर्थ —देवी चक्रेश्वरी, रोहिणी, ज्वालामालिनी तथा क्षेत्रपाल (देव) की जय हो। माता अम्बिका को भी भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ तथा पद्मावती देवी के पाय लगता हूँ।

सभाइ – स+भाव–भावपूर्वक ।

[११]

जे चउवीस जक्ख[1] जक्खिणी, ते पणमउ सामिणि आपुणि ।
कुमइ कुबुधि देवि महु हरहु, चउविह सघह रख्या करहु ।।

अर्थ —जो चौबीस यक्ष यक्षिणिया है, (तथा जो) स्वय ही (जिन शासन) की स्वामिनी है उन्हे नमस्कार करता हूँ। हे देवियो, मेरी विकृत मति एव विकृत बुद्धि का हरण करो तथा चतुर्विध सघ की रक्षा करो।

जक्ख – यक्ष। कुमइ – कुमति। सामिणी – स्वामिनी। रख्या – रक्षा। चउविहसघह – चतुर्विध सघ–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारो का सघ कहलाता है। १. 'जख' मूलपाठ है।

[१२]

इद दहण जम णेरिउ जाणु, वरुणु वाय धणदुवि ईसाणु ।
पणमउ पोमिणिवइ धरणिदु, रोहिणीकतु जयउ णहिचदु ।।

अर्थ —इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान तथा पद्मावती देवी के पति धरणेंद्र को नमस्कार करता हूँ तथा रोहिणी देवी के स्वामी चन्द्रदेव की जय हो।

इस पद्य में कवि ने दसों दिशाओं के दस दिग्पालों को नमस्कार किया है।

इंद – इन्द्र। वइसाणु – अग्नि। जम – यम। णेरिउ – नैऋत। वरुणु – जल। वाय – वायु, पवन। धणदु – धनद-कुबेर। ईसाणु – ईशान। पोमिणिवइ पद्मिनी – (पद्मावती)। धरणिंदु – धरणेंद्र। चंदु – सोम।

१ इन्द्रो वह्नि पितृपति नैऋतो वरुणोमरुत ।
कुबेर ईश पतय पूर्वादीनामनुक्रमात् ॥ अमरकोश ।

[१३]

सूर सोम मंगल दुहु डहउ बुह बिहप्पइ सुह बित्थरउ ।
सुक्क राहु सनि केउ[1] गरिठ, ए नव गह जिण सासण सिठ ॥

अर्थ — रवि सोम मंगल दुःखों को भस्म करें। बुध एवं बृहस्पति सुख का विस्तार करें। शुक्र शनि राहु और केतु विशिष्ट ग्रह हैं ये सभी नव ग्रह जिनागम में प्रसिद्ध हैं।

सूर – सूर्य। दुहु – दुःख। डहु – दह-नष्ट करना। बुह – बुध। बिहप्पइ – बृहस्पति। सुह – सुख। बित्थरउ – विस्तृ-फैलाना। सुक्क – शुक्र। केउ – केतु। गह – ग्रह। गरिठ – गरिष्ठ-विशिष्ट। सिठ – शिष्ट-प्रतिष्ठित। १ 'करउ' मूल पाठ है।

(शारदा स्तवन)

[१४]

नहि संसउ जिणवर मुह कमल सरसति वाणी वसु धवल ।
सायम चंद तरुवर नालि सारद सह पाय नव वालि ॥

अर्थ —जो (शारदा) जिनेन्द्र भगवान के मुख से प्रकट हुई है, जिसकी सप्तभगमय वाणी है, जो आगम, छद एव तर्क से युक्त है, ऐसी वह शारदा शब्द, अर्थ एव पद की खान है।

सभव – जन्म। सप्तभग-स्याद्वाद के सात सिद्धान्त (१) स्यात् अस्ति (२) स्यात् नास्ति (३) स्यात् अस्ति-नास्ति (४) स्यात् अवक्तव्य (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य (७) स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। सारद – शारदा। तक्क – तर्क। सद्द – शब्द। अत्थ – अर्थ। पय – पद।

[१५]

गुणणिहि वहु विज्जागमसार, पुठि मराल सहइ अविचार।
छद वहत्तरि कला भावती, सुकइ रल्ह पणवइ सरसुती॥

अर्थ —जो गुणो की निधि एव विद्या तथा आगम की सार-स्वरूपा है, जो स्वभावत हस की पीठ पर सुशोभित है जिसे छद एव बहत्तर कलायें प्रिय है, ऐसी सरस्वती को रल्ह कवि नमस्कार करता है।

गुणणिहि – गुणनिधि। विज्जागम – विद्या और आगम। पुठि – पृष्ठ-पीठ।

[१६]

करि थुइ सुकइ ठणवइ तुह्[1] पाइ, परसन्नी तुह्र सारद माइ।
मह्र पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम।

अर्थ —कवि स्तुति करके तुम्हारे चरणो मे नमस्कार करता है। हे शारदा माता! आप प्रसन्न होओ। हे स्वामिनि, मुझ पर अपनी कृपा उस प्रकार करो जिस प्रकार मैं जिनदत्त चरित की रचना कर सकू।

थुइ – स्तुति। पसाउ – प्रसाद-कृपा। १ तहु–मूलपाठ।

(शारदा का प्रकट होना)

[१७]

सुणिवि वयण सारद यौं कहै मेरउ अन्त न कोई लहै ।
किमइ काजु आराहहि मोहि माँगि माँगि संतुट्ठी तोहि ॥

अर्थ —प्रार्थना को सुनकर शारदा यों कहने लगी मेरा पार कोई नहीं पा सकता है। किस कार्य के लिये तू मेरी आराधना करता है? मैं तुझ पर संतुष्ट हुई। तू माँग माँग।

आराह – आराध्-आराधना करना। संतुट्ठ – संतुष्ट।

[१८]

भणइ सुकइ करि सुधउ भाउ जा निव अम्हहं किमउ पसाउ।
तह पसाइ लाधउ गहर गहउ ता जिणदत्त चरिउ हउ कहउ ॥

अर्थ —कवि शुद्ध भाव करके कहता है—निश्चित रूप से यदि तुमने मुझ पर प्रसाद किया है तो तुम्हारे प्रसाद से अपार ज्ञान प्राप्त कर जिससे मैं जिनदत्त चरित को कह सकूं।

भाउ – भाव। निव – निश्चित रूप से। गाउ – ज्ञान। गहर – गह्वर भारी गम्भीर अपार।

(शारदा का वरदान)

[१९]

ता भारती पुणाइणि देवि तुट्ठी सालंवि ब्रह्माणि।
पुण्ड बटा तु बहुल समालु पुत्त लिरि रहि विन्नु भट हणु ॥

अर्थ —यह हंसवाहिनि भारती (शारदा) देवी प्रसन्न होकर आनन्द के

साथ कहने लगी, "हे सुकवि तू कथा कहने मे समर्थ है। हे रल्ह, तेरे शिर पर मैंने अपना हाथ रख दिया है।

गुसाइणि – गोस्वामिनी-स्वामिनी। पमण – प्र+मण-कहना। समत्थु – समर्थ। हत्थु – हस्त, हाथ।

(कवि द्वारा लघुता प्रदर्शन)

[२०]

हउ अखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लक्खण छद वखाणु।
अक्खर[1] मत्त हीण जइ होइ, महु जिण दोसु देइ कवि कोइ॥

अर्थ —मैं जिनदत्त पुराण को कह रहा हूँ। मैंने काव्य के लक्षण एव छदो का बखान (वर्णन) नही पढा है। इसलिये यदि कही अक्षर एव मात्रा की हीनता हो तो मुझे कोई भी कवि दोष न देवें।

अख – अक्ख-आ+ख्या-कहना। अक्खर – अक्षर। मत्त – मात्रा। जइ – यदि। १ अखर–मूलपाठ।

[२१]

हीण बुधि किम करउ कवित्त, रंजि ण सकउ विवुह जण चित्त।
धम्म कथा पयडतह दोसु, दुज्जण सयण करहि जिणु रोसु॥

अर्थ —मैं हीन बुद्धि हूँ कविता किस प्रकार करू? (क्योंकि) मैं विद्वानो के चित्त को प्रसन्न भी नही कर सकता हूँ। धर्मकथा को प्रकट (प्रतिपादित) करने मे दोष होते ही हैं, इसलिये दुर्जन एव सज्जन (दोनों से ही प्रार्थना है कि वे) रोष न करें।

पयड – प+यट्-प्रकट करना।

[२२]

भुवण कईस प्रतीते घणे बहुते अच्छहि ठाइ आपुणे ।
कइत्तणु बुध सिवुह जण पेखि पाय पसारउ आंचल देखि ।।

अर्थ —भुवन (जगत) में बहुत से कवीश्वर (महाकवि) हुए हैं और बहुत से अपने स्थानों पर विद्यमान हैं। कवित्व विबुध जनों (विद्वानों) को देखकर स्फुरित होता है। (और मैं सीमित बुद्धि का हूँ)। अतः अपने अंचल-बल (अपनी सामर्थ्य) को देखकर ही मैं पैर पसार रहा (काव्य रचना कर रहा) हूँ।

भुवन – जगत्। कईस – कवीश-महाकवि। अच्छहि – रहना-बैठना। कइत्तणु – कवित्व। पेखि – प्र+ईक्ष्-देखना।

[२३]

जइ अइरावइ मत्त गइंदु, जोयण लखु सरीरह विंदु ।
तासु गाज जइ भुवण समाण भमर हमर आपुणे माण ।।

अर्थ —यद्यपि ऐरावत मत्त गजेन्द्र है उसका शरीर एक लाख योजन प्रमाण जाना जाता है और उसकी गर्जना भुवन में व्याप्त है तो भी भ्रमर भी अपने मान (सामर्थ्य) के अनुरूप गर्जते ही हैं।

जइ – यदि। अइरावइ – ऐरावत। गइंद – गजेन्द्र।
जोयण – योजन। विंद – विद्-जानना। हमर – भ्रमर।
माण – मान-सामर्थ्य।

[२४]

चौदसु कला पुणु ससि जा आहि तवइ अमिउ दीपक सब काहि ।
तासु किरण तिहुवण जइ दिवइ आप पमाण जोगना तवइ ।।

अर्थ —चन्द्रमा षोडश कला पूर्ण कहा जाता है, वह सपूर्ण रूप से अमृतमय है और सबके लिए शीतल (होता) है। यदि उसकी किरणें तीनो भुवनो को प्रदीप्त (प्रकाशित) करती है, (तो भी) अपनी शक्ति के प्रमाण से (सामर्थ्य भर) जुगुनू तपता (चमकना) ही है।

पुणु – पूर्ण । अमिउ – अमृत । सीयल – शीतल ।
तिहुवण – त्रिभुवन । पमाण – प्रमाण । जोगणा – जुगुनू-खद्योत ।

[२५]

हाथ जोडि जिणवर पय पडउ, वीयराग सामिय मणि धरउ ।
जत्थ होइ कुकइत्तणे अंधु, जिणदत्त रयउ चउपई वधु ।।

अर्थ —हाथ जोड कर मैं जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे पडता हूँ तथा वीतराग स्वामी को मन में धारण करता हूँ, जिससे कुकवित्व अधा हो जाए, और मैं जिनदत्त (की कथा) चउपई वध (काव्य रूप) मे रच सकू ।

पय – पद । वीयराग – वीतराग । सामिय – स्वामी ।
कुकइतण – कुकवित्व । रयउ – रच्–रचना करना ।

(कवि परिचय)

[२६]

जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ पाडल उतपाति ।
पचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ।।

अर्थ —जैसवाल नामक उत्तम जाति के वाइसवें पाटल गोत्र मे मेरी उत्पत्ति हुई है। पचऊलीया आते का जो पुत्र है ऐसा कवि रल्ह जिनदत्त चरित की रचना कर रहा है।

अन्तिम छंदों में कवि ने अपने को अमई' का पुत्र बताया है कदाचित यहां भी 'माते' के स्थान पर पाठ अमई' होना चाहिए। संभवत अमई—अमि—माते हुआ है।

पंचऊस — पञ्चकुल। कइ — कवि।

[२७]

माता पाइ नमउ धं जोगु देखालियउ जेहि मतलोगु।
उवरि मास दस रहिउ धराइ धम्म बुधि हुइ सिरीमा माइ॥

अर्थ —माता के चरणों में यथायोग्य नमस्कार करता हूँ जिसने मुझे मृत्युलोक दिखाया तथा जिसने अपने उदर में दस मास तक रखा ऐसी धर्म बुद्धि वाली सिरिया मेरी माता थी अथवा धर्म बुद्धि में मेरी माता सिरिया (श्रीमती—जिसका उल्लेख कथा मे हुआ है) के समान हुई।

पाइ — पाद—चरण। मतलोगु — मृत्युलोक। उवर — उदर—पेट।

[२]

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ जेह हुउ पालिउ करुणा भाइ।
न उवयारणु हुवउ उरणु हा हा माइ मज्झु जिण सरणु॥

अर्थ —मैं बार बार माता के चरणों मे नमस्कार करता हूँ जिसने क्षमा भाव से मुझे पाला है। मैं उसके उपकार से उऋण नहीं हो सकूंगा। हे माता मेरे तो जिनेन्द्र भगवान ही शरण है।

उवयार — उपकार।

(रचनाकाल)

[२६]

सवत तेरहसें चउवण्णे, भादव सुदि पचम गुरु दिण्णे ।
स्वाति नखत्तु चदु तुलहतो, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ।।

अर्थ —सवत् १३५४ की भाद्रपद शुक्ला पचमी वृहस्पतिवार को जब चन्द्र स्वाति नक्षत्र मे था और तुला राशि थी, कवि रल्ह सरस्वती को नमस्कार करता है ।

तुल – तुला ।

(कथा का प्रारम्भ)

[३०]

लवणोवहि चउपासहि फिरिउ, जबूदीपु मज्झि विप्फुरिउ ।
दाहिण भरहखेत्त जिण भणी, वहइ कालु तहि अउसप्पिणी ।।

अर्थ —लवणोदधि समुद्र जिसके चारो ओर फिरा हुआ है, ऐसे जम्बूद्वीप के मध्य मे विस्फुरित दक्षिण दिशा मे भरत क्षेत्र हैं जहा अवसर्पिणी काल चल रहा है ।

लवणोवहि – लवणोदधि । भरहखेत्त – भरत क्षेत्र । विप्फुरिउ – विस्फुरित । अवसप्पिणी – अवसर्पिणी ।

(मगध देश का वर्णन)

[३१]

सवइण पाउ वरय जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ गाउ ।
पामरि घरणि अवासहि चडी, जणु वइ छूटि सग्ग[1] ते पडी ।।

अर्थ —जहां पर समस्त वस्तुएं पाई जाती है ऐसे उस देश का नाम मगध कहा जाता है। पामरों (नीच मनुष्यों) की स्त्रियां (उस देश में) महलों पर चढ़ी हुई ऐसी लगती है मानों वे छोके जाकर स्वर्ग से छूट पड़ी हों।

मगहु – मगध । णाउ – नाम । पामरि – नीच । पवाय – प्रावास–प्रासाद । चड – चट्टम–च्युत–छोड़ा हुआ ।
१ मम–मूलपाठ।

[१२]

जिदुणहु देसु तण्यों व्योहार घरि घरि सफल अंबसाहार ।
करहि राजु सकुटंबउ लोउ परतहु दुखी न दीसइ कोइ ।।

अर्थ —अब उस देश का व्यवहार सुनो जहां पर घर घर में फल सहित सहकार आम के वृक्ष थे। लोग सकुटंब राज्य जैसा सुख भोगते थे तथा प्रत्यक्ष में कोई दुखी नही दिखाई देता था।

अंब – आम । साहार – सहकार–एक जाति का आम । परतहु – प्रत्यक्ष ।

[१३]

पहिया पंथ न सूके जाहि केला दाख छुहारी खाहि ।
गामि गामि देखें सतुकार पहियह कउ देहि अनिवार ।।

अर्थ —जहां पर पथिक मार्ग मे भूखे नही जाते थे तथा केला दाख छुहारा खाते थे। जहां पर गांव गांव में सत्त के भोजनालय थे जो पथिकों को देखते ही अनिवार्य रूप से (सत्तु को) कट (ढेर) खाने के लिये देते थे।

पहिय – पथिक। कउ – कट–ढेर। सत्तुकार – सत्तु+आलय– सत्तु घर (सत्तु—भुने हुए जव आदि का चूर्ण जो पानी में मिलाकर मीठा व नमकीन बना कर खाया जाता है)।

[३४]

गामि गामि वाडी अवराइ, जइमे पाटण तेसे ठाइ ।
धम्मु विखे णरु भोयणु देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ।।

अर्थ —जहा पर गाव गाव मे बगीचे एव अमराइया थी तथा जैसे नगर थे वैसे ही वे स्थान (ग्राम) थे। धर्म-कार्यो मे (वहा के) नर (लोग) भोजन (आहारदान) देते थे तथा बेची हुई वस्तु का दाम नही लेते थे अथवा दाम देकर कोई वस्तुएँ नही लेते थे ।

वाडी – वाटिका–बगीचा । अमराइ – अम्रराजि–आम की बगीची । भोयणु – भोजन । विसाहि – विसाहिअ–विसाधित–बेची हुई वस्तु । पाटण – पतन–नगर ।

[३५]

णाकरु कूड दड तहि चरइ, अपुणइ सुखि परजा व्यवहरइ
चोर न चरडु आखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ।।

अर्थ —जहा जो अपराधी और कूट [दुष्ट] होते थे उनके लिये दड चलता था और प्रजा अपने व्यवहार [दैनिक जीवन] मे सुखी थी । चोर चरट कही भी नही दिखायी देते थे तथा पर स्त्री माता के समान देखी जाती थी ।

णाकरु – अपराधी । कूड – कूट–कुटिल, दुष्ट । चरडु – चरट–लूटेरो का एक प्रकार । पेख – प्र+ईक्ष्–देखना ।

[३६]

मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु ।
धण कण कचण सव्व वियूर, मदर तुग पिहिय कय सूर ।।

अर्थ —मगध देश भीतर से भी सुखी और सारवान (संपन्न) था। वह इन्द्र का मानो स्वर्ग था अथवा सुरथ का साकेतपुर था। वह धन धान्य एवं स्वर्ण से पूरित था तथा उसके व्योम को ढकने वाले ऊंचे मंदिर (पर्वत) के सदृश महल थे।

सुहि — सुखिन–सुखी। सार — सारवान–संपन्न। सुरह — सुरथ–साकेतपुर का एक राजा। पिहिय — पिहित–ढका हुआ।

(विभिन्न जातियों के नाम)

वस्तुबंध

[१७]

वणिउ बंभणु वइस वसीठ ॥
बाढइ वेसा भरड बंवरा सिकारी विहारइं ।
माणु माहु मारी पुव मडु विहारउ कोलारवइं ॥
धव सिहारि खारिठिया पुरु सिरह ¹धणिहार ।
सहु वसंतपुरि रल्हु कइ कहि चउवीस पयार ॥

अर्थ —वणिक ब्राह्मण वैश्य वसीठ बढ़ई वेश्या भरड बवरा सिकारी विहार, माणु माहु, मारी पुव मडु विहारउ, धवल धव सिहारी खारिठिया पुरु, सिरह, धणिहार रल्ह कवि कहता है कि ये चौबीस प्रकार की वकार के नाम वाली जातियाँ वहाँ वसंतपुर में रहती थी।

१ धणिहार—मूलपाठ।

[१८]

पुर सामीय साहु चौतियहि ।
तरि तरवर सावयइं सव्वल अलिय तारंग तफुल्ला तिलक ।
सोहा सहियमाइं तिरिय संत सहियमल समाणइं ॥

देसरण सीमा सत्यवइ, सत्य सवरण सुहसार ।
सुव्वस सील वसतपुर, इहि चउवीस सकार ।।

अर्थ —सकार के नाम वाली निम्न चौबीस जातियां वसतपुर मे निवास करती थी —

सूर, सामी (स्वामी), साहु, सोत्तिय (श्रोत्रिय), सरि, सरवर, सावय (श्रावक), सव्वल, साग्ग, साहरण, सिऊ, सोहा, सहियरण, सिरि (श्री), सत, सहियरण, समारण, सीमा, सत्यवइ (सार्थपति), सत्य (सार्थ), सवरण, सुहसार (सुखसार), सुव्वस, सील, (शील) ।

[३६]

मोह मच्छरु माणु मायारु ।
मउ मरि मारणु मरविणु, मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ २
महु मस मयरासहि उतहि, मच्छिदु मउरउरण दीसइ ।।

मूढु मुसरण मंगलु मखरु, जहि रण मलइ जल मीणु ।
भरणइ रल्ह सु वसतपुर, वीस मकार विहीणु ।।

अर्थ —रल्ह कवि कहता है कि वसंतपुर में, मोह, मत्सर, मान, माया, मद, मरी (एक रोग), मारण, मरविण, मलिण (मालिन्य), मलन (मर्दन), मधु, मास, मदिरा, मच्छिन्दु (मछन्द), मउरउण (मुकुट बिना), मूढ, मुसरण, मगल, मखर तथा मीन सहित जल ये बीस मकार नहीं थे ।

नोट —इस छद के पाठ में कुछ भूल लगती है चरण २ का 'जहि कोवि सीसइ' चरण ३ के 'मउरउरण दीसइ' के साथ आना चाहिए ।

(वसंतपुर नगर वर्णन)

चौपई

[४]

राय-थाणु किमु करि वण्णियइ पच्चक्खु सग्गु जेव जाणियइ ।
वसइ वसंतु एम्मइ सो पउरु चंदसिहरु राजा तहु तणिउ ॥

अर्थ —राजा के स्थान (राजधानी) का किस प्रकार वर्णन किया जाय ? उसे तो प्रत्यक्ष स्वर्ग का टुकड़ा ही जानो । वह वसंतपुर नगर बना बसा हुआ था और उसका चन्द्रशेखर नाम का राजा था ।

थाणु – स्थान । पच्चक्खु – प्रत्यक्ष । सग्गु – स्वर्ग । चंदसिहरु – चन्द्रशेखर ।

[४१]

चंदसेहर राजा के भवण दिपहिं त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउर रूपनिधानु, बीस बीस सबहु आवासु ॥

अर्थ —चन्द्रशेखर राजा के महल से माणिक मोती एवं रत्न चमकते थे (अथवा वे महल माणिक मोती एवं रत्नों से चमकते थे) । उसका समस्त अन्तःपुर रूप का निधान था तथा सबके लिये बीस बीस आवास (महल) थे ।

रयण – रत्न । सयलु – सकल समस्त । अंतेउर – अन्तःपुर । सबहु – सबके लिये–स्वार्थे ।

[४२]

बसहिं त सयल लोग सुविचार, कंचन मय तिन्ह दिपहिं विहार ।
घर बहु मीधु [illegible] ..

अर्थ —सभी लोग प्रेम से रहते थे। उन्होंने अपने विहार (जिन मन्दिर) स्वर्ण-मय बना लिये थे। वहा दूसरे की मृत्यु की वाछा कोई नही करते थे तथा सभी जीव दया का पालन करते थे।

सुपियार – सु+पिय+तर–अत्यन्त प्रिय। मीचु – मृत्यु।

[४३]

कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इछहि मया।
पारघी जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ॥

अर्थ —कोली और माली (तक) भी जहा दया धर्म का पालन करते थे। पटवा एव सपेरा भी दयावान थे। वधिक जीवों पर कोई भी घात नही करते थे। (इस प्रकार) सभी का दया धर्म का भाव था।

कोली – कौलिक–सूती वस्त्र बुनने वाले। पटवा – पट+वाय–रेशमी वस्त्र बुनने वाला। जीवक – सपेरा। पारघी – पापर्धि–वधिक।

[४४]

बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धर्म्म।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णवहि छत्तीसउ कुली॥

अर्थ —ब्राह्मण तथा क्षत्रिय चर्म (के प्रयोग) से विरत थे और वे सभी श्रावक धर्म का पालन करते थे। मारने (हिंसा करने) का नाम उनको कष्ट देता था और छत्तीसो जातिया जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करती थी।

(वस्तु बंध)

[५८]

सुवण्णु रंजणु धम्मु गुण वासिउ ।

परिवारहं सोहियउ देइ दाणु जिणणाहु पुज्जइ ।
सयल जीव करुणा करइ जीवदेउ तहि सेठि छज्जइ ॥

घररिणि सुहाइ तासु घरि, जीवजस सुपिसाय ।
दाण कित्ति जिण्हु रल्ह कइ, भमिय पुहमि असराल ॥

अर्थ —वह सभी सवर्णों (उच्च जातियों) का प्रिय था तथा उसकी वासी धर्म एवं गुणों से युक्त थी। वह अपने परिवार के साथ शोभित था, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था तथा दान देता था। सब जीवों पर करुणा (दया) करता था ऐसा वहाँ जीवदेव नाम का सेठ शोभित होता था। उसके घर में सुन्दर गृहिणी (धर्म-पत्नी) 'जीवंजसा' नाम की थी जो बहुत सुन्दर थी। 'रल्ह कवि' कहता है कि उसकी दान देने की प्रशंसा सम्पूर्ण पृथ्वी तल पर निरन्तर फैल रही थी।

असराल – निरन्तर। सुवण्णु – सवर्ण – उच्च जातियाँ।
सयल – सकल। छज्जइ – शोभित होना। भमिय – फैलना।

[५९]

अणहतु पीडि करावइ बैठि जीवदेव तहि निवसइ सेठि ।
जीवंजसा नामें तसु घरणि रूव सुरेख ईंग-माइ-धम्मणि ॥

अर्थ —दुःखित जनों की पीड़ा को दूर कर बैठने (विश्राम लेने) वाला जीवदेव नाम का सेठ वहाँ रहता था। उसकी स्त्री का नाम जीवंजसा था जो रूपवती शुभ रेखाओं से सहित तथा धर्म को धारण करने वाली थी।

[४७]

अइसउ सेठि वसइ तहि नगरी, तिहि समु भयउ न होसइ अउरु ।
धण कण परियणु सयण सजुत्त, पर घरि नाही एक्कइ पूतु ।।

अर्थ —ऐसा सेठ उस नगरी मे रहता था, उसके समान न तो कोई हुआ और न दूसरा होगा । वह धन-धान्य एव सब परिजनो से युक्त था केवल उसके घर मे पुत्र नही था ।

अउरु – अपरु–दूसरा । परियणु – परिजन ।

[४८]

सेठिणी भणइ सेठ णिसुणेहि, पुत्तह विणु कुलु वूड तोहि ।
दाण धरमु सपइ सबु दीज, पुण ऋष पास जाइ तपु लीज ।।

अर्थ —सेठानी सेठ से कहने लगी "हे सेठ सुनो विना पुत्र के तुम्हारा वश डूव (समाप्त हो) जावेगा । दान, धर्म मे सब सपत्ति दे दीजिये तथा फिर ऋषि के पास जाकर तप (व्रत) ले लीजिये ।

पुत्त – पुत्र । सपइ – सपत्ति ।

[४९]

कियउ मतु परियणु बयसारि, कहइ वयणु सुहयरु ऊसारि ।
पूतह विनु कुल बूडइ मोहि, कि किज्जइ वुह पूछउ तोहि ।।

अर्थ —अपने परिजनो को बैठाकर उसने मत्रणा की तथा यह सुखकर वचन (मुख से) निकाल कर कहा—"बिना पुत्र के मेरा कुल डूब रहा है । क्या करना चाहिए, यह हे बुद्धिमानो, मैं आपसे पूछता हूं ।"

मतु – मत्र–मत्रणा । सुहयरु – सुखकर । ऊसारि – उच्चारण कर । वुह – वुह–बुध ।

[५२-५४]

तिहि खणि चवइ जीववो सेठि, हउ आराहउ निरु परमेठि ।
सयल चराचर जाणउ भेउ, वीयराउ महु जवउ[1] अलेउ ।।

जल चदण अखय वर फुल्ल, चरु दीवइ अछुइ लइय अमुल्ल ।
अगर धूव कारण निरु लयउ, फल समूह जे जिणवरु गयउ ।।

जिणवरु विंबु जोइ मणु तुठ, चिरु सचिउ कलिमलु गउ तुठ ।
अठविह पूय करइ दयवतु, नियमणु भावइ देउ अरहतु ।।

अर्थ :—उस क्षण जीवदेव सेठ कहने लगा अब मैं निश्चितरूप से परमेष्ठि की आराधना करता हूं (करूंगा) क्योंकि वे ही सकल चराचर का भेद जानते है (अत) मैं उन अलिप्त वीतराग भगवान का जप करता (बोलता) हूं । ।।५२।।

एक थाल मे जल, चंदन, अक्षत, उत्तम पुष्प एव बिना स्पर्श किये हुये अमूल्य (निर्मल) नैवेद्य एव दीपक उसने लिये तथा अगर धूप (दशाग धूप) और उसी कारण (उद्देश्य) से फलो के समूह को लिया और वह मन्दिर मे गया ।।५३।।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन कर उसका मन पूर्ण संतुष्ट हो गया तथा चिरकाल से सचित पापमल त्रुटित (नष्ट) हो गये । वह भगवान की अष्ट विधि से पूजा करने लगा तथा अपने मनमे अर्हंत् देव का ध्यान करने लगा ।।५४।।

खणि – खण–क्षण । परमेठि – परमेष्ठि । अखय – अक्षत ।
निरु – निश्चितरूप से । चरु – नैवेद्य । दीपह – दीपक ।
तुठ – त्रुटित–टूटा । भावइ – ध्यावइ – ध्यान करना, चिंतन करना ।

१ जयउ–मूलपाठ ।

[५५-५६]

सत्थु पुज्ज गुरु पुज्जिउ झत्ति मुणिवर पाइ पडी तिहु पत्ति ।
पुह जाणहि सामिय जिणसुत्त महु होइ कइ मुणिवर भल पुत्तु ॥

हत्थु देखि मुणि बोलइ ताहि मिल सेठिणि हियडइ विलखाहि ।
लखण बत्तीस कला संजुत्तु कुल मंडणु तुव होसइ पुत्तु ॥

अर्थ —शास्त्र की पूजा करके शीघ्र ही उसने गुरु की पूजा की तथा (तदनन्तर) उसकी पत्नी मुनि के पांव पड़ गई। (उसने कहा) हे स्वामी आप जिनसूत्रों (आगमों) को जानने वाले हो। मुझे पुत्र हो हे मुनिवर, (आप) यह कह (आशीष) दें [अथवा क्या मुझे पुत्र होगा हे मुनिवर, आप यह बताएँ] ॥५५॥

हाथ देखकर मुनि उस समय बोले 'हे सेठानी हृदय में दुखित मत हो। बत्तीस लक्षणों एवं कला से युक्त एवं कुल की शोभा वाला पुत्र तुम्हारे होगा ॥५६॥

सत्थु – शास्त्र। पत्ति – पत्ती–पत्नी–भार्या। झत्ति – झटिति–झट–शीघ्र।

[५७-५८]

सेठिणि सउणु गांठि बांधियउ लिय घर जाइ महोछउ कीयउ ।
मोलिउ मुणिवर कहिउ मुहसंजु, तूठी सेठिणि माइ न अंग ॥

पुणु अत्थाणी बोलइ सोम दिसि भासियउ न भूठिउ होय ।
सिव भासिउ बोलइ तासु पिय होसइ तणु चिंति सभाउ ॥

अर्थ —सेठानी ने उस शकुन (शुभ सूचना) की गांठ बांध ली और अपने घर जाकर महोत्सव किया। गुणों के धारी मुनिवर ने मुख से (इस प्रकार) कहा है "इससे प्रसन्न सेठानी अपने अंगों में समा नहीं रही थी ॥५७॥

फिर प्रसन्न होकर कहने लगी "ऋषि का कहा हुआ कभी झूठा
हीं होता है। सेठ भी निश्चित रूप से आनन्दित होकर बोला–प्रिय
(अच्छा हो) होगा ऐसा मनमे सोचकर उछाह करो। ॥५८॥

णिय – निज। महोछउ – महोत्सव। मोसिउ – मुझसे।
णिरु – निश्चित रूप से। पिव – पितृ–पिता–प्रिय।

[५९–६०]

(पुत्र जन्म)

राजु करत दिन केते गये, सेठिणि गब्भु मास दुइ भए।
आइ भए पूरे दस मास, पूतु जम्मु भौ पूरिय आस॥

जीवदेउ घरि नदण भयउ, घर घर कुटंब बधाऊ गयउ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरे पूरिउ मोतिन्ह चउकु॥

अर्थ—राज करते हुये (सुख भोगते हुये) कितने ही दिन बीत गये।
कालान्तर मे सेठाणी को गर्भ रहा जो दो मास का हो गया फिर दस मास पूरे
हो गये। पुत्र का जन्म हुआ और सबकी आशा पूरी हुई ॥५९॥

जीवदेव के घर जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके कुटुम्बियो द्वारा घर-घर
मे बधावा गाया गया। स्त्रिया उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होंने
मोतियो के चौक पूरे ॥६०॥

गब्भु – गर्भ। नाइका – नायिका–स्त्री। सउकु – स+उत्क–
उत्साहपूर्वक।

[६१–६२]

देहि तबोल त फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाणि।
पूत बधाए नाहो खोगि, दीने सेठि दाम दुइ कोडी॥

वाधइ पुत्तु कला जिमु चंद जाइ विहार कियउ आणंदु ।
जिणवर पूज मुणिंदह पयी पडइ रिसि जिनदत्त नाउ तिस धरइ ॥

अर्थ —सेठ तम्बूल सुपारी तथा पान (बीड़े) देने लगा। उसने सूती एवं रेशमी वस्त्र दान में दिये। पुत्र (जन्म) के बधावे में कोई कोरि (कसर कमी) नहीं रखी। सेठ ने दो करोड़ दाम (मुद्रा) दान में दिये ॥६१॥

चन्द्रमा की कला के समान पुत्र बढ़ने लगा तथा जिन मन्दिर जाकर उसने आनन्दोत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके वह मुनि के चरणों में पड़ा तथा ऋषि (मुनि) ने उसका नाम जिनदत्त रखा।

फोफल – पूगफल–सुपारी। पटोल – पट्टकूल–रेशमी वस्त्र।

[६३-६४]

वरष दिवस जाइहि जे तउउ दिन दिन विरध करइ तै तउउ ।
वरष पंच दस की सो उमाह विज्जा पढण उज्झायहरि जाइ ॥

ओंकार लगउ मनु जाणि लखणु छंदु तरक परिवाणि ।
पुणि व्याकरण विरति कउ जाणु भरहु रमायणु महापुराणु ॥

अर्थ —वर्ष और दिन ज्यों-ज्यों व्यतीत होने लगे वे उसमें उतनी ही वृद्धि लाने लगे। जब उसकी १२ वर्ष की अवस्था हुई तो विद्या पढ़ने के लिये वह उपाध्याय कुल (विद्यालय) जाने लगा।

सर्व प्रथम उसने 'ओंकार' शब्द को मनमें जाना। फिर लक्षण शास्त्र छन्द शास्त्र तथा तर्क शास्त्र को प्रमाणित किया (पढ़ा)। व्याकरण जानकर वैराग्य का विषय उसने जाना और इस प्रकार भरत (नाट्य शास्त्र) रामायण तथा महापुराण का (ज्ञान प्राप्त किया)।

उमाह – उभ्याम–ऊंचाई अवस्था। विज्जा – विद्या।

उज्झाउरि – उपाध्याय कुल–विद्यालय। लखणु – लक्षण। तक्क – तर्क।
मुण् – जानना। विरति – वैराग्य–अध्यात्म।

[६५–६६–६७]

लिखत पढत सीखिउ असुरालु, जोतिषु तत मतु सब सारु।
छुरी सयलु अरु खडागरु, सीखी सयलु कला बहत्तरु॥

भउ जुवाणु मइ सुद्धि सहाउ, लजालु वउ धम्मु कउ भाउ।
सीलवत कुल अज्ञा फिरइ, विषयह ऊपरि भाव न धरइ॥

देखिऊ पूत तणऊ विवहारु, भणइ सेठि कुल वूडण हारु।
पूत विषय मनु लग्गु ण तोहि, कैसे बंस विद्धि हुई मोहि॥

अर्थ —निरन्तर पढ कर जोतिष, तत्र शास्त्र और मंत्र का सब सार सीख लिया। सभी प्रकार से छुरी और तलवार चलाना (आदि) सभी ७२ कलायें उसने सीख ली॥६५॥

वह युवा हुआ किन्तु वह स्वभाव मे शुद्ध मति का था, इस अवस्था मे भी वह लज्जाशील था तथा उसे धर्म का भाव था। वह शीलवत कुल की मर्यादा के भीतर आचरण करने वाला था तथा विषयो पर ध्यान नही देता था॥६६॥

पुत्र का (ऐसा) व्यवहार देखकर सेठ कहने लगा "(मेरा) कुल (इसके कारण) डूबने वाला है। (पुत्र से, उसने कहा,) हे पुत्र तुम्हारा मन विषयो मे लग नही रहा है, अत मेरे वश की वृद्धि कैसे होगी" ॥६७॥

असरालु – निरतर। तत – तत्र। मतु – मत्र। – खडागरु– तलवार।

जुवाणु – युवा। मइ – मति। लजालु – लज्जाशील। वउ – वपुष्–शरीर अवस्था। बसविद्धि – वश वृद्धि।

[१८]

(वस्तु बंध)

कवड जिण्हि कै बसइ णिच्च चित्ति ।
अणु जे हुरुहि धारुवहि गंठि मुठि तक्कंते जाहि ।
जुवारिउ लज्ज विणु विसय मत्त न विरत्ति सोहहि ।।

जिन्ह परदव्वहं मणु ठविल्लु अरु वंछहि परनारि ।
तिन्ह हक्कारि वि सेठि तिह कहिय बत्त बइसारि ।।

अर्थ —जिनके चित्त में नित्य कपट बसता है तथा जो दुनिया को गाली देते हैं (बुरा भला कहते) तथा शोरगुल मचाते हैं, तथा जो (दूसरो की) गांठ और मुट्ठी ताकते हुये देखते रहते हैं। जुआरी जन जो निर्लज्ज होकर विषयों के मस्त रहते हैं और जिन्हे वैराग्य अच्छा नहीं लगता है जिनका मन सदैव दूसरों के द्रव्य मे स्थित रहता है तथा जो दूसरों की स्त्री की वांछा करते रहते हैं ऐसे व्यक्तियों को सेठ ने बुलाने एवं बैठाकर (अपनी) बात करने का निश्चय किया।

कवड – कपट। हुरु ∠ हुरु ∠ मध्य – बुरा कहना गाली देना।
धारुद् ∠ धा+रुद् – चिल्लाना शोर करना। हक्कारि – बुलाना।
मत्त ∠ मत्त। निरु – निश्चित रूप से। विरत्ति – वैराग्य।

[१९–७]

अवहि सेठि मंतु परिठविउ जुवारीन्हु हक्कारउ जाउ ।
सब भट जो न करहि बहु काए ते लहु सेठि बुलाए जाए ।।

बार बार देता हरि जाहि अरु जूवा खेलत न अघाहि ।
चोरी करत न आलसु करइ गंठि काटि अंतरावइ जाय ।।

अर्थ —तब सेठ ने मत्र (विचार) परिस्थापित (निर्धारित) करने हेतु जुवारियो को बुलाया । नट तथा भट जो बहुत कानि (लज्जा) नही करते थे उन सबको भी सेठ ने जान बूझकर बुलाया ॥६६॥

जो वार वार वेश्या के घर जाते थे तथा जुवा खेलते हुये तृप्त नही होते थे, जो चोरी करने मे आलस्य नही करते तथा (दूसरो की) गाठ काट करके अपने घर के भीतर धरते थे ॥७०॥

[७१–७२]

जिनु कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जणु कियउ आपुणी मुठि ।
गजणु कूडू मारि जिणु सही, तिणि सहु सेठि वात सहु कही ॥

अहो वीरु तुम्ह एसउ करहु, बूडिउ कुल मेरउ उद्धरउ ।
जो जिणदत्त विषय मनु लावै, निछय लाख दामु सो पावै ॥

अर्थ —जिनकी दूसरो के धन पर दृष्टि जाती थी उनको उसने अपनी मुट्ठी मे कर लिया । जिनका कार्य तिरस्कार करना (कपट करना) एव मारना (इस प्रकार का) सभी कुछ था, उनसे भी सेठ ने वे सभी बातें कही ॥७१॥

"अरे वीरो तुम इस तरह करो कि मेरे डूबे हुए वश को उबार लो । जो जिनदत्त का मन विषयो की ओर लगा देगा, वह निश्चित रूप से एक लाख दाम पावेगा ॥७२॥

गजण ∠ गञ्जन – अपमान, तिरस्कार ।
दाम ∠ द्रम्म – एक सोने का सिक्का ।

[७३–७४]

जुवारिउ हसि बोलइ बोलु, तुम्हि तौ धरिउ हमारौ तोलु ।
जइयहु रमइ नयर नर नारि, तउ तुम पाछै सकहु सवारि ॥

राजा सेठि सु बयइ ताहिं मह सभु खलियउ णयर न माहि ।
जइ लीला रसु खेलइ जाहिं तउ तुह उत्तर दीजउ ताहि ॥

अर्थ —कुमारियों ने हँस करके यह बात कही "तुम ने तो हमको ठगोल लिया (हमारा मूल्य आंक लिया)। यदि वह (जिनदत्त) नगर-नारियों (वेश्याओं) के साथ रमने लगे तो (उसके) पीछे तुम उसे (अपने सत्य के अनुसार) ठीक कर सकोगे ?

राज-सेठ ने उससे कहा कि मेरे समान लज्जित दूसरा कोई नहीं है इससे अधिक क्या कहूँ। वह जिनदत्त लीला रस (भोग विलास) में जब इच्छा करने लगे तब तुमें उसका उत्तर देना (विवाहादि के विषय में उसके विचार बताना)।

जइ ∠ यदि। णयर ∠ नगर।
खलियउ ∠ खीलित – लज्जित शरमिन्दा।

[७२–७३]

चले वीर जिणदत्त कुमारि णवजोव्वणी विवाणहिं णारि ।
कवणइ वीर चडा मणु लाव पुणु वत्तहिं सु एक्कइ भाव ॥

कवणइ वीर जुआ रस रमइ कवणइ लेइ वेसा घरि भमइ ।
लइ अवरउ पुणु तिय माहि छिपयउ तोवि ण ताणु वेधियउ हियउ ॥

अर्थ —वे वीर जिनदत्त को जुआ घर में ले गये तथा उन्होंने नव युवतियों को दिखलाया। किसी वीर ने उसका मन किसी अन्य प्रसंग में लगाया लेकिन जिनदत्त का मन एक क्षण भी नहीं लगा ॥७२॥

कोई वीर उसे जुए के रस में रमाने लगा तथा कोई उसे वेश्या के घर में ले जाकर रहने लगा। किसी ने उसे ले जाकर स्त्रियों के बीच में खड़ा कर दिया तब भी उसका हृदय (उसमें) विद्ध न हुआ।

हकारि ∠ आ+धारय् – बुलाना ।

वेसा ∠ वेश्या । थका ∠ थक्क – अवसर, प्रस्ताव-समय ।

[७७–७८]

एत्थतरि ते कहा कराहि, णदण वण चैत्यालइ जाहि ।
वइसि वीरुन्ह वदण ठई, उह की दिठि लिलाडेहि गई ॥

दीठी पाहणमय पूतली, गय जिणदत्त दिठि भिभली ।
वहु लावण्ण गढी सुतधारि, भूले देखि अचेयण नारि ॥

अर्थ —इसके पश्चात वे क्या करते हैं कि नदन वन के चैत्यालयो मे जाते हैं । वहा पर बैठकर उन वीरो ने भगवान की वदना की । इसके पश्चात् उसकी दृष्टि (चैत्यालय) के ललाट पर गई ।

जब एक पाषाणमय (पाषण निर्मित) पुतली दिखाई पडी तो जिनदत्त की विह्वल दृष्टि उस पर जा लगी । वह सूत्रधार (शिल्पकार) के द्वारा अति सुन्दर गढी गई थी । उस अचेतन स्त्री (पुतली) को देखकर वह जिनदत्त अपने आप को भूल गया ।

एत्थतरि इत्थतर – इसके बाद । दिठि ∠ दष्टि ।

पाहणमय – पाषाणमय । गय – गत ।

[७९–८०]

मूलिवि पडिउ ताहि मुख देखि, इह परि आहि रूप की रेख ।
काम वाण तसु वेधिउ हियउ, धार जुवारिन्हु अचलु कउ लयउ ॥

वाहरि वीर ति देखहि आइ, लइ जिणदत्त उछग चडाइ ।
देखि पूतली विभिउ एहु, सेठिणि भणिउ वधाउ देहु ॥

"हे पुत्र, सुनो। मैं तुम्हे विचार कर कहता हूँ। जिस नारी को तुम पुतली के रूप मे जानते हो, यदि वह रूप की राशि विद्याधरी भी हो, तो ऐसी स्त्री को तुम्हारे घर मे दासी के रूप में लाऊँगा ॥८३॥

तबोल ∠ ताम्बूल–पान। विजाहरि ∠ विद्याधरी।

[८४–८५]

सुत्तधारि लइयउ हकराइ, किसु कइ रूप घरी तै नारि।
कहिहि देसु मह्न वहियउ आइ, कर ककण तुव देउ पसाउ ॥
निसुणहि सेठि कहउ फुड तोहि, वारह वरस भमत गये मोहि।
फिरत देस मह्न चित्त पइठु, नयरी एक भली मइ दिठु ॥

अर्थ —उसने सूत्रधार को बुलवा लिया और उससे पूछा "तूने किस स्त्री के रूप की यह (पुतली) गढी है? उसका देश मुझसे कहो, मैं व्यथित हूँ। मैं तुम्हे प्रसाद के रूप मे कर ककण दूँगा।

(यह सुनकर वह कहने लगा) "हे सेठ, सुनो, मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि जब मुझे वारह वर्ष देशो मे फिरते हुए हो गए। देशो मे भटकते हुए मैंने ऐसी एक भली नगरी देखी और वह मेरे हृदय मे प्रविष्ट हो गयी"।

वहिय – व्यथित। फुड – स्फुट–स्पष्ट।

[८६–८७]

चपापुरी नयरी सा भणी, धण कण कचण सोहइ घणी।
अड दड एक सोवन घडी, मदिर दिपहि पदारथ जडी ॥
घरि घरि कूवा वाइ विहार, कचण मइ जिन कीए पगार।
उत्तम लोक वसहि सा भरी, जणु कइलास इद की पुरी ॥

अर्थ —वह चपापुरी नगरी कहलाती थी जो धन-धान्य एव कचन से

खूब सुशोभित थी जहाँ एक स्वर्ण-निर्मित प्रमद वन नाम की नदी है तथा रत्नों से जड़े हुए महल दीप्त रहते हैं ॥८६॥

जहाँ घर घर में कुआ बावड़ी एवं विहार बगीचा हैं जिनके प्राकार स्वर्ण के बने हैं। उत्तम लोग उसमें भरे रहते हैं और (वह ऐसी लगती है) मानों इन्द्र की पुरी कैलाश हो ॥८७॥

बाइ – बापी–बावड़ी।

[८८–८९]

कौबिलि जाए के हु देहि सु बाउ नीयवंतु गुणपालु सु राउ।
सयल सरूव अंतेउर नारि, करहि रज्जु ते नयर मझारि॥
विमल सेठ विमला सेठिणी तहि कीरति महि मंडल घणी।
विमलामती कहणि सा तिणी रूप विसेषद जिणु उरवसी॥

अर्थ —सभी जनों को जो [अपनी कीर्ति से] उत्साह प्रदान करता है उस नगरी का [चम्पापुरी का] राजा गुणपाल है जो नीतिवान है। उसके अन्तःपुर की समस्त स्त्रियाँ रूपवती हैं ऐसा राजा नगर में राज्य करता है ॥८८॥

उसी नगर में विमल सेठ और विमला सेठानी हैं जिनकी कीर्ति मही मण्डल में बनी है। विमलामती नाम की उनके जो लड़की है वह मानों रूप की विशेषता में उर्वशी है।

नीय – नीति।

[९०]
वस्तु बंध

सोजि सुन्दरी रूपवंत सुसार।
लंतिय हुव माइ कोलमाल सरवर बड़ी।
खेलती जल पउड करतालि मइ दिठि॥

सहिय समाणिय तहो भणिय इम जपइ सुतधारी ।
तासु रूव गुण वण्णियउ कइ रल्ह सुविचार ।।

अर्थ —उस सुन्दरी नयनाभिराम [आंखो की पुतली के समान] हंस गति लिये हुई, क्रीडा करती हुई, सरोवर [के तट] पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई, प्रकट रूप राशि को मैंने देखा। उसकी सखिया और समवयस्काएँ भी उसके अनुरूप थी, ऐसा सूत्रधार ने कहा। "[तदन्तर] रल्ह कवि कहता है कि वह विचार करके उसके रूप और गुण का वर्णन करने लगा।

णयरणपुत्तार – आंख की पुतली। कीलमाण – क्रीडमाण। पयउ – प्रकट। सहिय - सखिन्। समाणिय – समान+इक–समवयस्का।

[६१-६२]

मुंदडिय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हसु[1] देउ तसु भाउ ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ।।
सवई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथू पिंडरी ।
जघ जुयल कदली ऊयरइ, तासु लक[2] मूठिहि माइयइ ।।

अर्थ —छल्लो से युक्त उसके पैर सुशोभित थे। उसकी चाल हंस की चाल का भाव प्रगट करती थी। घुटनो के नीचे के स्थान टिकोणे बहुत घने थे और उन पर बजने वाली नेवरियां थी।

उसकी पिण्डलियो मे सभी वर्ण शोभित थे, मानो वे कुंथु (मनुष्य विशेष) की पिण्डलियां हो। उनके ऊपर कदली के (तने के) समान उसकी युगल जांघें थी और उसकी कटि मुट्ठी मे समा (आ) जावे ऐसी क्षीण थी।

कुंथू – एक पौराणिक राजा, मनुष्य विशेष।

१. हमु – मूलपाठ। २ लोक – मूलपाठ।

[९३-९४]

कनु हइ पति अनंगहु तणी सहु सु रंग रेह तहि घणी ।
मौसे चिहुर त उज्जल कसण अवर सुहाइ दीसहिं जाव ॥
चंपावण्णी सोहइ देह थण कंठलह तिरिय कहु रेह ।
पीणत्थणिए जोव्वण मयसार उरु पोट्टी कडियल विस्तार ॥

अर्थ —वह (कटि) मानो कामदेव का भवन थी और समस्त रंग तथा घनी रेखाएँ उसमें थीं। उज्ज्वल एवं नील वर्ण की रोमावलि थी जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुशोभित थी।

उसका चंपा पुष्प के रंग का शरीर शोभित हो रहा था उसके उदर में तीन रेखाएँ पड़ती थीं। वह पीन (उन्नत) स्तनों वाली थी तथा (उसके स्तन) यौवन-मद से युक्त थे। उसके उदर की पेशियाँ कटिस्थल तक फैली हुयी थी।

चिहुर ∠ चिकुर – केश – रोमावलि। पोट्टी ∠ पोट्ट – उदर पेशी।

[९५-९६]

हाथ सरिस सोहहिं आगुली णह सु व विप्पहि कुंद की कली ।
भुव बल जंतु काढि जनु धरुलें वण्णि सु रेह कविन्ह ते कहे ॥
इत्तोणी अब माठी लीव हुए सु पट्टिया सोहय पीव ।
कालि कु बल इकु सोमनु मणी नाक काथु जनु सुवा मणो ॥

अर्थ —हाथों के समान ही उसकी अंगुलियाँ सुशोभित थीं। उनके नख कुंद-कलिकाओं के समान चमकते थे। उसकी बलशाली भुजाएँ थीं जो मानो (सिंह जैसे) उस स्थान पर जंतु को काटकर समाई हों। ऐसा उसकी सुन्दर रेखाओं का वर्णन कवियों ने किया है ॥९५॥

लावण्यपूर्ण और माठित (सुडौल) वह बालिका थी और एक हलकी पट्टि उसकी ग्रीवा में थी। कानो में स्वर्ण के एक-एक कुण्डल थे। तथा नाक मानो सुए (तोते) की जैसी थी।

माठी – माठित–वर्मित। लीच – बालक, बालिका।

[९७–९८]

मुह मडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जहि के हो वप चाले किरण, जणु रि डसणी हीरा मणि छिरण।।
भउह मयण घणु खचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कचुरी।
सिरह माग [1] मोत्तिय भरि चलइ, अवरु पीठ तलि विणी रूलई।।

अर्थ —चन्द्रमा के वदन के समान उसका मुख मण्डल दीखता था। वह मृग नयनी अपने दीघ नेत्रो को नीचे किये हुए थी। उसके शरीर से किसी न किसी प्रकार की किरणें (दीप्ति) निकलती रहती थी। उसके दांत हीरामणि की कांति के समान थे।

उसकी भौंहे ऐसी थी मानों कामदेव ने धनुष चढा रखा हो। उसके ललाट का तिलक तथा हार (?) चमक रहे थे। सिर की मॉग मे मोतिओ को भरकर वह चल रही थी और उसकी पीठ के नीचे तक वेणी हिल रही थी।"

कचुरी – कचुली–हार।

[९९–१००]

नाव विनोद कथा आगली, पहिरी [2] रयण जडी कचुली।
इकु तहि अत्थि देह की किरणी, [3] अवर रलह पहिरइ आभरण।।
जिसु तणु चाहइ दिठि पसारि, काम बाण तसु घालइ मारि।
तिहु कौ रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ।।

१ मोग–मूलपाठ। २ मूलपाठ – पटि। ३ मूलपाठ – किरणि।

अर्थ —"वह संगीत विनोद एवं कला में बड़ी चढ़ी थी तथा उसने रत्न-जटित कंचुकी पहिन रखी थी । एक तो उसके शरीर की ही किरणें थी फिर रत्न कान्ति बढ़ाता है उसने (ऊपर से) आभूषण पहिन रखे थे ।।११।।

जिसको भी वह एक बार दृष्टि फैला कर देखती थी उसे वह काम के बाणों से मार डालती थी । उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है (क्योंकि) उसके शरीर को देखकर स्वयं कामदेव भी आकुल हो उठता था ।

[११-१२]

मल्हंती विलासमइ चलइ वरयण देखि कुमुणिवर ढलइ ।
अइसी विमलमइ गुण आयली धम्म बुधि सो भइ लागली ।।
हंस गमणि सा पदमिणि नारि सरवर दिठि सखी सिउ न्हाति ।
रूप देखि सुर विमउ करइ नरसुर लोइ समतु धरताइ[1] ।।

अर्थ —वह लीलापूर्वक एवं विलास गति से चलती थी और उसका वर्णन (रूप) देखकर कुमुनि पिघल जाते थे । इस प्रकार की वह गुणों में बढ़ी-चढ़ी विमलमती (नाम की) थी जिसकी अच्छी बुद्धि धर्म की ओर थी ।।११।।

वह हंस की सी चाल चलने वाली मानों पद्मिनी थी और वह अपनी सखियों के साथ नहाते हुये सरोवर में दिखाई पड़ी । उसका रूप देखकर देवता भी विस्मय (आश्चर्य) करते थे और समस्त लोग नरलोक एवं सुरलोक से (उसमें) तुलना करते थे ।।१२।।

[१३-१४]

मुत्ताहार कंठ गयउ पसाउ दीसहिं लाल दाम की ठाउ ।
चार चतीसे दीसे जाल दिढ अंगु किउ चित्त बरवालि ।।

१ धरतो – मूलपाठ ।

चित्तकार तवु लइयउ वुलाइ, पूत रूपु पढि लिखु निकुताइ ।
लिखतह कहिउ सरीरह ठवणु, भणइ सेठि लइ जाइ हे कवणु ।।

अर्थ —उस सूत्रधार को सेठ ने प्रसाद (पारितोपिक) दिया, एव एक लाख द्रव्य का उसने ठाउ (उपहार) दिया, उसे उस ज्ञानी ने रेशमी कपडे दिये तथा अपने चित्त को प्रमाण (स्थिर) करके उसने (एक) दृढ विचार किया ।

उसी समय उसने चित्रकार को वुलाया (तथा कहा)—मेरे पुत्र के रूप का चित्र विना किसी कुताही (कमी-कसर) के लिखो। जव (चित्रकार ने) कहा कि शरीर का उसने चित्र उतार लिया है, तव सेठ (अपने स्वजनो से) कहने लगा "इसे कौन ले जावेगा ।"

दाम – द्रव्य, एक सोने का सिक्का । पाट – पट्ट–रेशम ।
पटोल – पट्टकूल–रेशमी वस्त्र । ठयण – स्थापना–चित्र, प्रतिकृति ।

[१०५-१०६]

विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पड लइ चपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती सा वाल, देइ आसीस पढ छोडि दिखाल ।।
विमलमती पडु दीठउ जाम, गय विहलघल सधर पढि ताम ।
हार डोर जसु सोहहि अग, चदन सिंचि लई उछग ।।

अर्थ —एक विप्र को आज्ञा हुई, वह पट (चित्र) लेकर चपापुरी गया । उस वाला विमलमती से उसने भेंट की तथा आशीर्वाद देकर चित्रपट को खोल कर उसने दिखलाया ।

विमलमती ने जव चित्रपट देखा तो वह विह्वलाङ्ग होकर धरा पर गिर पडी । उसके शरीर मे हार व माला सुशोभित हो रहे थे । उसे चदन से सींच कर सचेत कराया गया ।

पड – पट–चित्रपट । विहलधल –विह्वलाङ्ग–व्याकुल शरीर वाली ।

[१ ७–१ ८]

कि यहु बह्मा कि बउ बयणु कि यहु संकरु कि महुमहणु ।
कि यहु रूव मयणु की खाणि किसु की कला वरीतइ प्राणि ।।
निसुणहि सेठि कहउ हउ वित्थर अहियइ सो वसंतपुर नयरु ।
वसइ जीवदेउ कुटंब संजुत तिहि जिणदत्त मणोहरु पुत्तु ।।

अर्थ —(जब सेठ ने यह चित्र देखा तो उसने कहा) 'क्या यह ब्रह्मा है अथवा यह विष्णु है ? अथवा शंकर है अथवा मधुसूदन कृष्ण है अथवा यह रूप एवं काम (लावण्य) की खान है ? यह किसकी कला है जिसे हे पूत ! तू ले आया है ? ।।१ ७।।

उस ब्राह्मण ने कहा हे सेठ सुनो मैं तुमसे विवरण के साथ कहता हूँ उसे वसंतपुर नगर कहते हैं। उस नगर में जीवदेव सेठ सकुटम्ब रहता है उसका यह सुन्दर पुत्र जिनदत्त है। ।।१०८।।

महुमहणु – मधुमथन–विष्णु उपेन्द्र। रूव – रूप। तइ – तत्र तदा–वहाँ उस समय। वरी – वरीय–वरक–वर पुत्र।

[१ ९–१११]

इहाँ हो तउ चयउ सुतधार जाइ कही विमलामति नारि ।
तबहि बुलाइ सेठि मंतु' कीय पाठय वरउ कुमारी बीय ।।
लिय परियणु तबु लइ हकारि पूछइ सेठि मंतु बइसारि ।
परियणु भणइ विमल मत कीय विमलमति जिणदत्तहि दीय ।।
अहो कुटंब तुम्ह नीकउ कियउ इतवर बोल हम विगसइ हियउ ।
बीय कवणी कहा तो कीय ता घर बधाउ सयलइ घरि दीय ।।

अर्थ —(पुन उसने कहा) जब वहाँ से होकर सूत्रधार गया था

१ मंतु–मूलपाठ।

उसने विमलमती नारी की बात (वसंतपुर) जाकर कही थी। तब सेठ ने (सेठानी को) बुला कर मंत्रणा की कि तुम्हारी लड़की को वरण करने के लिये वे (मुझे) भेजें ॥१०९॥

यह सुनकर सेठ ने अपने परिजनों को बुला लिया और उन्हें बिठाकर उसने मंत्रणा पूछी। परिजनों ने कहा "हे विमल, ऐसा (ही) करो, विमलमती को जिनदत्त को दे दो ॥११०॥

सेठ ने कहा, "हे कुटुम्बियो, तुमने अच्छा किया, तुम्हारे इस श्रेष्ठ वचन से हमारा हृदय विकसित हो रहा है। दुहिता रूपवती हो तो क्या किया जाय? हो न हो उसे अवश्य किसी सज्जन के घर दे दिया जाए" ॥१११॥

[११२–११३]

चवइ सेठि तुव देण्ण सभाइ, नीकी लगनु विवाहहु आइ।
धीय रूप पुणु पट्ट लिहाइ, कापरु पहिरि विप्पु घर जाइ॥
विप्पह जाइ भेटियउ साहु, सेठि जीवदेउ हसतिनचाहु।
तुमह काजु हम कियउ जु बहुत्त, धण्ण सुलखणु तुहारउ पूतु॥

अर्थ—तब सेठ (प्रस्ताव स्वीकार करते हुये) दैन्य स्वभाव से कहने लगा "अच्छी लगन में आकर व्याह करलो।" फिर (उसकी) लडकी का रूप एक पट्ट पर लिखा कर और कपड़े पहन कर वह ब्राह्मण (वापस) घर गया ॥११२॥

(घर) जाकर ब्राह्मण ने सेठ से भेंट की। सेठ जीवदेव उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण ने कहा "मैंने तुम्हारा कार्य बहुत (प्रकार से) किया। तुम्हारा सुलक्षण पुत्र धन्य है ॥११३॥

देण्ण < दइण्ण — दैन्य।

विवाह वर्णन

[११४-११५]

तवहिं सेठि विहसिउ सुयंतु, चित्त महिल्लाविउ पूछइ संतु ।
आवत जात न लायो बार, तिन्हु कै खेमु कुसल परिवार ॥
तिन्हु महु खेमु कुसलु सब कहउ अरु आये हमु रोपि विवाहु ॥
बाम्हणु भणइ बेन्नि करि जोडि अवरु लिखतु किन देखहु छोरि ॥

अर्थ —तब सेठ ने (उसे) शीघ्र देखा और मन मे प्रसन्न होकर शांत भाव से पूछने लगा 'तुम्हें आने जाने में कोई देर नहीं लगी। क्या उनके परिवार में कुशल क्षेम है" ? ॥११४॥

"उनके यहां सब किसी की कुशल क्षेम है और मैं विवाह निश्चित कर आया हूँ। यह कह कर ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़े और कहने लगा "इसके अतिरिक्त (जो कुछ उधर का समाचार है वह) इस लेख को खोल कर क्यों नहीं देखते हो ? ॥११५॥

[११६-११७]

तउ जिणदत्तहु लइय हकारि, पुछइ सेठि बात बइसारि ।
जिणुए पूत हउ अक्खउ तोहि इहु लिख लेख बाचि किन मोहि ॥
भणति कुसल कुटंब कुसलात अरु पउ लिखी लगुण की बात ।
अति रुवड़ी अम्मएं सुत्तारि, दीठी लिखी विमलमति नारि ॥

अर्थ —फिर उसने जिनदत्त को बुलाया तथा (पास में) बिठला कर यह बात पूछने लगा पुत्र ! सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूँ जिनदत्त तुम इस लेख को पढ़ कर मुझे क्यों न सुना दो ॥११६॥

(पुत्र ने यह पढ़ कर कहा) पत्र में अति कुशल और (अपने) कुटुम्ब की कुशलता लिखी है तथा उसमें लग्न (विवाह) की बात भी लिखी

हुई है। (इसके अनन्तर) उसने अत्यधिक रूपवती तथा सुन्दर तारिकाओ के नेत्रवाली विमलमती नारी को (पट्ट पर) लिखा (चित्रांकित) देखा ॥११७॥

[११८–११९]

पुणु जइ देखइ नारि गुणग, काम बाण घाइय सव्वंग ॥
अतुल महाबल साहर धीर, गउ विहलघल्ल तासु शरीर ॥
भणइ सेठि हमु हुइहइ सोगु, करहु विवाह हसइ जिण लोगु ।
जे र विजाहरि रूवहि रासि, अवसि करमि तोहि घरि दासि ॥

अर्थ—जब उसने गुण सम्पन्ना उस स्त्री (विमलमती) को देखा तो उसके सर्वांग को काम बाण ने वेध दिया। वह अतुल महा बलवान एव धीर साहूकार था किन्तु (उस नारी के चित्र को देखते ही) वह शरीर से विह्वलाङ्ग हो गया।

सेठ ने कहा "(हे पुत्र, तुम्हारी इस दशा से) हमे तो दुःख होगा। तुम विवाह करो, जिससे लोग हसी नही करें। यदि वह विद्याधरी तथा रूप की राशि है तो भी उसे अवश्य ही तेरे घर की दासी बनाऊँगा" ॥११९॥

साहर ∠ साहार ∠ साधुकार ∠साहूकार–महाजन।

[१२०–१२१]

तबहि सेठि घरि उछउ कियउ, सहु परियणु न्योते आइयो ।
पच सबद बाजेवि तुरंतु, बहु परियणु चाले सु बरातु[1] ॥
एकति जाहि सुखासण चढे, एकवु बाखर भीडे तुरे ।
एकनु साजित सिगरे घरी, एकणु साजि पलाणी करी ॥

अर्थ—तब सेठ ने अपने घरमें उत्सव किया। (उसमे) सभी परिजन

१ बरात – मूलपाठ।

ने निमंत्रण पाकर भाग लिया। शीघ्र ही पांच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा बहुत से परिजन बारात में चले ॥१२ ॥

कोई बराती सुखासण (पालकी) पर चढ़े जा रहे थे तथा कोई घोड़ों पर काठी रख करके चले। कोई शीघ्र चलने वाले वाहनों पर चले और किसी ने ऊंटों पर पलाण सजाया।

उछउ – उत्सव। परियणु – परिजन। सुखासण – एक प्रकार की पालकी।

[१२२-१२३]

एकति ढाली ढोला जाहि एकति हस्ति चडे विगसाहि ॥
एकति जाहि विवाणहि चइठ, सबु मिलि चंपापुरिहि पइठ ॥
चंपापुरि कोलाहलु भयो आगइ होंनि विमलु आइयो।
मिलिउ लोगु भउ हरख कल्लोलु, उपर परते देहि तबोलु ॥

अर्थ —कोई डोली के डोले में चल पड़े। कोई हाथी पर चढ़े हुए प्रसन्न हो रहे थे। कोई विमानों में बैठ कर जा रहे थे और वे इस प्रकार सब मिलकर चम्पापुरी की ओर चले ॥१२२॥

चंपापुरी में कोलाहल मच गया। विमल सेठ अगवानी के लिए आगे आया। लोग जब आपस में मिले तो आनन्द एवं प्रसन्नता छा गयी और वे एक-दूसरे को तांबूल देने लगे ॥१२३॥

ढाला – ढाल। हस्ती –हस्ती। तबोल – ताम्बूल–पान।

[१२४-१२५]

भणइ विमलु सुणिहि मैतो करहु कुमरु बरात सबु जेंवन चलहु।
उठहु सुदरु जेंवहु जिणदत्त, पुनि तौ होइ लगुन की बार ॥

चउरी रचीय हरिए वास, अरु तह थापे पुण्ण कलास ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोती चउकु ।।

अर्थ —विमल सेठ (परिजनो से) कहने लगा, आप ऐसा करें कुमार एव वरात (को लेकर) सब जीमने चलें । हे सुभटो, उठो और जीमरणवार जीमो क्योकि फिर लग्न का समय हो जावेगा ।।१२४।।

हरे बाँस की चँवरी (वेदिका) बनायी गयी और वहाँ पुष्प कलश स्थापित किए गए । स्त्रियाँ उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होने चँवरी के बीच मोतियो का चौक पूरा ।।१२५ ।।

जेंवरण – जीमन । सुहड – सुभट । लगुरण – लग्न । पुण्ण – पुण्य, पवित्र । नाइका – नायिका–स्त्रियाँ । सउका – स+उत्क – उत्साहपूर्वक ।

[१२६–१२७]

भयो विवाह विमल कसु किण्ण, अगनिउ दाम[1] दाइजो दिण्ण ।
समदी विमलमती विलखाइ, लइ विवाह वसतपुर जाइ ।।
घरह जाइ ते कहा कराइ, चडिवि अवास भोग विलसाइ ।
राज करत दिनु केतकु गयो, एतहि अवरु कथतरु भयो ।।

अर्थ —विवाह सम्पन्न हुआ तथा विमल सेठ ने दहेज मे अगरिणत द्रव्य दिया । उसने कुमारी विमलमती को विलखते हुए विदा किया अथवा समधी (व्याही) विलखती हुई विमलमती को लेकर विवाह के पश्चात् वसन्तपुर के लिए रवाना हो गये ।।१२६।।

घर जाकर उन दोनो ने क्या किया । वे अपने महल मे रह कर भोग भोगने लगे । इस प्रकार राज्य करते हुए (आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए) कितने ही दिन व्यतीत हो गये । इसके पश्चात् कथा का प्रवाह दूसरी ओर मुडा ।

१ मूलपाठ – दास ।

कसु – कीदृश। दाम (दाम) – द्रम्य–सोने का सिक्का–टंकक।
समइ – मिथा करना।

[१२८–१२९]

चडे सुखासण जात विहार भई भेट लंपटहु जुवार।
आइ कुमारी बोलियो बोलु अहो जिणदत्त इकु खेलहि खेलु॥
मं मं कार करत वइसरइ दुनौ दाउ जुवारिउ करइ।
पडत मनावी पूर हुवा आप आपु क मांगहि तिया॥

अर्थ —एक दिन पालकी मे बैठ कर जै मालय को जाते हुए जुवारियों एवं दुराचारियों से (जिनदत्त की) भेंट हो गयी। उन्होंने (जिनदत्त को देखकर) कुमारी आ रही है इस प्रकार वचन कहे और फिर कहा 'अहो जिनदत्त (आओ) हम एक खेल खेलें" ॥१२८॥

मना करते रहने पर भी वह वहाँ बैठ गया। और तब जुवारियों ने एक जुआ दाव लगाया। (पासा) डालने पर उनकी इच्छा पूरी हुई तथा वे अपने-अपने को तीन अंकों वाला कहने लगे ॥१२९॥

तिया – पांसे की वह डलान जिसमें प्राप्त अंक ३ के हों।

द्यूत क्रीड़ा

[१३० –१३१]

खेलत भई जिणदत्तहि हारि जुवारिन्हु जीति सवारि।
मलइ रम्हु हमु नाही छोडि हारिउ दम्मु एगारह कोडि॥
हारि दम्मु धरि जाइह जाणि जुवारीन्ह व दीनी आण।
इम बिन दीने जइ घर जाहु तो तुम्हइ बोलैव कम काहु॥

अर्थ —खेलते-खेलते जिनदत्त की हार होती गयी और (अन्त में)

जुवारियो ने ललकार कर उससे दाय जीत लिया। रल्ह कवि कहता है कि जुवारियो ने कहा, कि हमारा इसमे कोई दोप नही है" और इस प्रकार जिनदत्त ग्यारह करोड द्रव्य वहाँ हार गया ॥१३०॥

हारने के पश्चात् जब जिनदत्त ने घर जाना चाहा तो जुवारियो ने उसे सौगध दिला दी और कहा कि यदि हमे विना दिये घर जाओगे तो तुम जीवदेव का वध करोगे ॥१३१॥

पच्चारि – प्रचारय्–ललकारना। मूलपाठ–करउ

[१३२–१३३]

सो जिणदत्त अगोटिउ तहा, पठवउ जण रु भडारी पहां।
जाइवि तेण कहो यह बात, देहु पदारथ जाहु तुरत॥
भडारिउ कोपिउ पभणेइ, जूवा हारे को धणु देइ।
देइ सेठि त रु देखहु मांगि, मइ भंडारह विलाइवी आगि॥

अर्थ —उसके पश्चात् जिनदत्त तो वही रुक गया और उसने एक आदमी अपने भडारी के पास भेजा। उसने वहाँ जाकर सारी वात कही और कहा कि शीघ्र ही वहु-मूल्य रत्नादि दो जिससे वह जावे ॥१३२॥

भडारी क्रोवित होकर कहने लगा कि जुए मे हारने वाले को कौन धन देता है ? यदि सेठ देवे तो उससे माग करके देखलो। मैं (तो) भण्डार को अग्नि मे नष्ट नही होने दूँगा ॥१३३॥

[१३४–१३५]

जणु उठि गयउ विमलमति पास, जिणदत्तह छइ पडिउ उपासु।
णिसुणि वात नियमणि आकुली, आफी रयण जडित काचुली॥
माणिक रतन पदारथ जडी, विचि विचि हीरा सोने घडी।
ठए पासि मुत्ताहल जोडि, लइ हइ मोलि सु णव घन कोडि॥

अर्थ —वह व्यक्ति फिर विमलमती के पास उठ कर चला गया और कहा कि 'जिनदत्त को उपास करना पड़ गया है। यह बात सुन कर वह अपने मन में व्याकुल हुई तथा उसने अपनी रत्न जड़ित कंचुकी उसे दे दी ॥१३४॥

वह कंचुकी माणिक्य एवं रत्नों आदि पदार्थों से जड़ी हुई थी तथा बीच-बीच में हीरे एवं सोने से जड़ी हुई थी। इसमें पास-पास में मोती जड़े हुए थे। तथा वह सौ कोटि द्रव्य में मोल ली गयी थी ॥१३५॥

[१३६–१३७]

सणु सइ गयउ काचुली तहां जह जिणदत्त अथोडिउ जहां।
हारिवि द्रव्य काचुली अपिप दुखु भर आइवि पडिउ संतापु ॥
पडिउ संतापु भयउ विलखाइ बापु विढती कुपुरिषु खाइ।
मो समु अवरु कुपूत न भयो तात अर्थ मइ हारि जु गयो ॥

वह व्यक्ति कंचुकी लेकर उसी स्थान पर गया जहाँ पर जिनदत्त रुका हुआ था। जिनदत्त हारे हुये द्रव्य (के रूप) में कंचुकी अर्पित कर कर चला गया और फिर वहाँ संताप करने लगा ॥१३६॥

वह दुखित होकर विलाप करने लगा और कहने लगा कि पिता की कमाई (इस प्रकार) कुपुरुष ही खाता है। मेरे समान दूसरा कौन कुपुत्र होगा जिसने पिता के धन को इस तरह हारने के लिए लिया हो ॥१३७॥

अथोडिउ – अनात्मा रोकना छिपाना। अपि – अर्पयृ–अर्पित करना। बापु – पिता। विढंती – कमाई हुई पूंजी।

[१३८–१३९]

धीर धीर कै दुरिस गहीर विहसहि अर्थ जाहि पर तीर।
विरइ अर्थ जिल भुवैवा करहि ते दुरिस जिन आन ति करहि ॥

उद्दिमु करहि जे साहसु करहि, धीरे होइ दिसतर फिरइ ।
विढइ लछि जे पुरवहि ग्रास, जाए गुरिए यहि दस मास ।।

अर्थ —जो पुरुष धीर, वीर एव गम्भीर होते है वे परदेश जाकर धन कमाते हैं । जो धन कमा करके उसकी वृद्धि नही करते हैं वे पुरुष क्यो नही जन्म ग्रहण करते ही मर जाते है ।।१३८।।

जो साहस करके पुरुषार्थ करते है तथा धीरतापूर्वक देशान्तरो मे फिरते है, तथा जो लक्ष्मी कमा कर ग्राशा पूर्ण करते है ऐसे ही लोगो को दस मास तक माता के गर्भ में रह कर उत्पन्न होना उचित मानना चाहिए ।।१३६।।

[१४०-१४१]

ना विढवहि न दिसतरु फिरइ, दान धरमु उपगार नु करहि ।
दिहि न किसहि पातकी लोणु, वइठे राखहि घर के कवणु[1] ।।
णासत घर बैठे सु खियाहि, पारिणऊ पिवहि वार चउ खाहि ।
ग्रासु पराई करइ जू मुयउ, सोभित न पूतु गरभ ही मुयउ ।।

अर्थ —जो न धन कमाते हैं और न किसी देशान्तर मे जाते हैं तथा न दान, धर्म एव परोपकार करते हैं । ऐसे पापी किसी को नमक भी नही देते हैं, और वे केवल घर के कोने मे बैठ कर रखवाली करते हैं ।।१४०।।

बैठे बैठे घर को नष्ट करते हैं और क्षय को प्राप्त होते हैं । उनका काय केवल पानी पीना तथा चार २ वार खाते रहना हैं । जो दूसरो की आशा करते हैं वे मरे हुये हैं । ऐसा पुत्र (भी) शोभित नही होता, यह भी मानो गर्भ मे ही मर गया हो ।।१४१।।

दिसतर – देशान्तर । उपगार – उपकार । लोणु – लवरण, नमक । वार चउ – चार

समय जिनदत्त प्रसन्न हो गया। (किन्तु) रल्ह कवि कहता है वह अवसर देख कर घर छोड़ने का कोई उपाय करने लगा ॥१४५॥

[१४६-१४७]

झूठउ लेखि सुसर कहु लिखइ, फुणि बुलाइ जण एकह कहइ ।
कहिउ सेठिस्यों जाइवि तेण, हौं जिणदत्तह आयउ लेण ॥
तउ जिणदत्तह लेइ हकारि, पूछइ मतु सेठि वइसारि ।
जइयह पूत तत इसउ कीज, नातरु घर पठइ जणु दीज ॥

अर्थ —(तदनन्तर उसने) अपने श्वसुर का एक झूठा लेख (पत्र) लिखा और एक व्यक्ति को बुला कर कहा, "सेठ के पास जा कर यह कहो कि मैं जिणदत्त को लेने आया हूँ ॥१४६॥

फिर सेठ ने जिनदत्त को बुलाया और अपने पास बैठा कर मन्त्रणा की और पूछा "यदि पुत्र, जाना है तो ऐसा करो, नही तो इस व्यक्ति को घर भिजवा दो" ॥१४७॥

[१४८-१४९]

तौ जिणदत्त भणइ कर जोडि, हम कहु तात देहु जिण खोडि ।
आपु मतं हौं कैसे चलौ, जो तुम पिता कहहु सो करौ ॥
पिता मतइ जिणदत्त चलाइ, सवल वहुलकु देइ अघाइ ।
विमलामती चली तिह ठाइ, सासु सुसरु कहइ लागइ पाइ ॥

अर्थ —तब जिनदत्त हाथ जोड कर बोला "पिताजी हमे कुछ दोष न दो। मैं अपने मतानुसार कैसे चलूंगा ? जो आप हे पिता कहेंगे मैं वही करूंगा" ॥१४८॥

पिता से आज्ञा लेकर जिनदत्त चला गया उसके साथ मार्ग के लिये बहुत

का सामान बांध दिया गया । विमलामती भी सास श्वसुर के पांव लग कर उसी स्थान को चली ॥१४९॥

[१५०-१५१]

चले पंचसत बोहिथि चले बेगि मज्झिम चंपापुरि मिले ।
भलउ विमल तुम्ह कीयउ किमउ आणि मिलायउ म्हारिय धीयउ ॥
दिन दोइ चारि तिह्ण ठा रहइ पुणु उपाउ चलिवे कौ करइ ।
सो जिणदत्तु विमलमति कंतु, नंदणवणु चलियउ विहसंतु ॥

अर्थ —(जिनदत्त के) साथ में पन्द्रह आदमी और चले और शीघ्र ही चंपापुर आकर उन्होंने पड़ाव किया । विमल सेठ ने उससे कहा 'तुमने अच्छा किया जो यहां आकर मेरी लड़की से भेंट करायी" ॥१५०॥

दो चार दिन तो वहां वह ठहरा लेकिन फिर चलने का उपाय करने लगा । वह विमलमती का पति जिनदत्त विकसित होता हुआ नन्दनवन को चला ॥१५१॥

बोहिथि – साथी । उपाउ – उपाय
१ धीयो–मूल पाठ

[१५२-१५३]

देखिउ वासुपुज्ज को भवणु पंचामि तहि करायौ न्हवणु ।
संजमु पूजु लई तं जोइ भयो भरपनु न देखइ कोइ ॥
पुलिय असीस देइ सोपती पूजइ नारिय होंति भजंति ।
तिरह असीस आगमी बाम विमलामती न देखइ ताम ॥

अर्थ —(उस नंदनवन में) वासुपूज्य स्वामी का मन्दिर देख कर जिनदत्त ने पंचामृत अभिषेक कराया । उसने संजमी पूजा (एक प्रकार की

जडी) को देखकर लिया-(उसकी सहायता से) वह प्रच्छन्न हो जाता और उसे कोई न देख पाता था ॥१५२॥

फिर उसने (मन्त्री को) खूब आशीर्वाद दिया तथा वह फूलों के मध्य होने वाली पराग (रूप) हो गया। जब (विमलमती) के शिर पर (हाथ रख कर) उसने आशीष दी, तो विमलमती भी उसे नही देख सकी ॥१५३॥

पचमि – पचामृत

वस्तु बन्ध

[१५४]

पुणुवि सिर रुधित्त अजणीया ।
उझत्ति पच्छण्णु भयउ, सिग्घु सोवि दसपुरि पइठिउ ।
ता रडियउ विमुलमई, जा न कतु निय नयणु दिठियऊ ॥
छडि इकल्ली जिणभुवणि, गउ पहु कारिणि कवण ।
पिय विऊय हुय रल्ह कइ, रोवइ हसागमणि ॥

अर्थ —जिनदत्त ने फिर सिर पर अजनी रख ली जिससे वह झट प्रच्छन्न हो गया और शीघ्र ही दशपुर पहुँच गया। जब उसने अपने स्वामी को अपनी आखो से न देखा तब विमलमती (रोने) लगी। "मुझे जिन मदिर मे अकेली छोड कर मेरा स्वामी किस कारए से चला गया" रल्ह कवि कहता है कि पति से विमुक्ता होकर वह हँसगामिनी रोने लगी।

उझत्ति – झटिति, झट, शीघ्र। सिग्घु – शीघ्र। विऊय – विमुक्त।

अर्द्ध नाराच

[१५५–१५६]

हसागवणी चदावइणी, करइ पलाव।
मोही आगइ देखत पेखत, कत गयउ नाह ॥

धाव पुणइ हियडा कोपइ मणुम रडइ ।
हा हा दइया काहोमइया पिउ पिउ पिउ करइ ॥
आयउ मरणु नाही सरणु साइ कहा कराऊ ।
कंठरोहणु चालि हुवासणु झंपा देइ मराऊ ॥
काठउ कीयउ कैसे जीवउ पिय विणु तोहि ।
हाइ नाह गुसइ सहि छाडि कति गयउ कंत मोहि ॥

अर्थ —वह हंसगामिनी और चन्द्रवदनी (विमलमती) प्रलाप करने लगी । 'मेरे आगे से देखते देखते हे नाथ आप कहाँ चले गये ।" वह चीख धूप करती है । उसका हृदय कुपित हो रहा है तथा मन रुदन कर रहा है । हा हा देव क्या हो गया ? (इस प्रकार रटते हुये) वह पिउ पिउ करने लगी ॥१५५॥

(अब) मेरी मृत्यु आ गयी है, किसी का शरण नहीं है अब क्या उपाय करू ? कंठ अवरुद्ध हो रहा है, क्या अग्नि जला कर और उसमें कूद कर मरजाऊँ ? तुमने कष्ट दिया है हे पति ! तुम्हारे बिना कैसे जीऊँ ? हाय मेरे स्वामी कहाँ छोड़ कर चले गये ॥१५६॥

का० – कट्ठ – कष्ट । सा० – साति – उपाय ।

[१५७]

चौदिसि जोवइ बाहुडि रोवइ कहा कियौ करतार ।
वेलि चडंती पडिरवडंती भउ सामी अंतराल ॥
भई स भुली जाला भुली ताणु भुसरे जाइ ।
जिणदत्त गुसाइ अप्पाणउ तावउ जली दवहि पचाइ ॥
तणु भी बंधु तो जिणदत्तु निरूती सुणहु विचार ।
एवस्सउ गहयउ तो भु मवउ चंपुर वारि ॥

अर्थ —चारों दिशाओं में वह देखती है तथा धाड मार कर रोती है

परमात्मा, तूने यह क्या किया ? सज्जनी लता को गिराकर स्वामी अंतराल (बीच) में ही चले गये। अत्यधिक दुखित हुई तथा सास श्वसुर एवं माता (के सामने) वह मलिन मुख वाली हो गई। जिनदत्त कुमार को जो अपने स्वामी थे, उन्हें में इस प्रकार गवा चली। अब उसका स्वामी जो जिनदत्त थे उसके बारे में सुनिये। वह जो अकेला गया था वह दशपुर के द्वार पर जा पहुँचा ॥१५८॥

चौपई

[१५८-१६०]

विमलमति जिणहर निरु रहइ, पिय विवोय सो कठुवि सहइ ।
इंदिय दमइ सीलु पालेइ, णमोयार णिय चित्तु गुणेइ ॥
जीवदेव नदनु नियकतु, जिणवर वदइ परिहरि तदु ।
जुवा खेले परिहसु भयो, मिमि सघात दसपुर गयो ॥
दसपुर पाटण कइ पइसार, वाडी देखतु भई वडवार ।
वृष असोक कंउ दि गऊ जहा, खणु इकु नीद विलम्यो तहा ॥

अर्थ —विमलमती निश्चित रूप से जिन मन्दिर मे रहने लगी। पति के वियोग मे वह कष्ट सहन करने लगी। इन्द्रियो का दमन और शील-व्रत का पालन करने लगी तथा सदैव णमोकार मत्र का चित मे स्मरण करने लगी ॥१५८॥

जीवदेव का पुत्र मेरा पति है। मन्दिर की वदना करते समय मुझे छोड कर चला गया है। जुवा खेलने से (उसका) जो परिहास हुआ उसी चोट के कारण वह दशपुर चला गया है ॥१५९॥

[उधर जिनदत्त को] दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर उसके बगीचे देखते २ बडा समय हो गया। वह अशोक वृक्ष की ओट मे गया, वहाँ उसने एक क्षण (थोडी देर) नीद मे विश्राम किया ॥१६०॥

[१६५-१६६]

तउ जिणदत्त वात हसि कहइ, हउ जाण जहि सूकी ग्रहइ ।
तोहि निपुंस्सकु जपइ लोगु, ताहि ग्रमरउ रहिउ करि सोगु ॥
भणइ वीरु जइ कहिउ करेहि वाडी सयल भुगति जइ देहि ।
फूलहि ग्रव नीव कचनार, सहले करि ग्राफउ सहहार ॥

ग्रर्थ —फिर जिनदत्त हस करके वात करने लगा, मैं तो सूखी (वाडी) ही जानता हूं । लोग तुम्हे नपुसक कहते हैं और इसीलिये यह ग्राम्र वाटिका शोक कर रही है ॥१६५॥

पुन उस वीर (जिनदत्त) ने कहा "यदि ग्राप मेरा कहना करें तो सपूर्ण वाडी भुक्ति (भोजन फल) देने लगे; ग्राम, नीबू, कचनार के पेडो पर फूल ग्रा जावे तथा मैं सहकार को सफल (फलयुक्त) करके ग्रर्पित करू" ॥१६६॥

ग्रमरउ (ग्रमराउ) – ग्राम्रराजि – ग्राम्र वाटिका

उद्यान-वर्णन

[१६७-१६८]

जइ तू वाडी करहि सुवास, तौ जिणदत्त हू तेरउ दास ।
करहि सत जइ ग्रावइ तोहि, निहचै राजु करहि घरि मोहि ॥
जो वाडी हूई थी मइल, ग्रठविह पूज रई तहि सयल ।
पुण्प विटे जे उकटे गए, जिण गधोवइ सिचण लिए ॥

ग्रर्थ —सेठ ने कहा "यदि तू वाडी को सुवासित कर दे तो हे जिनदत्त ! मैं तेरा दास हो जाऊं । यदि तुझे (कुछ) ग्राता हो, तो (मेरा यह ग्रनिष्ट) शांत कर और मेरे घर मे तू निश्चय राज्य कर ॥१६७॥

जो वाडी मलिन हो गयी थी वहां सब सब ने ग्रष्ट प्रकार से पूजा

श्रीखंड, अगर और गलीदी धूप के वृक्ष थे, वे सुन्दर नर-नारी के समान ही महा खड़े थे। ॥१७२॥

[१७३-१७४ [

जाई जूहि वेल सेवती, दवणो मरुवउ अरु मालती।
चपउ राइचपउ मचकु द, कूजउ बउलसिरी जासउदु ॥
वालउ नेवालउ मदारु, सिंदुवार सुरही मदार।
पाडल कडपाडल घणहूल, सरवर कमल बहुतक हूल।

अर्थ —जाति, यूथिका, वेला, सेवती, दवणा मरुआ तथा मालती, चंपा, रायचपा, मुचकु द, कुब्जक मोलसिरी तथा जपापुष्प ॥१७३॥

वाला, निवारिका, मदार, सिंदुवार, सुरभित मदार, पाडल, कठपाडल, गुडहूल तथा तालाव मे (खिले हुए) कमलो में (भ्रमरादि का) बहुतेरा हल्ला (शब्द) होने लगा ॥१७४॥

बउलसिरी – वकुलश्री – मोलसिरी। सुरही – एक प्रकार कीघास।

[१७५-१७६]

अवराउ फल लीयउ असरालु, कोइल शब्द कियो वंवालु।
उवहिदत्त तहि कहा कराउ, पाइ लागि पुणु घरि लइ जाइ ॥
उदहिदत्त घरि गउ जिणदत्तु, धर्मपुत्त करि ठयउ तुरंतु।
तिस हिस पुत्त अखड सरीर, जो इह वणिज जाण पर तीर ॥

अर्थ —(अव) अमराय (आम्र वाटिका) ने निरतर (सघन रूप से) फल धारण किए, कोयलो ने जोरशोर का शब्द किया। तव सागरदत्त ने क्या किया कि पैरो पड़ कर वह उसे घर ले गया ॥१७५॥

जव जिनदत्त सागरदत्त के घर गया तो सागरदत्त ने उसे तत्काल

धर्म पुत्र कह के मान्यता द दी। उसके शरीर सुख के लिये पूर्ण व्यवस्था कर दी ताकि वह समुद्र पार व्यापार के लिये न [जावे] ॥१७६॥

मंथराउ – माम्रराजि। प्रसरामु – निरंतर। मंगामु – हस्त+ मासु – पोर पोर का।

[१७७–१७८]

एत्तहि वणिउ वणिवर सामुहाइँ ता जिणदत्त हियउ गहगहइ।
हाथ जोडि पुणु पूछइ बाल हमहु वणिज पठावहु ताल ॥
जीवदेउ बोलइ मुहु पेखि पुत विओग ण सक्कउ देखि।
हमि तुम्हि एकहि जाहुँ पुत, जिम लइ आवहि रयण बहुत ॥

अर्थ —इतने ही मे कुछ बड़े व्यापारी वहाँ सम्मुख आए, जिससे जिन दत्त का हृदय गद्‌गद हो गया। हाथ जोड़ कर सागरदत्त से उसने निवेदन किया कि "हे तात हमें भी व्यापार करने भेजो ॥१७७॥

सागरदत्त उसका मुख देख कर बोला "मैं पुत्र का वियोग नहीं देख सकूँगा। हे पुत्र हम और तुम एक ही (साथ) जाएँगे जिससे हम बहुतेरे रत्न लाएँगे" ॥१७८॥

पेख् – प्र+ईक्ष् – देखना।

व्यापार के लिये प्रस्थान

[१७९–१८]

जीवदेउ चालइ जिणदत्तु, धणु-धणु वाहण लयो बहुत।
लइ सुकीठ वत्थु सब भरी जा पर तीर व्यवहारी करी ॥
चारुदत्त गुणदत्तु, सुदत्तु सोमदत्त बम्हदत्तु धनदत्तु।
सिरिदत्तु हरिदत्तु भानुदित्तु, जो थे हम्मा सेठि की पुत्तु ॥

अर्थ —सागरदत्त और जिनदत्त चले तथा अपने साथ उन्होने बाखरो मे बहुत सा अन्य अन्य (विविध प्रकार का) सामान लिया। उन्होने उन सब वस्तुओ को भरा जो कठिनाई से तैयार होती थी और विदेशो मे बहुत मँहगी थी ।।१७९।।

(सागरदत्त के साथ) चारुदत्त, गुणदत्त, सुदत्त, सोमदत्त, वन्ना, धनदत्त, श्रीगुण, हरिगुण, आशादित्त तथा हपा सेठ का पुत्र छी था ।।१८०।।

कीठ - क्लिष्ट – क्लेश युक्त – कष्ट पूर्वक तैयार की हुई।

[१८१–१८२]

अजउ विजउ रजउ चलहि, आसे वासे सोम तहि मिलहि ।
चलिउ साहु तेजू दिवपालु, महरु पुत्त सुठ सुठु सुरुपाल ।।
तीकउ वीकउ हरिचद पूतु, ते वाखर भरि चले बहूत ।
सील्हे वील्हे गुणहि ण काहु, चलहि विज्जाहर आसे साहु ।।

अर्थ —अजय, विजय तथा रजय चले, और आशा, वासा तथा सोम (नाम के व्यापारी उनमे) मिल गये। तेजू साह तथा देवपाल चले तथा महरु का सुन्दर पुत्र सुठु तथा श्रीपाल भी उनके साथ हो गये ।।१८१।।

हरिचद के पुत्र तीकउ तथा वीकउ (वे भी अपना सामान) बाखरो मे भर कर चले। सील्ह तथा वील्ह इस प्रकार चल पडे कि किसी को (अपने आगे) नही गिनते थे तथा विद्याधर आसा साहु भी (उनके साथ) चले ।।१८२।।

[१८३–१८४]

धध थोरणवहि ख ख गूढ, छोला खोखरु कन्हउ सूढु ।
सुमति महामति सोतह तणउ, चलिउ सधारु वील्ह चद तणउ ।।

मूढु न जाणइ जाहर माहि कोडि सीप भर लइ वै जाहि।
धणदेउ सेठि बहुत लिए, दुइ बोहिथु भरि वेणायडु।

अर्थ —मूढ कोसवाही भाषा चौसा लोकर, कान्हा सूडा महामति सोठ का (पुत्र) सुमति समाव एवं चंद का (पुत्र) बीरू चले ॥१८३॥

उन्होंने जाहरों में क्या है यह न जानते हुये भी कोडियों एवं सीपों को बैलों पर लाद लिया। धनदेव सेठ ने भी अपार सामग्री ली जिससे दो जहाज भर लिये और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया ॥१८४॥

[१८५–१८६]

बाघू पीता चालिउ अमर कोडि खरा लिखि लीए चमर।
जसु नाम नामे कन्ह पूतु, साथ पाटंबर चालिउ पूतु॥
जिसुकै हियउ पंच परमेठि सो गुणु चालिउ बंसा सेठि।
जिणवर पूज करइ तिहुकाल सोगुणु चालिउ सह गुणपाल॥

अर्थ —और बाघू तथा पीता भी चले तथा करोड़ खरे चमर (साथ) लिए। नाम का लड़का कन्हा तथा पूत भी रेशमी (मुल्यवान पाट लेकर) चला ॥१८५॥

जिसके हृदय में पंच परमेष्ठि थे ऐसा बंह दत्ता सेठ भी चला। जो जिनेन्द्र भगवान की तीनों काल पूजा करता था ऐसा गुणपाल भी साथ चला ॥१ ६॥

[१८७–१८८]

चले ति रयण परीखा करहि चले सि जोगु पदार्थ धरहिं।
तब वणजारे भए इकट्ठा कोस पंचदस निमिए बाइ॥
तसु वणिजारे चतुर बाइसा बाधइ ल्हुत चले भरि वाहण।
जो मतिहीन अमूल गमाइ तब नहिं जयहिंयत परवान॥

अर्थ —जो रत्नो की परीक्षा (परख) करते थे वे भी चले तथा जो बहुमूल्य पदार्थ रखते थे वे भी चले। सभी व्यापारी एक स्थान पर इकट्ठे हुये तथा पन्द्रह कोश पर जा कर उन्होंने पडाव किया ॥१८७॥

सभी व्यापारी चतुर एव छैले थे और बारह हजार बैलो को भर कर वे चले थे। जो मतिहीन एव अज्ञ थे (उन) सब मे सागरदत्त प्रमुख थे ॥१८८॥

रयण – रत्न। परीछा – परीक्षा, पारखी

[१८९]

छाडत नयर देश अतराल, गए विलावल कइ पइ पसारि।
बलद महिष सबु दइ निरु करहि, बाखरु सयल परोहणु भरहि ॥

अर्थ —नगर और देशो की दूरी को छोडते हुये वे विलावल तक चलते गये उन्होंने बैलो एव भैसो को दूसरो को दे दिया और सारा सामान जहाजो मे लाद दिया ॥१८९॥

[१९०-१९१]

भरि वोहिथ चले निज ठाइ, अण्णु बहुत इधणु चढाइ।
सयलहु वत्थु परोहणु कयउ, बारस वरिस के सवल लयउ ॥
वणिजारे जल जतइ ठांइ, धुजा पताका पडा इरइ।
मुदिगर लोहे भार सांकरे, सावधान हुइ वणिवर चढे ॥

अर्थ —तदनतर वे जहाजो को भर कर अपने स्थान को चले। साथ मे बहुत सा अन्न एव ईधन उस पर चढा लिया। बारह वर्ष का सबल (खर्ची) लेकर सभी वस्तुओ को जलयानो मे लाद दिया ॥१९०॥

वणिजारो को जल जतुओ का पता था। (जलयानो पर) ध्वज, पताका तथा पट (हवा द्वारा) प्रेरित हो रहे थे। उन्होने अपने साथ मुद्गर

मूढु न जाणइ बालद आमि कोडि सींग भर लद ले चालि।
धनदेउ सेठि पुत्त लिए, पूर बोहिथु भरि वेणायए।

अर्थ —मूढ सोणवाही बाबा ओला ओबार, कान्हा सुवा महामति सोठ का (पुत्र) सुमति सधार एवं चंद का (पुत्र) बीसह चले ॥१०३॥

उन्होंने बालदों में क्या है, यह न जानते हुये भी कोडियों एवं सींगों को बैलों पर लाद लिया। धनदेव सेठ ने भी अपार सामग्री ली जिससे दो जहाज भर लिये और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया ॥१०४॥

[१०५–१०६]

बापू पीता चालिउ अमर कोडि खरा लिखि लीए चमर।
चनु नाम नाते चन्द पूतु, ताव पटउलइ चालिउ पूतु॥
जिसुके हियइ पंच परमेठि सो पुनु चालिउ संता सेठि।
जिणवर पूज करइ तिहुकाल सोपुनु चालिउ अनु गुणपाल॥

अर्थ —और बाप तथा पीता भी चले तथा करोड़ खरे चमर (साथ) लिए। नाथ का लड़का चन्ना तथा पूत भी रेशमी (मुख्यमान पाठ लेकर) चला ॥१ ५॥

जिसके हृदय में पंच परमेष्टि थे ऐसा वह संता सेठ भी चला। जो जिनेन्द्र भगवान की तीनों काल पूजा करता था ऐसा गुणपाल भी साथ चला ॥१ ६॥

[१०७–१०८]

चले ति रयण परीखा करहि चले ति मोलु बराबर करहि।
सब बणजारे भए इकठाइ बीस पंचसय मिलिए जाइ॥
तसु चलिआरे अगुर अइस्स चारहु सहस चले भरि बइस्स।
जो नक्खिसिउ अमूल्य अजाल सब नहिं उवहिरत परवान॥

अर्थ —जो रत्नो की परीक्षा (परख) करते थे वे भी चले तथा जो बहुमूल्य पदाथ रखते थे वे भी चले। सभी व्यापारी एक स्थान पर इकट्ठे हुये तथा पन्द्रह कोश पर जा कर उन्होने पडाव किया ॥१८७॥

सभी व्यापारी चतुर एव छैले थे और बारह हजार बैलो को भर कर वे चले थे। जो मतिहीन एव अज्ञ थे (उन) सब मे सागरदत्त प्रमुख थे ॥१८८॥

रयण – रत्न। परीछा – परीक्षा, पारखी

[१८९]

छाडत नयर देश अतराल, गए विलावल कइ पइ पसारि।
बलद महिष सबु दइ निरु करहि, वाखरु सयल परोहणु भरहि॥

अर्थ —नगर और देशो की दूरी को छोडते हुये वे विलावल तक चलते गये उन्होंने बैलो एव भैसो को दूसरो को दे दिया और सारा सामान जहाजो मे लाद दिया ॥१८९॥

[१९०–१९१]

भरि वोहिथ चले निज ठाइ, अण्णु बहुत इधणु चडाइ।
सयलह वत्थु परोहणु कयउ, बारस वरिस के सबल लयउ॥
वणिजारे जल जतइ ठाइ, धुजा पताका पडा ढरइ।
मुदिगर लोहे भार साकरे, सावधान हुइ वणिवर चडे॥

अर्थ —तदनतर वे जहाजो को भर कर अपने स्थान को चले। साथ मे बहुत सा अन्न एव ईधन उस पर चढा लिया। बारह वर्ष का सबल (खर्ची) लेकर सभी वस्तुओ को जलयानो मे लाद दिया ॥१९०॥

वणिजारो को जल जतुओ का पता था। (जलयानो पर) ध्वज, पताका तथा पट (हवा द्वारा) प्रेरित हो रहे थे। उन्होंने अपने साथ मुद्गर

एवं लोहे की भारी सांकल भी थी। इस प्रकार वे व्यापारी सावधान होकर चढ़े ॥१११॥

ईर – प्रेरणा करना।

[११२-११३]

मज्झु परोहणु रोपिउ वांसु, तहि चडियउ मरजिया वैसासु ।
माथे दीनी लोह टोपरी नातरु गीद लेहि चांचुरी ॥
धुजा पताका पवण जब हयउ जोयण साठि परोहण गयउ ।
दूत व जाम व चलिउ तुरंत दुरा सेतु दीसइ णु अणंतु ॥

अर्थ —(उन्होंने देखा कि) मरजीवा ने प्रवोहण (जहाज) के मध्य में बांस खड़ा किया तथा उस पर वह (मरजीवा) सांस रोक कर चढ़ गया। उसने माथे पर लोहे की टोपी दे रखी थी नहीं तो उसे (समुद्री) गिद्ध अपने चोंचों से ले लेते ॥१११॥

ध्वजा एवं पताका जब वायु से आहत हुई तब वह प्रवोहण (जलयान) साठ योजन चला गया। वे द्रुत और उत्साहपूर्वक चल रहे थे और अनंत जल ही जल चारों ओर दिखाई पड़ता था ॥११२॥

मरजिया – मरजीवक – समुद्र के भीतर उतर कर उसमें से वस्तुओं को निकालने वाला। दूत – द्रुत – वेग से

[११४-११५]

दुद्धर मच्छरमछ वडिमार पालिउ अवरु न बुज्झइ पार ।
जल जय कंपइ सयल सरीर लहुरि चवंड झकोलइ नीर ॥
मगरमच्छ मावइ णु समुद तउ कोलाल गहिरउ भमउइ ।
चूड निवरहि पहुल मुइ कीनि वाउइ मध्य णु पावइ मीसि ॥

अर्थ —पानी मे दुर्द्धर मगर, मत्स्य एव घडियाल थे तथा उस अगम पानी का पार भी नही सूझता था। जल के भय से सब शरीर कांपता था तथा प्रचड लहरो से पानी झकोले मारता था ॥१९४॥

समुद्र गडगडा कर गर्जना करता था तथा वह समुद्र सौ सौ योजन गहरा था। वह मरजीवा डुवकी लेकर सुख पूर्वक मु ह को बद किए हुये निकलता था, क्योंकि यदि मच्छो को मालूम पड जाता तो उसे निगल ही जाते ॥१९५॥

घडियार – घडियाल । पयड – प्रचड । उद् – उदर । रहस – रमस् – सुख ।

[१९६–१९७]

वेणा नयरु छाडि जवु चलेय, कवणु दीउ वेगि परहरिय ।
भभा पाटणु वाए वीचि, लयो वोहिथ कु डलपुरु खोंचि ॥
मयणदीउ हूतइ नीसरिउ, पाटण तिलउ दीउ पइसरिउ ।
सहजावती वेगि परिहरउ, गउ वोहिथ फोफल की पुरउ[1] ॥

अर्थ —जब वे वेणा नगर को छोड कर चले तव कवण द्वीप भी उन्होंने शीघ्र ही छोड दिया। भभा पाटण वीच ही मे छोड कर उन्होंने जहाज को कु डलपुर खीच लिया ॥१९६॥

मदन द्वीप से होकर वे निकले तथा पाटल तिलक द्वीप मे प्रवेश किया। (तदनतर) उन्होंने शीघ्र ही सहजावती को छोडा और यह जहाज फोफलपुरी (पूगफल–सुपारी की नगरी) को गया ॥१९७॥

वोहिय – जहाज । फोफल – पूगफल – सुपारी ।

१ मूल पाठ पुरी

[१९८–१९९]

वडवानलु छोडिहु गउ वेगि अंतर आवि पवाली वेलि ।
संखदीउ परिहरियउ जाणि गयो जहां जहि हीरा खाणि ॥
वरणसइ मज्झ जसु जिणवर णाहु भव अंतर दीठिउ जलवाहु ।
तहि पय परसिवि वणिवर चलइ कलिमलु सयलु लोउ परिहरइ ॥

अर्थ —वह जहाज बडवानल को छोड़ कर आगे बढ़ा तथा बीच में पवाली–बेला को भी उसने छोड़ दिया । शंख द्वीप को भी उसने जानबूझ कर छोड़ दिया और वह वहाँ गया जहाँ हीरों की खान थी ॥१९ ॥

वहाँ जल के मध्य जिन चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होंने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । उनके चरणों का स्पर्श करके वे व्यापारी आगे चले और समस्त लोगों ने वहाँ अपने कलिमल (पाप) त्याग दिए ॥१९९॥

[२ ०—२ १]

तहाँ हुंतउ परोहणु चलइ जोयण सउ बीसा नीसरइ ।
सुणिहु राइसिंहि कवयणु कि जाइ सिंहल दीप पहूते जाइ ॥
वणिवारा तहि ठाहरि रहइ कय विक्कए दीविं पइसरहिं ।
लोग महग्घी वाखर देहि आप सस्ती साटिवि लेहिं ॥

अर्थ —वहाँ से होकर वह परोहण (जहाज) चला और फिर एक सौ बीस योजन निकल गया । कवियों का सत्संग करने वाले राजसिंह ने सुना है कि वे सभी सिंहल द्वीप जा कर पहुँचे ॥२० ॥

व्यापारी लोग वहाँ ठहर गये तथा क्रय विक्रय करने के लिए उस द्वीप में प्रवेश किया । अपनी वाखरों (वस्तुओं) को वे महँगा किए हुए भावों में बेचते थे और उनकी वस्तुओं को वे सस्ते भाव में साट [बदल] लेते थे ॥२०१॥

साह – साथिन – साझीदार, सहायी । महग्घ – महार्घ – महँगा ।

[२०२–२०३]

तहि घणवाहण पहु चक्कवइ, जो असराल दीव भोगवइ ।
नव निहि चउदह रयण भण्डार, विजयादे राणी सुपियार ॥
तसु कुंर्मार सिरियामति केह, लइ वियाधि पीडिय जसु देह ।
जो तहि पहिरइ निसि पइसरइ, कारणु किसही सो जु नरु मरइ ॥

अर्थ —उस (द्वीप) का प्रभु घनवाहन नाम का चक्रवर्ति था जो निरतर उस द्वीप का भोग (राज्य) करता था । उसके भण्डार मे नव निधियाँ तथा चौदह रत्न थे, और अत्यन्त प्रिय विजयादे उसकी रानी थी ॥२०२॥

उसके श्रीमती नाम को राजकुमारी थी जिस की देह व्याधि के कारण पीडित थी । जो भी आदमी निशा का प्रवेश होने पर उसका पहरा (पहर पहर तक की रखवाली करना) देता था वह मनुष्य किसी भी कारण मर जाता था ॥२०३॥

[२०४–२०५]

मत्री मतु कियउ भलि जोइ, घरि घरि पतइ वसइ सबु कोइ ।
सयल लोगु तिन्हि लयउ हकारि, कहीय बात जा वलि वइसारि ॥
कहइ मंति तुम्ह अइसउ करेहु, अपणे ऊसरइ तुम पहिरउ देहु ।
एकु पूतु तडि मालिणि केरउ, पडियउ थाइताइ ऊसरउ ॥

अर्थ —मन्त्रियों ने फिर भलाई देखकर मत्रणा की, क्योकि सभी घरों मे पात्र (पहरा देने के उपयुक्त युवक) रहते थे । इसलिये उन्होने सभी लोगो को (मत्रणा के लिये) बुलाया और उन्हें बैठाकर उनसे बात कही ॥२०४॥

मत्रियो ने कहा "आप लोग ऐसा करो कि अपने२ ओसरे (पारी) पर

पहुंचा थो। वहां एक मालिन के एक ही पुत्र था उसका उस समय (उस दिन) प्रासरा मा पका था ।।२५।।

[२६–२७]

फूल बिसाहण गउ जिणदत्तु मालिणि कइ घरि जाइ पहुतु ।
रोवइ बूढी हियइ बिसूरइ तबहि वीर पूछइ बिहसाइ ।।
कवण काज वे री आरडहि काहु कारणि पलावे करहि ।
किसि कारणि दुख करहि सरीर वेगि कहहि इउ कपइ वीर ।।

अर्थ —जिनदत्त फूल क्रय करने के लिये निकला और (संयोग से) मालिन के घर पहुंच गया। बुढ़िया हृदय से बिलखकर रो रही थी तब उससे वीर जिनदत्त ने विकसित (खुलकर) कारण पूछा ।।२६।।

अरी किस लिए इस रीति से रोती हो और किस कारण प्रलाप करती हो ? किस कारण शरीर को दुखित कर रही हो ? उस वीर ने कहा मुझसे शीघ्र कहो।" ।।२७।।

री – रीइ – रीति। पलाव – प्रलाप। कप –कथ्य – कहना।

[२८–२९]

रुदन करइ मइ वोपइ वयणु आजु बहुत न वाचइ नयणु ।
कहइ तासु जो दुखु असहुणउ हीणहं अग्गे कहा मुखसाउ ।।
सुणि जिणदत्त पयंपइ ताहि भली बुरी कहियइ सबु काहि ।
मालिन वालु कहइ मनु तोइ जम दुख दुख निवारइ कोइ ।

अर्थ —यह बुढ़िया जिसके आंखों के आंसू नहीं रुक रहे थे रोती हुई बोली (वह दुःख) मैं उससे कहूं जो उसे दूर कर सके। हीन (असमर्थ) से कहने से कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ।।२८।।

फिर जिनदत्त उससे कहने लगा "भली बुरी जो भी हो, वह सबसे कहना चाहिए। जो बात तुम्हारे मन मे हो, ऐ मालिन, बात वह तुम्हे कहनी चाहिए, जिसमे कि तुम्हारा दु ख कोई दूर कर सके ॥२०९॥

[२१०–२११]

कहइ वात वूढी विलखीइ, इहि काल इनि राइ (ण) धीइ।
जो तहि जागइ राति उहाएा, सो णर दीसइ मुकऊ विहाण ॥
इहजि कुवरि वुरी ही टेव, दिन दिन माणसु मारइ देव।
जो इहि जागइ पहिरइ हुवऊ, सो नर भोलइ (न) खियइ मुवऊ ॥

अर्थ —वह वृद्धा रो रो कर कहने लगी, "इस समय यहाँ एक राजा की कन्या है जो कोई वहा रात्रि मे (उसके साथ) दूसरा (होकर) जागता रहता है वह व्यक्ति सवेरे (दूसरे दिन) मृत दिखाई पडता है ॥२१०॥

राज कन्या की यह बहुत बुरी आदत है कि वह दिन प्रति दिन मनुष्यो को मारती है। जो वहाँ जागता है और पहरा देता है, वह भोला आदमी मरा दिखाई पडता है ॥२११॥

उह – उभय।

[२१२–२१३]

एकु पूतु एकवति घरवाहि, कहि गउ डोमु ऊसरउ ताहि।
पहिरइ आजु पूतु सो मरइ, तह दुखु, पूत हियउ गहवरइ ॥
मालिण तणी सुणी जधु वत्त, आहूठ डि उद्धसे जिणदत्त।
इहर वात पूछियइ अकाजु, पूछित रु दुखु सारउ आजु ॥

अर्थ —(इस घर मे) इकलौता एक ही पुत्र है और डोम (वधिक) कह गया है कि आज पहरे का ओसरा उसी का है। आज के पहरे मे मेरा वह पुत्र मरेगा, इसी दु ख से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥२१२॥

पहरा दो। वहां एक मालिन के एक ही पुत्र था उसका उस समय (उस दिन) दूसरा था पड़ा था ॥२४॥

[२६-२७]

फूल विसाहुण चउ जिणदत्तु मालिणि कइ घरि जाइ पहुतु ।
रोवइ बूढी हियइ विसाइ तबहि वीरु पूछइ विगसाइ ॥
कउण काज थे रो धारवहि काहु कारणि वसावे करहि ।
किसि कारणि दुख धरहि सरीर वेगि कहेहि इउं जपइ बीर ॥

अर्थ —जिनदत्त फूल क्रय करने के लिये निकला और (संयोग से) मालिन के घर पहुंच गया। बुढिया हृदय से बिलखकर कर रो रही थी तब उससे वीर जिनदत्त ने विकसित (मुसकर) कारण पूछा ॥२६॥

तुम किस लिये इस रीति से रोती हो और किस कारण प्रलाप करती हो? किस कारण शरीर को दुखित कर रही हो? उस वीर ने कहा "मुझसे शीघ्र कहो। ॥२७॥

री – रीइ – रीति। पलाव – प्रलाप। जप –जल्प – कहना।

[२८-२९]

रुदन करइ मन कंपइ नयणु आसु बहुत न थाकइ नयणु ।
कहउं तासु जो दुखु अवहरइ हीणहं कहें कहा गुणसरइ ॥
सुणि जिणदत्त पर्यप्प ताहि अहो बुरी कहियइ सबु काहि ।
मालिन कासु कहइ मनु लोइ मम दुख दुख निवारइ कोइ ।

अर्थ —वह बूढ़ा जिसके आंखों के आंसू नहीं रुक रहे थे रोती हुई बोली (वह बुरा) मैं उससे कहूँ जो उसे दूर कर सके। हीन (असमर्थ) से कहने से कौनसा गुण प्राप्त हो सकता है ॥२ ॥

फिर जिनदत्त उससे कहने लगा "भली बुरी जो भी हो, वह सबसे कहना चाहिए। जो वात तुम्हारे मन मे हो, ऐ मालिन, वात वह तुम्हे कहनी चाहिए, जिससे कि तुम्हारा दु ख कोई दूर कर सके ॥२०९॥

[२१०–२११]

कहइ वात वूढी विलखीइ, इहि काल इनि राइ (ण) धीइ ।
जो तहि जागइ राति उहाए, सो णर दीसइ मुकऊ विहाण ॥
इहजि कुवरि वुरी ही टेव, दिन दिन माणसु मारइ देव ।
जो इहि जागइ पहिरइ हुवऊ, सो नर भोलइ (न) खियइ मुवऊ ॥

अर्थ —वह वृद्धा रो रो कर कहने लगी, "इस समय यहाँ एक राजा की कन्या है जो कोई वहा रात्रि मे (उसके साथ) दूसरा (होकर) जागता रहता है वह व्यक्ति सवेरे (दूसरे दिन) मृत दिखाई पडता है ॥२१०॥

राज कन्या की यह बहुत बुरी आदत है कि वह दिन प्रति दिन मनुष्यो को मारती है। जो वहाँ जागता है और पहरा देता है, वह भोला आदमी मरा दिखाई पडता है ॥२११॥

उह – उभय ।

[२१२–२१३]

एकु पूतु एकवति घरवाहि, कहि गउ डोमु ऊसरउ ताहि ।
पहिरइ आजु पूतु सो मरइ, तह दुखु, पूत हियउ गहवरइ ॥
मालिण तणी सुणी जवु वत्तु, आहूठ डि उव्वसे जिणदत्तु ।
इहर वात पूछियइ अकाजु, पूछित रु दुखु सारउ आजु ॥

अर्थ —(इस घर मे) इकलौता एक ही पुत्र है और डोम (वधिक) कह गया है कि आज पहरे का ओसरा उसी का है। आज के पहरे मे मेरा वह पुत्र मरेगा, इसी दु ख से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥२१२॥

तुम्हारे इस पुत्र को और मुझको (दोनो को) आज उसे मारना होगा ॥२१६॥

बातें कहते हुये तीसरा पहर हो गया। डोम आया और उसने पुकार लगाई तो जिनदत्त हँस करके कहने लगा कि संध्या समय आकर मैं सेवा करूँगा ॥२१७॥

उह – उभय

[२१८–२१९]

माल गठि पहरण पहरियउ, वीर गठि करि जूडउ ठयउ ।
लइ कर खडग फरी फटकाइ, खाति तबोल वसण सो जाइ ॥
चढत अवास दीठ जवु राइ, घणवाहण बोलइ को जाइ ।
कउणे कहिउ रायस्यो खरे, यह देव जाइ वसण ऊसरइ ॥

अर्थ —मल्ल गाठ देकर [और द्वन्द्व युद्ध के लिये] उसने कपडे पहन लिए तथा वीर ग्रंथि कर उसने वालो को बांधा। हाथ मे तलवार लेकर फरी (लाठी) को फटकाता (फटकारता) हुआ पान खाता हुआ वह सोने के लिये चला ॥२१८॥

महल पर चढते हुये जब उसे राजा ने देखा तो पूछा कि "कौन जा रहा है ? किसी ने राजा से खडे होकर निवेदन किया हे देव ! यह पारी पर सोने के लिए जा रहा है ॥२१८॥

तबोल – पान। को – कौन।

[२२०–२२१]

देखि राउ पछतावउ करइ, अइसउ वीरु ऊसरइ मरइ ।
धिय पापिणी लियो ऊचालि, जितनु देखउ तितु देहि निकालि ॥

[२२२]

पभइ सुन्दरि पेखि वर वीरु ।।
को तुहु पर लोय, महु कासु पुत्ति कवणे गवेसिउ ।
परहसु सायर तिर्रिवि आणि, सत्थे तुहु णयरि पेसियउ ।।
देखि चूंढि रोवंति दुहिया, एक्कइ पूतु विशाख ।
तिहि सुउ कहुतो मरउ, अइसइ दिण्ण मइ भाख ।।

अर्थ —राज सुन्दरी उस श्रेष्ठ वीर को देख कर (पूछ कर) बोली। इस परलोक (परदेश) मे तुम कौन हो ? तुम किसके पुत्र हो, और किसकी तलाश मे हो ? (उसने उत्तर दिया)–(लोक) परिहास के कारण मैंने सागर पार किया और एक (व्यापारी–दल) मे यहाँ आकर तुम्हारे नगर मे मैंने प्रवेश किया। दुखिता वृद्धा को जिसके एक ही विशाख नाम का पुत्र है, रोती देख कर उसके पुत्र के स्थान पर मैं मरुंगा, ऐसा मैंने उसे वचन दिया है ।।२२३।।

पेख – प्र+ईक्ष – देखना । गवेसउ – गवेषणा करना – खोजना सत्थ – सार्थ –व्यापारी दल । पेस् – प्रविश – घुसना, पैठना । दुहियव – दुःखिता ।

[२२३]

ताहे जपइ राय सुंवरीय ।
परऐसिय पाहुणइ जाहि जाहि, मइ तुह निवारिउ ।
तुव पेखि मोहिउ जणणु, वस हूं मइं जंन तुंह जु मारिउ ।।
एमु भणतहि रल्ह कइ, गरु छाय गइ ताइसि ।
कथा एक वर वीर कहु, निवडइ पहिरइ वइसि ।।

अर्थ —तव राज सुन्दरी [राजकुमारी] कहने लगी "ऐ परदेशी

पाहुने ! तुम यहाँ से जाओ जाओ। मैं तुम्हें मना करती हूँ। तुम्हें देख कर मेरे पिता मोहित हो गये हैं और एक मैं हूँ जो तुम्हें मारने जा रही हूँ।" रयह कवि [कहता है] इस प्रकार कहते कहते काफी रात्रि बीत गयी और फिर [उसने कहा] "हे भव्य वीर एक कथा कहो जिससे पहरा बैठे बैठे [जागते] रात्रि का शेष प्रहर निकल जावे ॥२२४॥

मारराउ छंद

[२२४]

ता पहरइ बैठिउ नारि दिठउ वीर भुअंगु ।
बोलइ कुठि तोडि विवडि मोडति अंगु ॥
कहहि कहा मीको काम्ती जिय सुखु निमु होइ ।
कह बाता सोवि सुरंता तब वह बरउ सोइ ॥

अर्थ —उस पहर में वह नारी बैठी रही और एक वीर [भयकर] सर्प उसको दिखाई पड़ा। [वह] वह कथा होकर और विवडित होकर तथा अंगों को मोड़ती हुई बोली "तुम कोई भली भाँति जानी हुई कथा कहो जिससे निद्रा–सुख मिले। कथा–वार्ता से वह शीघ्र वहाँ मृत स्त्री [होकर] सो गयी ॥२२४॥

[२२५]

सुती जा महि मंतु जा महि जिणदत्त करई ।
मयउ मसाणि भउउ जाति खाउ तलि धरइ ॥
मनुषु तौवह मन्नउ होइ आउ समाजि ।
मन्न सु पावइ वहिरइ खम्मइ मरइ ममाति ॥

अर्थ —जब वह सो गई उस समय जिनदत्त ने यह किया कि श्मशान भूमि जाकर वहाँ से एक मुर्दा लाकर खाट के नीचे रख दिया और आप स्वयं

छन्न होकर [छिप कर] तथा तलवार सँभाल कर सोने लगा। [उसने कहा,] यदि वह पहरे में आवेगा तो वह खडग् से अकाल ही मरेगा ॥२२५॥

खाय – खड्ग – तलवार। अयाल – अकाल – अनुचित समय

[२२६]

एत्तहि ताला गरुलह झाला मुह महते नीसरइ।
कालउ दारुण विसहरु वारुणु तहि फौकरइ॥
हिंढइ चउपासहि दीह सहासहि कालु भमतु।
कहि गउ सो पहिरउ जसु हो वइरिउ खूटउ जसु कउ मंतु॥

अर्थ —इसी समय (उस राजकुमारी के) मुख मे से एक गुरु ज्वाला-निकली और वह काला और दारुण सर्प वहाँ (द्वार पर) फुंकारने लगा। वह चारो ओर घूमने लगा मानो दीर्घ काल हँसता हुआ घूम रहा हो। (उसने कहा) वह पहरेदार कहाँ गया, जिसके साथ मेरा वैर है, जो क्षय हो चुका है और जिसका अन्त (सन्निकट) है ॥२२६॥

विसहर – विषधर – सर्प। खूट – क्षी – क्षय होना।

[२२७]

माणसु सुत्तउ निदइ भुत्तउ जाणइ न काइ।
बोलइ वीरु सा बलधीरु वह भुयगु नितु खाइ॥
करि कर दप्पु कालउ सप्पु लाग्यो (मु) डइ सु खाणि।
वीरे पच्चारिवि दीनो गालिवि इव इवए लब्भइ जाण॥

अर्थ —यह मनुष्य (जिनदत्त) सो रहा है और निद्रायुक्त है, क्या वह (मेरा आगमन) नहीं जानता है ? (यह सुनकर) वह वीर और बलधीर बोला, "यही सर्प रोज खा जाता है।" बडे गर्व के साथ वह काला सर्प उस

को डसने लगा। (तब) वीर ने ललकार कर उसे गाली दी 'अब तू आगे नहीं पाएगा' ॥२२७॥

[२२८]

अरे चोरी खाहि भाजिव जाहि पेटहि पइसि रहही ।
आजु मरउ असिवर मारउ का गुन लए कहाहि ॥
एवा कहि खाही वेग माही सिरि सिहि सिरि चंपिउ ।
फुक्कारंतउ धरिउ तुरंतउ पूछ धरे फिरु फेरियउ ॥

अर्थ —अरे तू चोरी से खाता है और भाग जाता है और (श्रीमती) के पेट में घुस कर रहता है। आज मैं इसे तलवार से मारूंगा जिससे कौन सा गुण लेकर कहा जायेगा। यह कह कर तथा वेग से आकर उसने उस सर्प के सिर को धर दबाया और उस फुंकार करते हुए (सर्प) को तुरंत पकड़ कर और फिर उसकी पूंछ को पकड़ कर घुमाया (फिराया) ॥२२८॥

चौपाई

[२२९-२३०]

घुमि घुमाइ तहिं तलि सिर करइ भरगु जाति विसहर धर पडइ ।
विकल भुयंग देखी मनु करइ जीउ मारि को नरयहं पडइ ॥
बोलि बराइ तउ एहु पुत्र करइ हत्थु होइ तउ हाथहि धरई ।
होयहि पाइ तउ काइ भलाइ सो भमु गमइउ मारउ ठाइ ॥

अर्थ —उसे घुमाकर उसका सिर तल (भूमि) पर कर दिया (जिसके परिणाम स्वरूप) सर्प छोड़ कर वह सर्प धरा पर पड़ गया। (तब) उस भुजंग को विकल देख कर वह मन में सोचने लगा कि जीव-वध करके कौन मनुष्य नर्क में पड़े? यदि उसे बोली आती होती तो वह 'ठहरो ठहरो'

करता, हाथ होते तो हाथ को पकडता, पैर होते तो भाग जाता, अत अब इस शरीर मात्र को क्या कष्ट दूँ अथवा मारूँ ॥२२९–२३०॥

[२३१–२३२]

जपइ सेठिपुत्त गुण चाउ, किम करि करउ जीव कउ घाउ ।
हाथ पाउ विणु किमु साधरउ, अयसउ घालि चौपुडी धरउ ॥
घालि चउपुडी धरियउ नागु, फुनि निसगु होइ सोवणु लागु ।
पह फाटी हूवउ भुणसारु, आयो डोमु सु काढण हारु ॥

अर्थ —गुणो को चाहने वाला वह सेठ पुत्र बोला किस प्रकार मैं जीव–वध करूँ ? उस विना हाथ पैर वाले जीव को कैसे पकडूँ ? इसलिये इसे ऐसे ही डालकर चौपुटी मे रख देता हूँ ॥२३१॥

चौपुटी (पोटली, चगेडी) मे डालकर उसने सर्प को रख दिया और फिर नि शक होकर वह सोने लगा । पौ फटने पर जब सवेरा हुआ तो डोम उसे निकालने आया ॥२३२॥

घाउ – घात । चौपुडी – चतु पटी – चार छोरो की पोटली ।
निसगु – नि शक ।

[२३३–२३४]

माझ अवास डोमु जबु गयो, खेलत सार बीर देखियो ।
भाजित पाणु राइसिहु कहइ, कालि वसिउ सो खेलत अहइ ॥
गपि राइ भेटियउ तुरतु, किमु उव्वरिउ वीर कहि बात ।
भणइ कुमरु इनि नीकउ केह, निरविस भई हमारो देह ॥

अर्थ —जब वह डोमु महल मे गया तो उस वीर को उसने चौपड खेलते हुये देखा । प्राण (लेकर) भागते हुये उसने राजा से कहा, "जो कल सोने के लिये आया था वह आज (चौपड) खेल रहा है ।" ॥२३३॥

राजा ने आकर उससे तुरन्त भेंट की तथा पूछा हे वीर तुम कैसे बच गये ? यह वार्ता कहो। राजकुमारी ने कहा कि इन्होंने (मुझे) रोग से अच्छा कर दिया है अब मेरा शरीर विष रहित हो गया है ॥२१४॥

सार – औषध। नीरु – निरुज – अच्छा।

[२१५-२१६]

काढि भुयंगु दिखालइ सोइ भाजी राउ पिछोकडो होइ।
इहु देव कुमरि पेट नीसरउ इनि देव लयउ लोय संघरिउ ॥
बाल छोडि तसु लागे पाइ सिरियामती दीनी परणाइ।
बहु दायजे रयणी अनिवार वणिक जाण चाहइ वणिवार ॥

अर्थ —उस (जिनदत्त) ने सर्प निकाल कर दिखाया। (जिसे देख कर) राजा भाग कर उसके पीछे हो गया। जिनदत्त ने कहा हे देव ! यह राजकुमारी के पेट में से निकला है और इसीने हे देव ! सब लोगों का संहार किया है ॥२१५॥

यह सुन कर राजा ने अपने बालों को खोलकर (जिनदत्त के) पैरों को झाड़ा तथा श्रीमती का उसके साथ विवाह कर दिया। दहेज में अगणित रत्न दिये। (कुछ बाद) वणिक घर पर जाने की इच्छा करने लगा ॥२१६॥

[२१७-२१८]

वणिवर भवण अछोहल चडहिं तउ जिणदत्त श्रीमती करहि।
समरहि देव मोह चित धरइ सेरउ साथ आसु रइ करहि ॥
पखालहरण बोलइ सममाउ आवउ देसु वरउ जिम राय।
जो रमणु सुणइ माही लोइ सुरु सुणु जिना तली असमेरि ॥

अर्थ —अभी व्यापारी के घर (आवास) पर चढ़ कर तब जिनदत्त

ने (राजा से) विनती की, "हे देव मुझे विदा दो। मुझे चित्त मे रखना। मेरा सार्थ (व्यापारी-दल) घर (वापस) जा रहा है ॥२३७॥

घणवाहन ने उससे सत्य भाव से कहा, "तुम आवे देश पर निश्चित-रूप से शासन करो। जिनदत्त ने कहा, "हे राजन! तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नही है किन्तु मुझे ही मेरे पिता की चिन्ता हो रही है" ॥२३८॥

जातु -कदाचित। अवसेरि - चिन्ता।

[२३९-२४०]

सिरियामती ममदी जवही, चउदह दिन्न आभरण तवहि।
जिनदत्तहि दीने वहु रयण, समदिउ राउ विलखाणिउ वयण ॥
तीरिद खुलइ परोहण चडइ, उवहिदत्त पाप जु मनि धरइ।
पापी पाप वुधि जव जडी, काकर वाधि पोटली धरी ॥

अर्थ —जव श्रीमती को राजा ने विदा किया तव उसे उसने चौदह (प्रकार के) आभूषण दिये। जिनदत्त को भी वहुत से रत्न दिये और राजा ने रोते हुये वचनो से उन्हे विदा दी ॥२३९॥

जहाज पर चढते ही उसके लगर खोल दिये गये, (किन्तु इसी समय) सागरदत्त के मन मे पाप पैदा हुआ। जब उसके (पापी के) पाप वुद्धि चढी तव उसने काकरो की पोटली वाध कर रख दी ॥२४०॥

समद् - विदा देना। तीरिद - तीर से वधे हुए लगर।

[२४१-२४२]

सो घाली र समद महि रालि, कही वीर रयणणह की माल।
एहा हो धरी रयण पोटली, सो देखि पुत्त समद महि परि ॥
रोवहि वाप म धीरउ होहि, काढि पोटली अप्पउ तोहि।
तवहि वीरु मनु साहसु धरइ, लागि वरत सायर महि पडइ ॥

अर्थ —उसने वह पोटली समुद्र में डाल दी और कहा हे वीर यह रत्नों की माला है। यह रत्नों की पोटली यहां रखी हुई थी हे पुत्र देख वह समुद्र मे गिर गयी है ॥२४१॥

[जिनदत्त ने कहा] हे पिता आप मत रोइये और धैर्य धारण करिये। मैं पोटली को निकाल करके तुम्हें अर्पित करूंगा। तब वीर [जिनदत्त] मन में साहस धारण कर तथा रस्सी से बंध कर सागर में कूद पड़ा ॥२४२॥

अप्पु – अर्पय् – देना।

[२४३-२४४]

गयउ पोटली खोजु पताल काटी बरत सेठ अंतराल ।
काटी बरत पापीया जाम तिरियामती पुक्कारइ ताम ॥
इकु रोवइ अरु बोलइ ताहि आछे पूत सुसर कत जाहि ।
सुसर सुसर तुम बोलहि काइ यह तउ हुंतउ हमरउ दास ॥

अर्थ —जब वह जिनदत्त पोटली को खोजने के लिये पाताल में गया तो सेठ ने वह रस्सी ठेठ बीच में काट दी। जब उस पापी ने डोरी को काट दिया तब श्रीमती धाड़ मार कर चिल्लाई ॥२४३॥

वह रोने लगी तो एक बौना "पुत्र" ने बोल दिया तो श्वसुर कहाँ गया है ? लेकिन सागरदत्त ने कहा श्वसुर २ तुम किसे कहते हो ? वह तो हमारा दास था ॥२४४॥

[२४५-२४६]

बहु को सोगु सखी मति करहि, ओ:ओं गाबु ओबु पुरु परहि ।
जयदत्त के वचन सुनेइ तिरियामती हाथ मुह देइ ॥

फुलवहु किहुर कहा चित धम्मइ, कुंभी नरक पावीया पडहि ।
उवहूदत्तु बोल्लइ सुह वयणु, बहु रोवहि अरु धीजहि नयणु ॥

अर्थ —सागरदत्त ने कहा, "हे सखी, उसका शोक मत करो। मेरे साथ तुम राज सुख भोगो।" जब सागरदत्त के ये वचन उसने सुने तो श्रीमती ने मुख को हाथों मे ढक लिया ॥२८५॥

श्रीमती ने कहा, "कुल वधू के विषय मे तुमने चित्त मे कैसी भावना धारण कर ली है? हे पापी! तुम कुंभीपाक नर्क मे पड़ोगे।" सागरदत्त ने फिर उससे सुखकारी वचन कहे, "तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो ॥२८६॥

धीज् – धैर्य देना ।

[२८७–२४८]

जइ ज लहर महि सती सतभाउ, तो यहु बूडि परोहणु जाउ ।
उहि सत जलदेवी उछलहि, उछली परोहणु बोलहि मणहि ॥
डगडगाण लाग्यो वोहियु, किउ वणिजारिन्ह मत उचितु ।
वणिवरु सयल परपरु भणहि, बूड्यो वोहिथु इउ करइ ॥

अर्थ —(वह प्रार्थना करने लगी) यदि "लहरो मे सती का सत्यभाव हो ता यह जहाज डूब जावे।" उसके सतीत्व के प्रभाव से जलदेवी उछल पड़ी और उछल कर मन मे विचार किया कि जहाज डुबा दे ॥२४७॥

वह वोहिथ (जहाज) डगमगाने लगा। तब व्यापारियो ने एक उचित विचार किया तथा वे व्यापारी परस्पर कहने लगे, "यह जहाज इसी प्रकार के कार्यों मे डूब रहा है।" ॥२४८॥

सतभाउ – सत्य भाव। परोहण –प्ररोहण, सवारी। बोल् – ब्रोडय् –डुबाना। मत –मन्त्र – मन्त्रणा। परपरु – परस्पर।

[२४६–२५]

साधु लागि सिरियामति पाइ कोपु सांति करि म्हारी माइ ।
उवहिदत्त तिन्ह छूटणु लयउ सिरियामती कोपु छंडियउ ॥
चलिउ परोहणु रहिउ उन ठाउ दीप विसाउलि लागिउ जाइ ।
भवियहु सुणहु सती सतभाउ दुसइ अठताले भउभाउ ॥

अर्थ —(यह सोचकर) सभी ने श्रीमती के पाँव पकड़ लिये तथा निवेदन किया "हे हमारी माता! अपने क्रोध को शान्त करो। वे जब सागर दत्त को मारने लगे तब श्रीमती ने क्रोध त्याग दिया ॥२४६॥

जहाज उस स्थान से चला और एक द्वीप के वेलाकुल (बंदरगाह) पर जा लगा। हे भविको! सती का सत्यभाव सुनो। इसके २४६ भेद है ॥२५ ॥

विसाउलि —वेलाकुल — बन्दरगाह ।
भविय —भविक — मुमुक्षु ।

[२५१–२५२]

कहइ रल्हु महु यहु संभवइ जु तीणु ता लगि संभवइ
मन जिणदत्त पंच पय सरणु जब चलहर नहि प्राण उपरणु ॥
महु जिणिंद सामी की आण लियउ अणसणु जिउ जाहि पराण ।
जइ जिण सुमरत जाहि पराण होइ जीव पंचम गइ ठाण ॥

अर्थ —जब जिनदत्त सागर में से ऊपर आया तो उसने कहा मुझ पञ्चपरमेष्ठि के पदों की शरण है। रल्ह कवि कहता है कि यह सब णोकार मानने से ही सम्भव हुआ है। ॥२५१॥

मुझे जिनेन्द्र स्वामी की सौगन्ध है। मैंने अनशन का निश्चय ले लिया है चाहे न चाहे मेरे प्राण चले जाए। यदि जिन भगवान का

स्मरण करते हुये प्राण निकल जाएं तो जीव को पचमगति का स्थान (मोक्ष) प्राप्त हो जावे ॥२५२॥

[२५३-२५४]

सत्तषर पयपच मुणाइ, कै सुरु स की मोखहि जाइ ।
सही कथा यह पूरी भई, सागर मज्झि कहा सभई ॥
विषम समुद्द न जाई तरण, जिणदत्त सुमरइ जिण के चरण ।
जहा जु रहणु वणिद हु कियउ, सिरिया धम्मु साथि पाइयउ ॥

अर्थ —सात अक्षर (णमो अरिहताण) एव पचपद (पच परिमेष्ठि) का स्मरण करते हुये मरण होने पर या तो वह देव होता है अथवा मोक्ष जाता है। यह समस्त कथा यहां पूरी होती है तथा आगे की कथा सागर के मध्य उत्पन्न होती है ॥२५३॥

समुद्र विषम था जिसे तैरा नहीं जा सकता था। जिणदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के चरणो का स्मरण लिया। (फलत) जहां भी वणिकेन्द्र (जिणदत्त) ने रहना किया (ठहरा) श्रीमती के धर्म को अपने साथ (रक्षा करते हुये) पाया ॥२५४॥

[२५५-२५६]

पापी छाडि गुपति सी भई, मिलि सघात चपापुरि गई ।
सा पुणि गइ जिणिद विहारि, पाय लागि जिणदत्त सभालि ॥
पिय कौ नामु विमलमति सुनिउ, को जिणदत्त सखी इउ भणइ ।
सिरिमति कहइ मुहइ चाहि, तहि कौ घरि वसतपुरि आह ॥

अर्थ —उस पापी को छोडकर श्रीमती गुप्त होगई तथा एक सघात (समूह) मे मिलकर चपापुर चली गयी। फिर श्रीमती जिन

मन्दिर में गयी तथा उसके (विमलमती) चरणों में लगकर उसने जिनदत्त को पुकारा ॥२५५॥

जब विमलमति ने पति का नाम सुना तो पूछने लगी "हे सखी। वह जिनदत्त कौन है जिसका नाम तुम ले रही हो ? श्रीमती ने उसके मुख को देख कर कहा "उसका घर बसंतपुर में है ॥२५६॥

[२५७–२५८]

जीवदेव नंदण सुपियार सो मेरउ जिणदत्त भताव ।
सो तहि रयणि न भोयणु करइ मण वय काय परतिय परिहरइ ॥
वहिण तिरिय ते दुख सरीर सायर उत्तरिउ साहस धीर ।
... ... ॥

अर्थ — "जो जीवदेव का प्रियतर पुत्र है वही जिनदत्त मेरा स्वामी है। वह रात्रि में भोजन नहीं करता है और मन वचन काय से परस्त्री का त्यागी है ॥२५७॥

(विमलमती ने कहा) हे सखी (बहिन) तुम्हारे शरीर में दुःख है। वह साहसी एवं धैर्यवान सागर में से (उत्तर कर) निकल आयेगा ॥ ॥२५ ॥

(वस्तु बंध)

[२५९]

विषमु सायरु गहिर गंभीर ।
तहि विहु उत्तरिउ वरवीर गुणवंत सधीर ।
तहि पुरंतु हुक्किउ सयल विहिवसेण तहि णाइ सिधर ॥
तरिवि महोवहि भविमलहि हिमुलहु कवि तीर ।
देवि रयहु तहि पुण्णवंतु विज्जाहरि परिरीर ॥

अर्थ —समुद्र विपम, गहरा एव गभीर था। वहां लकडी के टुकडे उछल आए जिन्हे उसने पुण्य-प्रताप से प्राप्त कर लिया। उसे शीघ्र ही एक विद्याधर ने बुलाया तथा कहा [देखो] भाग्य से कार्य सिद्ध हो गया। रल्ह कवि कहता है, उस महोदधि को तैर कर भव्य जनो! सुनो, जो कुछ उसने प्राप्त किया। उसके पुण्य-फल (प्रभाव) को देखो कि किस तरह विद्याधरी ने उससे विवाह किया ।।२५९।।

हक्क – आक्कारय् – बुलाना। खयरु – खचर-आकाश मे विचरने वाला विद्याधर। महोवहि – महोदधि

[२६०-२६१]

बूडउ वीर तहा उछलइ, भुजावड सो सायरु तिरइ।
सूके सीवल के पुर खड, गोसो आयो धम्म करड ।।
देखत विज्जाहरु आवही, मारुवेग महावेगु धावही।
अरे रि किसु मरण बुधि तुहि गई, राखि समुद्द तीरहि मानई ।।

अर्थ —वह डूबा हुआ वीर वहाँ उछल पडा और अपने भुजादड से सागर को तिरने लगा। सूखे सेमल का एक टुकडा धर्म-करड (पेटिका) के समान उसके न्यास आया (धरोहर के रूप मे मिला) ।। २६० ।।

विद्याधरो ने उसे आता देखा तो वे वायुवेग तथा महावेग उसकी ओर दौडे। उन्होंने कहा, "अरे कैसी मरने की बुधि तुम्हे हुई है जो तुमने इस समुद्र को छोड कर तीर पर आने का सकल्प किया है?"

णास – न्यास – स्थापना, धरोहर

[२६२-२६३]

कवहु भाइ बोलह ति पचार, जाहि ण वपुडा घालहि मारि।
रयणु निहाणु जहा हइ रहिउ, जो जलु कवणु तरण तुहि कहिउ ।।

कायर मारु मारु पभणेहि पवबड करहु समद जिम मेहु ।
उप्पति करि गाजहि अपमाए बिहडि जाहि दोसहि न निभाए ॥

अर्थ —वे ललकार कर कपट भाव में बोले 'यह अप्पुवा (असहाय) जाने न पावे इसे हम मारेंगे । यह रत्न–निवास (रत्नाकर) है जहाँ मृत्यु रहती है । इसके जल को पार करने के लिए तुमसे किसने कहा है ? ॥ २६१ ॥

वे कायर जन मारो मारो कहने लगे । जिस प्रकार समुद्र में मेघ गर्जना करते हैं उसी प्रकार उमड़ कर वे अप्रमाण (अपरिमित रूप से) चिल्लाने लगे । यह विघटित हो जाए (टुकड़े २ हो जाए) और यह असाधारण समुद्र मे दिखाई न पड़े ॥ २६२ ॥

इह – हति – मृत्यु ।

[२६४–२६५]

मझिमह मारणु बोलइ जोइ सो मरइ चिंत मनुसु न होइ ।
मारि कु पाछइ मारणु कहइ लोगि वीर पुरुसाइ लहइ ॥
कहइ जिणदत्त पुरी करि तौलि आवहु मारण न मारउ बोलु ।
तौ न मुरणु जौ ऐसौ करउ मारि पुरी दह दिह विस्थरउ ॥

अर्थ —जो मध्य मे ही मारने के लिए कहता है वह चिन्ता करके मरता है तथा (पुनः) मनुष्य नहीं होता है । पहिले मार करके जो पीछे मारने के लिये कहता है वही वीर मनुष्यता प्राप्त करता है । ॥ २६४ ॥

छुरी को दिखला कर जिनदत्त ने कहा आओ मारने के बोल मत बोलो । जो ऐसा नहीं करेगा उसे छुरी मार कर दसों दिशाओं में फैला दूगा । ॥ ६५ ॥

[२६६-२६७]

भणहि खयरु यहु घाटि नु होउ, हाथ समुद्द पइरतु इहु जोइ ।
रहु रहु वीरु कोपु जणि करहि, चढि तू विमाण हमारे चलहि ।।
घालि विमाण लयो जो तहा, भणइ वीरु लइ जइह कु किहा ।
वसहि विज्जाहर गिर उप्परहि, तुहु लेइइ जइह रथनुपुहि ।।

अर्थ —खेचरो (विद्याधरो) ने कहा, "यह वीर कम नही है जो अपने हाथो से समुद्र को तैर रहा है (पार कर रहा है)।" वे कहने लगे, 'हे वीर, शान्त हो कोप न कर! तू विमान पर चढ और हमारे साथ चल ।।२६६।।

विमान पर चढा कर जब वे जाने लगे तो उस वीर ने पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो? उन्होने कहा," इस पर्वत के ऊपर विद्याधर लोग रहते है, उस रथनूपुर नामक स्थान पर तुझे ले जावेंगे ।।२६७।।

रथनूपुर नगर-वर्णन

[२६८-२६९]

तहि असोक विज्जाहर राउ, असोक सिरी राणि कहु भाउ ।
ण सुरेंद्र जो थापिउ सुरह, गरुव णरेंद सेवज सु करह ।।
साहण वाहण न मुणउ अतु, करहि राजु मेइणि विलसत ।
अतेउरू चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ।।

अर्थ —"वहाँ पर अशोक नामका विद्याधर राजा है और उसकी रानी का नाम अशोकश्री है। मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो और जिसकी सेवा बडे बडे नरेन्द्र करते है।" ।।२६८।।

'उसके साधन-वाहनादि का अत न जानो। इस प्रकार वह राज्य करता तथा पृथ्वी का भोग करता है। उसके अन्त पुर मे ८४ रानिया है जिनके नाम रल्ह कवि कहता है मैं जानता हूँ।" ।।२६९।।

दरसणिदे सुखसेणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि ।
मदोवरि अरु चद्रामती, हीरादे राणी रेवती ।।

अर्थ —"मारोगा, कन्हादे राणी हैं, सावलदे और सुहगादे को जानो, रेखा, सुमति सुता पद्मिनी है। तथा भोगविलसिनी, हसगामिनी हैं।" ।।२७४।।

दर्शनदे, सुखसेणावली, तारादे (के नाम) रल्ह कवि स्मरण कर कहता है। मदोदरी, चन्द्रमती, हीरादे तथा रेवती रानियाँ है ।।२७५।।

[२७६-२७७]

सारगदे अरु चद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गगादे राणी गजगमणि, कमलावे अरु हसागमणि ।।
मुक्तादेवि रुव आगली, चित्तिणि हसिणि अरु पद्मिनी ।
सोनवती वरगत हो घणी ।।

अर्थ —"सारगदे, चन्द्रवदनी, मनको भावने वाली राणी वीरमदे, गगादे, रानी गजगामिनी, कमलादे और हसगामिनी हैं।" ।।२७६।।

"मुक्ता देवी है जो रूप मे बढी चढी है, चित्तिणी, हसिणी एव पद्मिनी रानियाँ हैं। सोनवती अत्यधिक सुन्दर स्त्री है ।।२७७।।

[२७८-२७९-२८०]

अवलो वाला पोढा तिरी, पियसुन्दरी सुमइल मनपुरी ।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कइलास कुमारि ।।
श्रीवसतमाला सोभाग, हरइ चित्त कामिणी कडाष ।
सव्वइ वानि वारिहु घालहि, सव्वइ असोइराय वालहो ।।
कला विनोद छ्द अरु करहि, सुरय पसगि राइ मन हरहि ।
गीत विनान जाण पयडति, हाव भाव विभ्रम सुधरति ।।

अर्थ —पुन: मदनावली बाला प्रौढ़ा स्त्री है। प्रिय सुन्दरी मन को प्रसन्न करने वाली सुमइस्स (सुमति) देवी मोरवती रामा मोगवती तथा कैलाश कुमारी है' ॥२७८॥

'मीवसतमाला कही जाती है जो अपने कटाक्षों से चित्त को हरण करने वाली है। सभी रानियां दानी और पण्डिता को दूर भगाने वाली हैं। वे सभी रानियां असोक राजा की वल्लभाएँ हैं" ॥२७९॥

वे विविध प्रकार के कला विनोद तथा छंद रचना करती हैं सुरत प्रसंग द्वारा राजा के मन को हरती हैं। गीत-विज्ञान तथा ज्ञान को प्रकट करती हैं तथा वे हाव-भाव एवं विभ्रम धारण करती हैं' ॥२८ ॥

[२८१-२८२]

अइसी सयल अंतेउर सा थाटु असोगसिरी राणी बहु माउ।
तहि कुलिउंरिज घणी धरी बहु सिंगारमइ विज्जाहरी॥
को तहि कहइ अंग सोवन्न जीती रूप ताम सोवन्न।
राइ असोक पुछिउ मुणिणाहु कीयहु वर को सामि कहाहु॥

अर्थ —"ऐसा (उस राजा का) सम्पूर्ण रणवास का थाट (ठाठ) है। उसकी असोकश्री पट्टरानी है उसके कुल की मर्यादा स्वरूप भाग्यशालिनी सुन्दरी तथा विद्याधरी शृंगार मती नाम की पुत्री है ॥२ १॥

उसके स्वर्ण के समान अंगों का कहां तक वर्णन करें। उसने रूप और ताप में सोवन को जीत लिया है। राजा असोक ने मुनिवर से पूछा हे स्वामी मेरी पुत्री का कौन पति होगा उसे कहिये" ॥२८२॥

[२ ३-२८४]

हाथ चडहि जो वाइस हीर कन्या वरउ वर होइसइ सोइ।
विज्जाहर राइ दीनाउ कहिय तउ हुन्नु आउ तमुह तक रहिय॥

तुह तुरंतु भेटियउ इह ठाउ, वेगि चालि परिणावहि जाइ ।
गए विज्जाहर पुरी मझारि, गूड र तोरण ऊभे वारि ।।

अर्थ —(उन्होने उत्तर दिया,) "अपने हाथो से इस समुद्र को तैरता (पार करता) हो, वही इस कन्या का स्वामी होगा ।" जव विद्याधर राजा ने हम से ऐसा कहा और तभी से यहा आकर समुद्र-तट पर रह रहे हैं ।।२८३।।

"इसलिये तुम उस स्थान पर चलकर राजा मे भेंट करो तथा शीघ्र चलकर (उसकी कन्या से) विवाह करो ।" (यह सुनकर) वह विद्याघरो की नगरी मे गया जहा गुडी एव तोरण द्वार पर लगे हुये थे ।।२८४।।

उवहि – उदधि ।

सोलह विद्याओं की प्राप्ति

[२८५–२८६]

देखि वीर आनदउ खयरु, परिणाविय सिगारमई कुमरि ।
राय सोग तह काइ करेइ, अगनिउ दानु दाइजौ देइ ।।
सिहुज पदार्थ मू दडी मिली, विज्जा सोलह पाई भली ।
गगनगामिनी वहुरूपिणी, पाणिउसोखणी वलथभणी ।।

अर्थ —उस वीर को देख कर वह विद्यावर आनन्दित हुआ तथा अपनी कुमारी शृ गारमती का उसके साथ विवाह कर दिया । राजा अशोक ने क्या किया कि दायजे मे अगणित वन दिया ।।२८५।।

उसे (दहेज मे) सिंघुज पदार्थो की मुद्रिका मिली एव सोलह उत्तम विद्याएँ प्राप्त हुई । वे हैं गगनगामिनी, वहुरूपिणी, जलसोखिनी तथा वलस्तमिनी ।।२८६।।

परीक्षा करने के लिये मन मे जिस विमान का विचार किया उसको बुलाया ॥२९०॥

पन्न – पण्ण–प्राज्ञ । हक्कारिउ – बुलाया ।

[२९१–२९२]

आयउ जगमगतु सो तित्थु, जीवदेव नदणु हइ जित्थु ।
विज्जा चवइ निसुण जिणदत्त, वदि अकिट्टमि जिणमलचत्तु ॥
तहि जिणदत्तु तिरिय वीसमइ, मण चितिअ पासि उपमइ ।
फिरि कैला (स) वदि जिणदेव, वदि करिवि आयो तहि खेव ॥

अर्थ —और जगमगाता हुआ वह विमान वही पर आ गया जहाँ पर वह जीवदेव का पुत्र (जिनदत्त) था । इस विद्या ने जिनदत्त से प्रार्थना की "अकृत्रिम चैत्यालय की वदना करने चलिये" ॥२९१॥

फिर जिनदत्त ने अपनी विस्मृत स्त्री को मन मे विचारा तो वह पास आ गयी । फिर कैलाश पर जिनदेव की वदना करके वापिस वहीं आ गया ॥२९२॥

नोट—कैलाश पर्वत भगवान् आदिनाथ का मोक्ष स्थान है ।

[२९३–२९४]

आइ णयरि ते राजु कराहि, पुणु असोग सिउ वात कराहि ।
समदह देवति भेटण जाहि, माय वापु अवसेर कराहि ॥
कहइ विज्जाहरु एमु करेहु, आधौ देसु कौ राजु तुम लेहु ।
भणइ वीर हमु यहु न सुहाइ, तात गवेसिउ करि हउ जाइ ॥

अर्थ —वे नगरी मे आकर राज करने लगे । फिर उसने अशोक राज से वात की और कहा, "हे देव ! तुम मुझे विदा दो तो माता तथा पिता से मिलने जाएँ । वे मेरी चिन्ता कर रहे हैं" ॥२९३॥

विद्याधर ने उससे कहा 'तुम ऐसा करो कि तुम आधा देश का राज्य ले लो (और यहीं रहो)।" वीर (जिनदत्त) ने कहा "मुझे यह अच्छा नहीं लगता है। मैं जाकर माता-पिता की सेवा करूंगा' ॥२९४॥

[२९५]

राय असोय पुणु नीकउ कीयउ कच्छइ चूड करि मंडिय धीय ।
अरु मणु चिंतिउ दिण्णु विमाणु तहि दियइ रयण अपमाण ॥

अर्थ —राजा अशोक ने फिर यह सत्कार्य किया कि अपनी लड़की को कच्छ (कक्षा) तथा चूड़ा (आदि आभूषणों) से मंडित किया और उसे मन चाहा विमान दिया तथा अप्रमाण (अनन्त) रत्न दिये ॥२९५॥

तहि – तहाँ–तथा

चंपापुरी के लिये प्रस्थान

[२९६–२९७]

दिपहि विमाण रयण आवरी पालक सेज सुहाइ धरी ।
चड्यो हंसतूल जिमि जाइ समदउ राय असोय विसराय ॥
उत्तरि विमाणहि ठाढउ भयउ बिएउ करि पुणु पूजण लयउ ।
णिय मणु चिंतिउ अक्खउ तोहि चंपापुरि लइ चलहि मोहि ॥

अर्थ —वह विमान रत्नों की झालर से चमक रहा था जिसमें एक सुन्दर पलंग-शय्या रक्खी हुई थी। हंस के समान उस विमान में वह बैठ गया और राजा अशोक ने उसको विसर्जते हुए विदा किया ॥२९६॥

विमान से उतर कर वह खड़ा ही गया। दोनों हाथों से उसने फिर (भगवान की) पूजा की। पुनः विमान से कहा 'मनमें विचार करके निश्चयपूर्वक मैं तुझसे कहता हूँ तू मुझे चंपापुर ले चल ॥२९७॥

बिए ∠ बिण्णि—दोनों ।

[२९८-२९९]

सो विमाण ठिय रयणनु भरइ, विज्जाहरिय कंति सिहु चडइ ।
विण्ण विचित्तिहु वेगह गहो, चपापुरिय रायसिउ कहे ।।
चपापुरि णयरी पइसारि, वाडी देखत भई वडी वार ।
अथइ सूरु मेरु तल गयो, पहली राति पहर इकु भयो ।।

अर्थ —पुन रत्नो से वह विमान भर गया तथा विद्याधरी अपने कान्त (जिणदत्त) के साथ उस पर चढी । राजसिंह (कवि) कहता है कि वह विमान शीघ्र ही चपापुरी पहुँच गया ।।२९८।।

चपापुरी नगरी के प्रवेश-मार्ग पर वाडी (उद्यान) देखते उसे वडी देरी हो गई । सूर्य अस्त होकर मेरु के तले (पीछे) चला गया तथा इस प्रकार (वहाँ) प्रथम रात्रि का एक पहर व्यतीत हो गया ।।२९९।।

विण्ण – विज्ञ ।

[३००]

जपइ वीर नारि सुनि झत्ति, पहिरे अज्जु विलवहु राति ।
भणइ तिरिय मइ लाइव रोय, पहिलउ पहिरउ मेरउ देव ।।

अर्थ —वीर जिनदत्त विद्याधरी से कहने लगा, "हे नारी (स्त्री) शीघ्र सुनो, आज की रात्रि पहरे मे विलमाओ (व्यतीत करो) ।" स्त्री ने कहा, "मैं रुचिपूर्वक करूँगी । प्रथम पहरा हे देव, मेरा हो" ।।३००।।

झत्ति – झटित–शीघ्र । रोय – रोअ–रुचि ।

[३०१-३०२]

सोवइ तहि जिणदत्त अघाइ, राउ विरउ पहरु तिहि जाइ ।
भउ परतूस पहरु दुइजो आइ, जागि वीरु वोलइ विहसाइ ।।

सुणि तू राइ असोगह धीय जागत बहुल रयणि सो गईय ।
बोलु एकु बोलहि स गली हु जागउ तू सोवहि चली ॥

अर्थ — वहाँ जिनदत्त अघाकर (थक कर) सोने लगा तथा एक पहर रागविराग में व्यतीत हो गया । जब दूसरा पहर हुआ तो उसे अतोष (संतोष) हुआ और वीर (जिनदत्त) जाग कर हँसता हुआ बोला ॥१ १॥

"हे राजा अशोक की पुत्री ! तू सुन तुझे जागते हुए बहुत रात्रि हो चली है । मैं तुमसे एक बात कहता हूँ कि अब मैं जागता हूँ और तू चुप सो जा' ॥१ २॥

राउ – राग । विरउ – विराग । रयणि – रजनी ।

[१ ३-१ ४]

पिय जाणहि सुणहि मो बात अणखिउ बोल न बोलहि कंत ।
पिय दुखु देइ जु अपणी सुखिआइ तसु पतिआरु अफूलउ जाइ ॥
सती तिरीमे नाहु सुजाण सामी आगइ देहि पराण ।
सुणि साईं मेर तु भतार नाहि मोहि अजइ इतिबार ॥

अर्थ —(स्त्री ने कहा) हे प्रिय वल्लभ ! मेरी बात सुनो अटपटे बोल हे कान्त न बोलो । जो प्रिय (पति) को दुख देकर अपने सुख चाहती है उसका पतियारा (विश्वास) निष्फल जाता है ॥१ ३॥

सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे और जो स्वामी के आगे प्राण दे । हे स्वामी सुनो 'तुम मेरे भर्तार हो (किन्तु आपकी बातों पर) मुझे एतबार (विश्वास) नहीं हो रहा है ॥१ ४॥

[१ ५-१ ६]

जइ तुम्हि जागत अवगुणु होइ तो मुहि लोगु भणु लखहि कोइ ।
बालम पाछइ करहि कुकम्मु ना तिन्ह तिरिय जीतुआ जम्मु ॥

तो जिणदत्त रुसि वोलेइ, फेतिउ भरपहि वावलो भइ ।
सोवहि घणी म लावहि खेऊ, घडी एक हूउ पहिरउ देउ ॥

अर्थ —"यदि तुम्हे जागते हुए अवसुग (कष्ट) होता हो तो कोई भी लोग मेरी सराहना न करेंगे। वल्लभ (पति) के पीछे जो (स्त्री) कुकर्म्म करती है वह स्त्री नही कुत्रिया है उसे मनुष्य जन्म दुवारा नही मिलता है ॥३०५॥

जिनदत्त तव रुष्ट होकर वोला, "तुम पागल होकर यह सव क्या वक रही हो। तुम घनी (नीद) सोग्रो तथा मन मे जरा भी खेद मत करो। ग्रव एक घडी मैं पहरा दूंगा" ॥३०६॥

बौने के रूप मे

[३०७–३०८]

विलखवि घणी नींद मनु कीयउ, वीती रयणि सूर ऊगयो ।
करइ कपटु वावण उणि जासु, हुइ वावणउ छाडि गऊ तासु ॥
परछनु आइ देखइ तिरिय, घरण सत सिहु छइ किसत टलीय ।
ग्रापणु गुपत नयर महि फिरइ, जागि नारी सो कारणु करइ ॥

अर्थ —विलखती हुई उस स्त्री ने घनी नीद की इच्छा की [ग्रौर सो गई । रात्रि बीती ग्रौर सूर्य उदित हुग्रा । उससे कपट करके (जिनदत्त ने) बौने का शरीर वना लिया तथा वौना होकर ग्रपनी स्त्री को छोड़ गया ॥३०७॥

छिप-छिप कर वह ग्रपनी स्त्री को देखने लगा कि वह (स्त्री) सत सेहै ग्रथवा सत को उसने छोड दिया है। स्वय वह गुप्त रूप मे नगर मे फिरने लगा। जव वह स्त्री (विद्याधरी) जगी तो कारण करने (रोने-चिल्लाने) लगी ॥३०८॥

वस्तु बंध

[१ ६]

बरए विय्यन बाविस सुकुम्माल ।
खीखोवरि ससिबयणि कनय चूडमणि हार मंडिय ।
सोवंतिय नींद भरि पियपुरुष मतहि काइ छंडिय ॥
पुणु थम्मक्किम्म जोवइ दिसइ उठि बहु जोइय बामु ।
मज्झु विमाणहिं रसहु कइ तिरी न देखइ तामु ॥

अर्थ —वह कन्या (स्त्री) मुख सम्पन्न में पली हुई सुन्दर एवं सुकोमल थी। वह क्षीणोदरी तथा शशि वदना थी स्वर्ण चूडामणि एवं हार से मंडित (सुशोभित) थी। नींद भर सोते हुए वह पुरुषात प्रिय (पति) द्वारा क्यों छोड़ दी गई? पुन (तदनन्तर) चमकी (स्तंभित) होकर दिशाओं में देखने लगी। अपने पार्श्व (बगल) में देखा तो रसहु कवि कहता है कि विमान के मध्य उस स्त्री को वह दिखाई नहीं दिया ॥१ ६॥

[११ -१११]

उठि तिरिव यु जोवइ वामु, मज्झि विमाणए न देखइ तामु ।
कलिमलाइ ऊंचे बढि बाहु, रायहु रायहु करि मुकी बाह ॥
अति बहु करि सामियउ लागि एउ मइ पापिणी नींदभरि खोयउ ।
नोय बहुगउ साची भयौ भगत जोय गु बुइ मुसि गयऊ ॥

अर्थ —स्त्री ने जो उठकर पास (बगल) में देखा तो विमान में उसे नहीं पाया। अकुला कर विमान पर ऊंची बाह करके स्वामी! स्वामी! करते हुए उसने बाढ़ मारी (बहु जोर से रोने लगी) ११ ॥

अत्यधिक आग्रहपूर्वक मैंने स्वामी को पकड़ा था किन्तु मुझ पापिनी

ने नींद (सोने) की इच्छा की। लोगो का कहना सच्चा हो गया कि जागते हुए किसी को भी चोर नही चुरा सका है ॥३११॥

गह – आवेश-आसक्ति-तल्लीनता। मूष – मुष – चुराना।

[३१२–३१३]

गही वरि वरि कूटइ हियउ, कवणु दोसु मइ सामी कीयउ।
जणु कछु ग्रौगण दीठउ नाह, तउ काहे मूको वण माह॥
कियो मोहि वज्र को हियउ, कि दइवि पाहण णिम्मवियउ।
सून विमाण देखि विलिखाइ, किन फाटहि हियडा चरडाइ॥

अर्थ —आवेश मे भी (आकुल-व्याकुल होकर) वह अपनी छाती कूटने लगी (तथा कहने लगी), "हे स्वामी, मैंने कौनसा अपराध किया है और यदि तुम्हे कुछ भी अवगुण नही दिखा है, तो फिर क्यो वन के मध्य तुमने मुझे छोड दिया ॥३१२॥

क्या (विधाता ने) मेरा वज्र का हृदय किया है अथवा उस दैव ने उसका पाषाण से निर्माण किया है?" सूने विमान को देखकर वह रोने लगी तथा कहने लगी, "मेरा हृदय चरड़ा (चरचरा) कर क्यो नही फट जाता?" ॥३१३॥

[३१४–३१५]

तुहि दीठइ मुहि रहहि पराण, तुहि दीठइ पर जियउ णियाणि।
तुहि विनु अउर न देखउ आंखि, पिय जिणदत्त जिणेसर साखि॥
तइ मया मूको निसएस, काहे पिय छाडी परदेस।
जन किनु इ नाह विनु जियउ, इव किसु देखि सहारउ हियउ॥

अर्थ —तुझे देखने पर ही मेरे प्राण रहेंगे तथा तुझे देखने पर ही मैं

जी सकती हूँ। तुम्हारे बिना मैं दूसरे किसी को भी इन आँखों से नहीं देखती हूँ जिनेश्वर मेरे साक्षी है कि जिनदत्त ही मेरा प्रिय पति है ॥११४॥

ऐसी रात्रि में तुमने मुझे (कैसे) छोड़ दी ? हे प्रिये मुझे परदेश में क्यों छोड़ दिया ? तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊंगी तथा अब किसको देखकर हृदय को समझाऊँ ? ॥११५॥

मया – स्नेहपूर्वक।

[११६-११७]

जिणवत्त जिणवत्त विरिहिणि भणइ कन्नए कैहिमउ सेठिस्यो कहइ ।
रोवइ विमणु रहावइ नारि, करि उर्पम लइ गयउ विहारि ॥
लहुमर गयउ जिणेंद विहार पाय लागी जिणवत्त सम्हारि ।
पिय को नाउ विमलमति सुणइ को जिणवत्त सखी तू भणइ ॥

अर्थ —यह विरहिणी जिनदत्त जिनदत्त कह रही थी यह बात सेठ से जाकर किसी ने कही। (वह सेठ) विमन रोने लगा तथा उस नारी को सान्त्वना देने लगा। तदनन्तर उसे हाथ का सहारा देकर जिन मन्दिर म ले गया ॥११६॥

वह फिर जिन मन्दिर में चली गई तथा (जिनेन्द्र के) चरणों मे पड़कर भी जिनदत्त को स्मरण करने लगी। जब विमलमती ने अपने प्रिय (पति) का नाम सुना तो उसने उसम पूछा हे सखी तू कौनसे जिनदत्त का नाम ले रही है ॥११७॥

[११ -११८]

विज्जाहुरी कहइ सुणि सखी लिय कण्णी चर्वंबति चढी ।
बीवदेव गोवु वह गयउ लोर्यंत छांडि चालि विड गयउ ॥

दूवइ तिरिया कहाहे तुरतु, हमु पुणु अछहि तासु की कति ।
तिन्यो तिरिया अछहि ठाइ, वाहुडि कथा वीर पहि जाइ ।।

अर्थ —विद्याधरी कहने लगी, हे सखी सुन, "उसने माता का नाम जीवजसा बताया था और कहा था कि वह जीवदेव का श्रेष्ठ पुत्र है । किन्तु वह प्रिय कल मुझे सोती हुई छोड कर चला गया । ।।३१८।।

उन दोनो स्त्रियो ने भी उसी समय कहा "हम भी उसी की कान्ताएँ (पत्नियाँ) हैं ।" फिर वे तीनो स्त्रिया वहाँ रहने लगी । अब लौट कर कथा का प्रसग वीर जिनदत्त के पास जाता है ।।३१९।।

वाहुड – व्याघुट–लौटना ।

[३२०–३२१]

वहुक चोजु नयरी महि कियउ, पुणि वुलाइ राजा पूछियउ ।
कहहि जाति कुल आपुण ठाउ, पुणु कौतूलहु दरिसहि घणउ ।।
कहइ वात वइठिउ वावणा, हमु देव सामी वाभणा ।
गीत कला गुण जाणहि सव्वु, मह्नु देउ कम्मु नाउ गधव्वु ।।

अर्थ —नगरी मे जब उसने (जिनदत्त ने) वहुक (अनेक) चमत्कार के कार्य किए तो उसको राजा ने बुलाकर पूछा, "अपने कुल, जाति एव स्थान को वताओ और अपने घने कौतूहल (चमत्कार) भी दिखाओ" ।।३२०।।

वह वौना वैठ कर कहने लगा, "हे स्वामी हम ब्राह्मण देव हैं । मैं सभी गायन-कला और गुण को जानता हूँ तथा मेरा कर्म से नाम हे देव ! गधर्व है" ।।३२१।।

[३२२–३२३]

तवहि राउ वोलइ रि भडत्ति, लोपहि नाउ म गोवहि जाति ।
तुम्ह पुणु वावणि चवहि अयाणु, तुहि तिण लोगु कहइ तुम्ह पाण ।।

भूख मरत देव हउ केहा करउ तउ हउ पाणु भयउ विणहुउ ।
जबहि गुसाईं मूडी चुडी तबहि पलाठी कुलु अरु कुली ॥

अर्थ —तब राजा खीझ कर बोला 'तुम अपना नाम व जाति मत छिपाओ। हे बौने! तुम अन्न व्यक्ति की सी बातें कर रहे हो इससे तो लोग तुम्हें पाण (श्वपच तथा भरावी की तरह वनवास करने वाला) कहेंगे ॥१२२॥

"उसने कहा 'हे देव! भूखों मरता मैं क्या करता? तब मैं विनष्ट हुआ पाण (श्वपच) हो गया। जब से स्वामी (परमात्मा) ने मेरी चोटी मूंड दी तभी मैंने कुल और कुल की कानि प्रणष्ट कर दी' ॥१२३॥

विणहु – विनाश।

[१२४-१२५]

पेट धरण देव सेवा कीजइ पेट धरण देसंतर लीजइ ।
अन्नहु अरु पाण सिहु भेट पाणउ भयउ हौं कारणि पेट ॥
बार बार बावनउ भणाइ देव विसुधित किन्न कराइ ।
जिनइ न चोवति कापडु खाणु बंभणु हुंति भयो यह पाणु ॥

अर्थ — 'हे देव! पेट के लिए ही सेवा की जाती है तथा पेट के लिए ही देशान्तर लिया जाता (जाना पड़ता) है। अन्न एवं पानी से मुझे भेंट नहीं थी। पेट के लिये ही मैं पाण (श्वपच) हुआ (बना) ॥१२४॥

वह बौना बार-बार कहने लगा 'हे देव! मुझे भूख रहित क्यों नहीं कराते? मुझे चोटी कपड़ा तथा खाना नहीं मिलता इसीलिये ब्राह्मण से मैं यह पाण (श्वपच) बन गया ॥१२५॥

[१२६-१२७]

जाति पाति यह पूछहि ताहि ब्याहु बीजु जिउ सालभु थाहि ।
वयणु एक हउ कहउ समीपु जिणदत्तु भणति भारि मइ दिउ ॥

तखिरणो विमलुमती पहुतउ तहां, वरणमहि नारि वइठी जहा ।
मेरउ खेलु जीतु छइ आल, नाटकु नटउ देखि भूपाल ॥

अर्थ —"प्रभु ! (राजन !) जाति पाँति उसकी पूछें जिससे विवाह आदि का सम्बन्ध (करना) हो। जिनदत्त कहने लगा मैं आपसे एक मीठी (मधुर) वात कहता हूँ —"नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइये" ॥३२६॥

उसी समय जहाँ विमलमती थी तथा उद्यान के मध्य वह (विद्याधरी) स्त्री बैठी हुई थी, वह वहाँ पहुँचा (उसने अपने आप कहा) मेरा परिचित खेल कोमल और मृदु है, (अत) मैं आज एक नाटक करूँ जिसे राजा देखें ॥३२७॥

जीत ∠ जित–जीता हुआ, परिचित। आल – मृदु, कोमल।

[३२८–३२९]

नाव विनोद छद वहु करउ, रूप बिरूप कला अणुसरउ ।
छोह भाइ सुव्वि दीसइ घरणउ, इउ नट भड खेलइ वावरणउ ॥
धरइ तालु जिह हासउ वयरा, वधइ किरणि भमइ पुणु गगन ।
विपरितु छोहु एकु दरसियउ, राजा हसइ वावलउ भयउ ॥

अर्थ —मैं वादित्र (वजाऊँगा) एव विविध प्रकार के हास्य छद कहूंगा तथा भली एव बुरी दोनो ही प्रकार की कलाओ का अनुसरण करूँगा। जिससे क्षोभ तथा भाव (स्नेह) दोनो का ही खूब अनुभव हो। इस प्रकार वह (बौना) नट-भट (का खेल) खेलने लगा ॥३२८॥

वह ऐसे ताल धरने लगा जिससे हँसी के वचन निकले (हँसी आवे) किरणो को बांध कर वह आकाश मे घूमने लगा। विपरीत (विरोध का) भाव

(बौने ने) कहा, "हे देव ! मनुष्य के हँसने की क्या ? मेरे बोल से पाषाण भी हँस सकता है। हे देव ! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हँसा दूँ (तो मेरा क्या नाम) ॥३३३॥

सवाम — ब्राह्मण।

[३३४-३३५]

वस्त उठाइ सिला परिठइ, एक चित्तु विज्जा सुमरइ ।
सर्व सभा चित्तुर॰ हसाइ, तू तारूणी सिलाहु हसहि ॥
जवहि बीर तिसु आइस कहइ, सिलारूप जइ विज्जा रहइ ।
यहु तारूणी वि(ज्जा) तिह ठाइ, हसि हहडाइ रजावहि राउ ॥

अर्थ —वस्तु को उठाकर शिला पर रख दिया तथा एक चित होकर विद्या का स्मरण करने लगा। (विद्या से उसने कहा) "सभी सभा का चित्त सुखी हो इसलिये तू ही तारुणी (विद्या) शिला होकर हँस" ॥३३४॥

उस वीर ने जब उसको यह आदेश दिया तो वह विद्या शिल-रूपिणी होकर वहा जा कर बैठ गई। यह तारुणी विद्या ही थी जो उस स्थान पर ठहाका मार कर (खूब जोर से) हँसने और राजा को रिझाने लगी ॥३३५॥

[३३६-३३७]

तबु सो सिला हसइ हहडाइ, सभा लोगु मोहउ तिह ठाइ ।
तूठहि राजा करि तहि भाउ, मागि मागि बावणे पसाउ ॥
इबहि पसाउ पठये केम, जाम ण नारि हसाउ देव ।
सामी वयण एकु अवधारि, दिन दिन एकु बुलालाउ नारि ॥

अर्थ —तब वह शिला ठहाका मार कर हँसने लगी जिससे सभा के लोग उस स्थान पर मोहित हो गये। राजा स्नेहपूर्वक प्रसन्न हुआ और कहने लगा 'हे बौने ! तू पुरस्कार मांग पुरस्कार माग" ॥३३६॥

(किसी ने कहा) "कैसे पुरस्कार मिल सकता है, जब तक हे देव यह यों (इसी प्रकार) नारियों को न हँसा दे। बौने ने कहा हे स्वामी ! मेरी एक बात मान लो। मैं एक-एक दिन एक-एक स्त्री को बुलाऊंगा ॥११७॥

नाराच छंद

[११८]

जाइ विहारी जिण जयकारी वाली तिन्हु की वात ।
हारिउ दव्वु जूवह सव्वु निकल गयउ जिणदत्तु ॥
छाडिउ पाटणु राइ दिवसु आयउ चंपापुरी ।
इहां सती विमलामती छाडि गयउ सिरी ॥

अर्थ —इस वचन के अनुसार उसने विहारी (मन्दिर) में जाकर जिनेन्द्र की जय-जयकार की तथा उनकी वार्ता चलाई। 'जुए में सब द्रव्य हार करके जिनदत्त वहां से निकल गया (भागा)। पाटण को छोड़ कर तथा रात-दिन चल करके चंपापुरी आया तथा यहां वह सती विमलामती को छोड़ गया ॥११८॥

[११९]

बोलइ बाठी नारी बैठी सुणइ पुछउ तोहि ।
सामी मोहि छुडी गउ कहि ··· ॥
तू पुणु दासी अहि निरवासी झगडउ अवर कोइ ।
इसा करि वह हउ कास कहि हउ कहा गउ लोइ ॥

अर्थ —वहीं स्त्री जो बैठी हुई थी यह सुनकर बोली मैं तुम से उसके बाद की (बात) पूछती हूँ। मुझे छोड़कर फिर वह कहां गया। (बौने ने उत्तर दिया) तू तो दासी है और निरवासी (उलझनें सुलझाने वाली) है

(किन्तु) कोई (अन्य भी) ठाली (बेकार) है ? इस समय घर जाकर मैं यह कल बताऊंगा, जहा वह (फिर) गया ।।३३९।।

[३४०]

दुइजइ दिवसौ जाय वइसी कहा सो कहइ ।
छानउ होइ जाइ सोइ दसपुर राहाइ ।।
तहा हु तेउ जाइ पहुतइ सिंहल दीप चडाइ ।
विवाही सत्ती सिरियामत्ती सायर माहि पडाइ ।।

अर्थ —दूसरे दिन वह नारी जा बैठी तो वह बौना क्या कहने लगा ? प्रच्छन्न होकर वह दसपुर मे रहा और वहा से भी जाकर वह सिंहल द्वीप जा चढा । फिर वहा श्रीमती से विवाह करके सागर के मध्य गिर गया" ।।३४०।।

[३४१]

लागी आखण नारि वियखल काहा सो भयउ ।
बूडिवि नीरह गहिर गभीरह पुणि कत्थ गयउ ।।
तू तुहु वाली (ठाली) छहि निरवाली कहिसहु कलि सुवात ।
इसउ कहाई सो बुलाई गयो तुरंत ।।

अर्थ —फिर वह विचक्षण नारी कहने लगी, आगे क्या हुआ ? (सागर के) गहरे गम्भीर जल मे डूबने के पश्चात् वह कहाँ गया ? (बौने ने कहा,) हे स्त्री तू ठाली है और निरवाली (उलझन सुलझाने वाली) है । (आगे की वार्ता मैं कल कहूँगा) । "इस प्रकार यह कह कर वह लौटकर(?) शीघ्र ही वहा से चला गया ।।३४१।।

[३४२]

तीजइ वासरि बोनइ अवसरि तिणि ठाहो आइ ।
सुणि सुणि तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ सोइ ।।

पारगु सायर गइ विज्जाहर लइ गयउ रयणपुरि ।
सिंगारमइ विवाहुर माहि मइ आयउ चंपापुरी ॥

अर्थ —तीसरे दिन सभा में उस स्थान पर आकर बोला– (तब बौने ने कहा) हे स्त्री ! सुनो सुनो जैसे ही वह (सागर में) गया वह पार किया गया । सागर म तैरते हुये (उसे देखकर) उसको विद्याधर रयणपुर नगर ले गए । वहाँ शृंगारमती विद्याधरी को ब्याह कर उसे चंपापुरी म आया ॥१४२॥

अवसर – सभा ।

[१४३]

तो भणइ बंधी बोलतउ वामी बावरा पूछउ तोही ।
देखिवि सुती निद्राभूती छाडि गयउ कत मोही ॥
तू अछि बाली (ठाली) बहु निरवाली ठावउ अवरु कोइ ।
हउ घरि हउ जाइसु कहिसु तु कहिसुउ कहा गयउ सोइ ॥

अर्थ —यह सुनकर वह सुन्दर स्त्री बोलने लगी "हे बौने मैं तुम से पूछती हूँ 'मुझे यह सोती हुई और निद्रा के वशीभूत देखकर छोड़ कर कहाँ चला गया ? वह बौना कहाँ गया तू तो खाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है किन्तु क्या (तेरी भाँति) कोई और भी ठाला है ? अभी तो मैं घर जाऊँगा । मैं तुम्हें यह कल बतलाऊँगा कि वह कहाँ गया" ॥१४३॥

[१४४]

तीनिउ तिनिउ नारी नारी बुलाइवि सा पभणइ ।
कोइ कोइ बहुतु बहुतु राजा के मन भणइ ॥

देई देई जाम जाम तहि वहु रयण समत्थि ।
एते षण षण छुट्ट पट्टणि वधण हत्थी ।।

अर्थ —(इस प्रकार) तीनो की तीनो ही नारियो को वुलवा कर (उनसे बातें कर) वह गया जिससे राजा के मन मे अत्यधिक कृपा पूर्ण स्नेह हुआ। वह उसे वार वार मे रत्न देने लगा। उसी क्षण नगर मे वन्धन से एक हाथी खुल गया ।।३४४।।

छोह – कृपापूर्ण स्नेह

[३४५]

मय भिभलु गउ अकुस मोडी खभु उपाडि दतूसलि तोडि ।
साकल तोडि करि चकचूनि गयउ महावतु घरको पूतु ।।
गयउ महावत्थु णयरी जित्थ गज भूडउभऊ अखइतत्थु ।
हउ उवयरिउ जुन खूटउ कालू तउ सूडिउ तोडितु भालु ।।

अर्थ —वह मद् विह्वल (हाथी) अकुश को मोड (न मान कर) करके, खम्भे को उपाड तथा तोड करके वह पुष्ट दांतो वाला (हाथी) चला गया। साकल को तोड कर उसने चकनाचूर कर दिया तथा वह महावत घर की ओर भाग गया। महावत नगरी मे जिधर गया, वहां हाथी से भयभीत होकर लोग कहने लगे, मैं (किसी प्रकार) उबरा (बचा) वह मानो काल ही खुल गया हो। तब वह विनाश करके शिर तोड़ने लगा ।।३४५।।

ऊसल – पीन पुष्ट। सूड – सुद् – विनाश करना

वस्तु बध

[३४६]

डसण तास ण सुड सपडु भू भजणु विसमु ।
धरइ वीरु चिक्कार सोट्टउ, गुमु गुमति अलिउलि नियरु ।
डरि लोगु भय कालु छूटउ, विद्धसइ मदिरु सयल तरुवरु ।।

पइठउ सायर तउ विज्जाहर लय गयउ रयणपुरि ।
सिंगारमइ विज्जाहर साहि कइ आयउ चंपापुरी ॥

अर्थ —तीसरे दिन सभा में उस स्थान पर आकर बोला— (तब बौने ने कहा) हे स्त्री ! सुनो जैसे ही वह (सागर में) गया वह छोड़ दिया गया । सागर में तैरते हुये (उसे देखकर) उसको विद्याधर रथनूपुर नगर ले गए । वहाँ शृंगारमती विद्याधरी को ब्याह कर उसे चंपापुरी ले आया ॥१४२॥

अवसर – समा ।

[१४३]

तो भणइ बंभी बोलणए तापी बावणउ पुच्छइ तोही ।
वैचिवि सुती निद्दासुती छंडवि गयउ कत मोही ॥
तू तहि वाली (ठाली) अरु निरवाली ठालउ अवरु कोइ ।
इम परि हउ जाइस्स कहहि तु कहियउ कहां गयउ सोइ ॥

अर्थ —यह सुनकर वह सुन्दर स्त्री बोलने लगी "हे बौने मैं तुम से पूछती हूँ "मुझे वह सोती हुई और निद्रा के वशीभूत देखकर छोड़ कर कहाँ चला गया ? वह बौना कहने लगा तू तो ठाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है किन्तु क्या (तेरी भाँति) कोई और भी ऐसा है ? अभी तो मैं घर जाऊंगा । मैं तुम्हें यह कल बतलाऊंगा कि वह कहाँ गया" ॥१४३॥

[१४४]

तीनिउ दिविउ गाती गाती सुलतहि सा पयइ ।
घोडु घोडु बहुलु बहुलु राजा के मन भयउ ॥

देई देई जाम जाम तहि वहु रयण समत्थि ।
एते षण षण छुट्टु पट्टणि वधण हत्थी ।।

अर्थ —(इस प्रकार) तीनो की तीनो ही नारियो को बुलवा कर (उनसे बातें कर) वह गया जिससे राजा के मन मे अत्यधिक कृपा पूर्ण स्नेह हुआ। वह उसे बार बार मे रत्न देने लगा। उसी क्षण नगर मे बन्धन से एक हाथी खुल गया ।।३४४।।

छोह – कृपापूर्ण स्नेह

[३४५]

मय भिभलु गउ अकुस मोडी खभु उपाडि वतूसलि तोडि ।
साकल तोडि करि चकचूनि गयउ महावतु घरको पूतु ।।
गयउ महावत्थु णयरी जित्थ गज भूडउभऊ अखइतत्थु ।
हउ उवधरिउ जुन खूटउ कालू तउ सूडिउ तोडितु भालु ।।

अर्थ —वह मद् विह्वल (हाथी) अकुश को मोड (न मान कर) करके, खम्भे को उपाड तथा तोड करके वह पुष्ट दाँतो वाला (हाथी) चला गया। साकल को तोड कर, उसने चकनाचूर कर दिया तथा वह महावत घर की ओर भाग गया। महावत नगरी मे जिधर गया, वहाँ हाथी से भयभीत होकर लोग कहने लगे, मैं (किसी प्रकार) उबरा (बचा) वह मानो काल ही खुल गया हो। तब वह विनाश करके शिर तोड़ने लगा ।।३४५।।

ऊसल – पीन पुष्ट। सूड – सुद् – विनाश करना

वस्तु बध

[३४६]

डसण तास ण सुकु सपडु भू भजणु विसमु ।
धरइ वीरु चिक्कार सोट्टउ, गुमु गुमति अलिउलि नियरु ।
डरि लोगु भय कालु छूटउ, विद्ध सइ मदिरु सयल तरुवरु ।।

मत्ता उप्पाडि रल्हु नयर भंग पडिउ किम भयंद पएणमारि ।
पुवर गयवर धरत न जाइ कहि चिक्कार भई लोय पुकारि ॥

अर्थ —उसके जो दांत थे भूमि को भयंकर रूप से नष्ट करने वाले (हो रहे) थे। बड़े बड़े वीर उसको पकड़े हुये थे और उसका (भयंकर) चीत्कार था। उसके पास भ्रमरों की पंक्ति गुंजार कर रही थी। लोग डरने लगे मानों साक्षात् काल ही छूट गया हो। वह मकानों तथा सभी वृक्षों को नष्ट कर रहा था। रल्हु कवि कहता है कि सारे नगर में अत्यधिक उत्पात हो गया था तथा लोग सोचने लगे थे कि हाथी को कैसे मारा जाय। वह दुर्धर्ष (भयकर) हाथी पकड़ा नहीं जा रहा था तब लोग पुकार करके भागने लगे थे ॥१४६॥

[१४७–१४८]

दंतुसलि खूंदंत फिरइ तल की माटी ऊपर करइ ।
सो मयमत्तु न लेखइ कस्सु, वण उवणु किमउ निरवासु ॥
तीन दिवस तहि छूटे भये भाजि लोगु डोंगर चढि रहे ।
बाजा जही नयरइं फिरइ हाथिउ मारिउ पकड कोइ करइ ॥

अर्थ —वह पुष्ट दांतवाला हाथी पृथ्वी को खूंद रहा था तथा नीचे की मिट्टी को ऊपर कर रहा था। वह मदोन्मत्त हाथी किसी से भी नहीं समझ रहा था तथा (जिसने) वनों और उद्यानों को निर्वास (नहीं रहने योग्य) कर दिया था। १४७॥

इस प्रकार उस हाथी को छूटे हुये तीन दिन हो गये थे और लोग भाग करके टीलों पर जा चढे थे। नगर में बाजे के साथ घोषणा फिरने लगी थी यदि कोई हाथी को मार कर भी पकड़ेगा ॥१४ ॥

दंतुसली – पुष्ट दंत

[३४९–३५०]

जो भाजइ गयवरु भडवाहु, परिणइ कुमरि देस अधराउ ।
एतिउ वोलु वावणइ सुणिउ, हाथटेकि फुणि वोलइ तणइ ।।
घरि विरुद्ध गयवरु जइजाइ, भूठे होइ त कीजइ काइ ।
साखी करण ते दिये हारि, सइ राजा परिगहु वइसारि ।।

अर्थ —"तथा जो भट उस गजराज को प्रणष्ट कर देगा, उसे वह अपनी लडकी परणा देगा तथा आधा राज्य देगा ।" यह घोषणा वौने ने सुनी, तव हाथ टेकते हुए उसने यह वात स्वीकार कर ली ।।३४९।।

(राजा ने कहा) "यदि तुम हाथी के विरुद्ध जाकर भूठे प्रमाणित हो तो हम क्या कर सकेंगे ?" यह सुनकर साक्षी के लिये (वौने ने) हार दिये तव राजा ने उस पर अपना परिग्रह (विश्वास) विठाया ।।३५०।।

परिगह ∠ परिग्रह–ममत्व । तण् – विश्वास करना ।

[३५१–३५२]

वीतराग की आण जु मोहि, पाछइ जइणवि वाहु रि ।
राजासइ कौतूहल चलइ, वावण पासि लोगु वहु मिलइ ।।
ठाट विरुद्ध रु गयवरु (ग) हा, सुइरी विज्जातारणी तहा ।
देखि हाथ बोलइ जु पचारि, काहि पुर घालिय उजाडि ।।

अर्थ —मुझे वीतराग भगवान की आन (सौगन्ध है यदि मैं) इस कार्य को न करूँ । राजा स्वय कौतूहल वश वहाँ गया तथा उस वौने के पास वहुत से लोग इकट्ठे हो गए ।।३५१।।

वह वौना गजराज के सामने जाकर खडा हो गया । तारणी विद्या को उसने स्मरण किया । उस हाथी को देखकर वह उसे ललकार कर वोला, "तुमने नगर को क्यो उजाड डाला है" ।।३५२।।

[१५८-५९]

हथिया आनि खंभ बंधि ठाउ जय-जयकारु लोगु सहु कियउ ।
हाथि जोडि फुणि विणवइ तेव[1] पुत्तिह लगणु दिखावहि देव ।
बइठो जाइ जिणेसर भवण पूछहि निय गुरु कारजु महु गणु ।
सब पुरु सामि अचंभो भयउ हाथिउ अछेह आवलें धरिउ ।।

अर्थ —(तदनंतर) हाथी को लाकर उसके स्थान पर उसने खंभे से बांध दिया। (इससे) सभी लोगों ने जय जयकार की। हाथ जोड़ कर फिर वह बौना विनय करने लगा हे देव (अब) अपनी पुत्री का लग्न दिखाइये (विवाह कीजिए) ।।१५८।।

राजा जिन मंदिर में जाकर बैठ गया तथा वहाँ पर (अपने) गुरु से उस राजा ने उस कार्य के विषय में पूछा। सभी पुरुषों को आश्चर्य हुआ कि इस बौने ने हाथी को अखंड (बिना किसी चोट फेट के) पकड़ लिया ।।१५९ ।।

महगणु ∠ मघवन – इन्द्र
१ मूल पाठ – 'तेव'

अद्भुत कार्यों का वर्णन

[१६१-१६२]

अखियउ बात कहहु निउ सम्मणु एही बात अचंभउ कवणु ।
कोडि दम्माउह चूपा जोति माता पिता छोडि पउ मेलि ।।
अहि परकम्म महला लहुउ तहु की जौवण केसरु महुउ ।
जो मोहिउ वृत्तसिय बहाउ पुण्यवंत को अकह पहाउ ।।

अर्थ —श्रमण (गुरु) ने निश्चय रूप से कहा है अम्मी ऐसी (इस)

बात में अचम्भा ही क्या? जो ग्यारह करोड जुआ मे हार गया तथा माता पिता को छोडकर चला गया ॥३६१॥

जिसने पराक्रम (पुरुषार्थ) ऐसा पाया, उसके बल पौरुष के विषय मे कितना कहा जाय। जो पत्थर की पूतली को देखकर मोहित हो गया। उस पुण्यवत्त की कितनी प्रशसा की जावे ॥३६२॥

अछे ∠ अक्षत – विना अग मग किये।

भविश्र ∠ भविक – मुक्तिगामी, भव्य जीव।

परकम्म ∠ पराक्रम।

[३६३–३६४]

परिहसु लियउ विसतर करइ, जहि को हाथ अजणी चडइ।
सूकउ अवरु वहोडइ जोइ, तहि किउ पौरुष कइसउ होइ॥
फिरिउ अनेयइ सागर दीप, पोपी सायरदत्त समीप।
सिहल हसकूट देखियउ, तासु वीर को कैसौ हियउ॥

अर्थ —जिसने खुशी के साथ परदेश गमन लिया तथा जिसने अपने हाथ से अजनी (गुटिका) चढाई। जिसने सूखी (वाडी) हरी कर दी। ऐसे (पुरुष) का और कैसा पुरुषार्थ होगा? ॥३६३॥

जो पापी सागरदत्त के साथ अनेक दीप समुद्रो मे घूमा। जिसने सिहल एव हसकूट देखा, उस वीर का हृदय कैसा होगा? ॥३६४॥

[३६५–३६६]

मालिरिण तणी वात निसुणाइ, मीच पराई मरण जु जाइ।
गयो मसारिण मडउ आणियउ, अहो भवियहु तहु कैसो हियउ॥
सिरियामती उव (र) नीसरयो, जिरण विसहर सयलु लोय सहरिउ।
कालु पूछ धरि ताडइ जोइ, तह कउ पौरिषु कवसउ होइ॥

[३७०-३७१]

विज्जा वलह जहि अच्छहि पास, चढिवि विमाणु गयो कैलास ।
तिहु भुवणहि जहि करी खियाति, हथिए वपुडा केती बात ।।
तउ वावणउ हकारिउ राइ, पूछउ वात कहउ सतभाउ ।
तू परछण्ण वीर हहि , आपउ किन पयासहि जोहि ।।

अर्थ —"जिसके पास विद्यावल है, जो विमान पर चढ कर कैलाश गया था, जिमने तीनो भुवनो मे अपनी ख्याति करली थी, ऐसे वप्पुडे (वेचारे) की कितनी (क्या) वात है" ।।३७०।।

तव वौने को राजा ने बुलाया और पूछा, "तू मुझसे (अपनी) वार्ता सतभाव (सत्य रूप) से कह । हे वीर! तू छिपा हुआ क्यो है ? तू किस कार्य के लिये आया है जिसे प्रकाशित नही करता (वताता) है ? ।।३७१।।

हकार ∠ आकारय् – वुलाना ।
पयास् ∠ प्रकाशय् – प्रकाशित करना ।

[३७२-३७३]

गात अलखणु कहियइ काइ, मूडिउ मडु चोटी फरहराइ ।
जिहि भोयण भिख्या कीय, सो किम परिणइ राजा धीय ।।
जाति विहीणु देव वावणउ, वार वार सत चूकउ भणउ ।
पाछइ लोगु हसइ मो वयणु, कुजर कठि कि सोहइ रयणु ।

अर्थ —(वौने ने कहा) "जिसका शरीर लक्षणो रहित है, उसे क्या कहे ? जिसका शिर मुडा हुआ है तथा चोटी फहरा रही है, जिसने भिक्षा का भोजन किया है वह राजा की कन्या से कैसे विवाह कर सकता है ?" ।।३७२।।

"हे देव ! जो जाति विहीन तथा वौना है तथा वार वार सत्य मे चूके वचन वोलता है और पीछे मे जिसके वचनो को सुनकर लोग हँसते हैं । क्या

मेरी देह कुत्सित है तथा एक हाथ का शरीर है। मेरे चार २ अगुल लवे पैर हैं। शरीर जैसे लकडी हो, पिचका पेट है तथा पीठ कूवडी है ॥३७७॥

कुछील ∠ कुत्छित ∠ कुत्सित।

[३७८–३७९]

आँखि कुढाल कपाल निघान, डसण दातलय वूचे कान।
कुहणी ऐसी देव मोकडी, अछ कपोल[1] नाक छीपडी॥
कामकला तिहि तेरी कुमरि, रभ सम्भ तिलोत्तमि गवरि।
जोग मोहणिय मृग लोयणु जासु, सा किमु सोहइ मेरइ पासु॥

अर्थ —आंखे वेढगी हैं तथा कपाल गडा हुआ है। दात हसिया (जैसे) तथा कान वूचे हैं। हे देव! कुहनी जैसी मूँगरी हो, गाल वैठे हुये तथा नाक चिपटी है ॥३७८॥

(दूसरी ओर) तेरी राजकुमारी काम की कला है। वह रभा, तिलोत्तमा एव गौरी है। वह जगत् मोहिनी है, जिसके लोचन मृगो के जैसे हैं। वह मेरे पास कैसे सुशोभित होगी? ॥३७९॥

दातला ∠ दात्र – घास काटने की हँसिया।
अछ् ∠ आस – वैठना।
१ कपाल – मूल पाठ है।

[३८०–३८१]

पडही नयर माहि वाजहि, गयवरु घरइ कन्य परणेइ।
घरिय हाथ मइ वावण भाट, अव उठि जाउ आपणी वाट॥
मतिहि तणउ हियउ कपियउ, कूडउ मतु देउ सवु कियउ।
चेटी देहि कुचालि म चालि, कीली लागि म देवलु ढालि॥

अर्थ — नगर में पटही बज रही थी कि हाथी को वश में करने वाला कन्या को विवाहेगा। हाथी को बौने भाट ने पकड़ा है और अब मैं उठ कर अपने मार्ग को जाता हूँ ॥१८०॥

मंत्रियों का हृदय कांपने लगा तथा उन्होंने कहा "हे देव! समस्त विचार क (बुरा) किया है। अपनी पुत्री को इसे देकर कुचाल मत चलिए कौड़ी के लिये देवल में मत गिराइए ॥१८१॥

हाथ ∠ हस्तिन – हाथी।

[१८२–१८३]

मयल मल्लइ देव महसो कीज बालिम राइ एक कहु दीज।
मेरी बात जिण करहु संदेहु फुड वयणु मइ भखिउ एहु॥
जइ यहु कहसइ धीय न देउ तउ यहु लयणु प्रतिउत्तर लेइ।
राजा मंतिहिं समुत्र बहाइ नयर प्रमुखी धाणु दिवाइ॥

अर्थ —वह फिर कहने लगे "हे देव! ऐसा करिये। इस कन्या को एक राजा को दीजिए। मेरी बात में आप सन्देह न कीजिए मैंने आपसे स्फुट (स्पष्ट) वचन कहा है ॥१८२॥

"यदि हे प्रभो! किसी प्रकार लड़की को नहीं देते हो तो सारा अंत पूर यह (ऐसे ही) ले लेगा (करेगा) राजा ने मंत्रियों को विदा किया और अपनी नगरी में उसने आज्ञा दिलाई (प्रसारित की) ॥१८३॥

[१८४–१८५]

मती रहे हियइ करि संक राजा कइ मनि पइठो संक।
बार बार भरण पहिराइ कोइ पति करि मंत्रियउ कालउ होइ॥
तह करावउ सीरपु पंचमु पुणइ राउ कहंत व तम्मु।
पुह वउ मालि जिणेसर तणी कुडी बात कहु तमु जायुली॥

अर्थ —मत्रीगण हृदय मे शका करते रहे तथा राजा के मन मे भी शका बैठ गयी। बार-बार मन को कोई टटोलने लगा। अत्यधिक मथने से काल कुष्ट हो जाता है ॥३८४॥

तब श्री रघु (नाम के) गधर्व ने (बौने से) कहा, "राजा पूछ रहा है (अत) तुम्हे सब कुछ कहना चाहिए, तुम्हे जिनेन्द्र की सौगन्ध है अपनी सब स्फुट (स्पष्ट) बात कहो" ॥३८५॥

[३८६-३८७]

सुणि सुणि देउ कहूं सतभाउ, कहियइ सा वसंतपुर ठाउ ।
माता जीवजस पिय खीरु, पिता जीवदेव साहस धीर ॥
एक पूतु हउ तिन्ह घरि भयउ, पुणु जिणदत्त नाम महु ठयउ ।
हारिउ सामिय जूवा दव्वु, कियउ दिसतरु चित्त धरि गव्वु ॥

अर्थ —(बौना बोला) हे देव ! सुनिए, सुनिए। मैं सत्यभाव से कह रहा हूं। "उस (मेरे स्थान) को वसतपुर कहा जाता है। जिसका मैंने दूध पीया है ऐसी मेरी माता का नाम जीवजसा है तथा मेरे पिता साहसी जीवदेव है" ॥३८६॥

"उनके घर मे मैं एक ही पुत्र हुआ, तदनन्तर उन्होने मेरा जिनदत्त नाम रक्खा। हे स्वामी ! मैं जुए मे द्रव्य हार गया, इसलिए चित्त मे गर्व धारण करके मैंने विदेश (जाने) का निश्चय किया" ॥३८७॥

[३८८-३८९]

आसा करि हउ जणियउ माइ, सो किमु छोडि दिसतरु जाइ ।
वज्र को हियउ न फाटइ देव, महु विणु बाप न जीवइ केव ॥
दीठे देस नयर बहु घणे, हूटे दीप समुद्दह तणे ।
बारह बरस दिसतरु गए, न जाणउ माय बापु कहा भए ॥

अर्थ —'मुझे मेरी माँ ने बड़ी आशाओं से पैदा किया था । उसे छोड़ कर विदेश में क्यों चला गया ? हे देव ! मेरा पत्थर का हृदय नहीं फटता है । मेरे बिना मेरे पिता भी किसी प्रकार जीवित न रह सकें ॥१८८॥

"मैंने बहुत से देश और नगर देखे तथा अनेक समुद्रों एवं द्वीपों की यात्रा की । विदेश भ्रमण करते हुये बारह वर्ष बीत गये पता नहीं मेरे माँ-बाप का क्या हुआ" ॥१८९॥

[१९० -१९१]

इहा परणी विमलामती, सिंघल दीपि सिरियामती ।
पुणि परिणिय विज्जाहरि, सो कहु लाइ आयउ चंपापुरी ॥
विमलसेठि देव तणइ विहारि भइ जु बुलाइय तीन्नि नारि ।
को तहि मरइ बहुतु कहि बत्त ते तीनिउ जु अम्हारी कलत्त ॥

अर्थ —"यहां मैंने विमलमती के साथ विवाह किया तथा सिंहल द्वीप में श्रीमती के साथ (विवाह किया) । फिर विद्याधरी स्त्री से विवाह किया और उसको चंपापुरी लाया ॥१९० ॥

विमल सेठ के जिन मन्दिर में मैंने जिन तीनों स्त्रियों को बुलाया था वे तीनों ही मेरी पत्नियां हैं" लेकिन बहुत सी बातें कह कर कौन मरे ? (कहने से क्या मतलब)॥१९१॥

१ मूल पाठ – 'भाउ'

[१९२-१९३]

जे ते वयण तुम्हारी नारि किम वरा तो मिलवहु भरतारि ।
कुवर वयणु भइ मइ तुम्हि देस इह कुइ काइ विसाहहु बीस ॥
बइ ते कहहिं हम्ह पिउ आहि बीस कुमरि जाणिउ मझु बाति ।
एक कुमरि वइ सकहिं न जाहि बीस कि तीस विवाहहु काहि ॥

अर्थ —राजा ने कहा, "हे वत्स ! यदि वे तुम्हारी पत्निया है तब (उन्हे) बैठा कर मिल क्यो नही लेते ? यदि तुम स्फुट (सत्य) वचन कह रहे हो तो इन बीस (?) स्त्रियो के साथ तुमने क्यो विवाह किया ?" ॥३६२॥

यदि वे कहेगी कि तुम हमारे प्रिय पति हो तो वे बीस (?) पत्निया किससे (कुछ) मागेंगी ? तुम जब एक स्त्री को नही दे सकते हो, तब तुमने फिर बीस-तीस (?) के साथ विवाह क्यो किया ? ॥३६३॥

देस – कहना ।

[३६४–३६५]

बोल बोल बावरण तुडि फरइ, राजा बोल तु सासइ पडइ ।
मत्री कह्यो मत्र धरि ठाणु, इव तुह एकइ कुमरि परिमाणु ॥
श्री रघुराइ पठायो दूतु, जाइ विहारहु वेगि पहूत ।
हाथ जोडि बोलइ सतभाउ, तुम्ह पुणि तिहु बुलावइ राउ ॥

अर्थ —बौना बोल बोल कर त्रुटि (भूल) कर रहा था और राजा के बोलते ही वह सशय मे पड गया । मत्री ने मत्रणा कर निश्चय करके कहा, "तुम्हे अब एक ही कन्या व्याहनी है" ॥३६४॥

श्री रघु (गधर्व) को राजा ने दूत बना कर भेजा । वह जाकर शीघ्र ही विहार (जिन-मन्दिर) मे पहुँच गया । वहा हाथ जोड कर वह सत्यभाव से कहने लगा, "राजा तुम तीनो को पुन बुला रहा है" ॥३६५॥

[३६६–३६७]

एतउ बातु सवरण जबु सुरणहि, लोभिउ राउ परपरु भरणइ ।
काऊसग्गि रहो तिह ठाइ, अछोस ताहि झाणु मणु लाइ ॥
बाहुडि दूतू न बोलइ वयणु, चवहि रण देव रण बाहहि णयणु ।
जो मइ देव बुलाई सही, तीनिउ झारण मउरण लइ रही ।

नारियो तुममे हम एक बात पूछते है । रल्ह कवि कहता है हम (इसकी बात पर) कि ये तीनो ही मेरी स्त्रिया है, प्रतीति नही करते हैं" ॥३९९॥

[४००-४०१]

विमलामती कहइ वात सुणि हो स्वामी ताता ।
यहु तउ वावणउ अइ दीणा वणउ कहइ हमारी कंता ॥
अम्ह पिउ चंगु सुगुणगुण सुठि अइ रुवडउ ।
इहु वोलइ झूठउ विरह न दीठउ दीणउ कूवडउ ॥

पुणु पुणु जो वोलइ चित्तह डोलइ अरे अचागले ।
किं वोलहि नारी भिक्खाहारी जोह आगले ॥
म्हारौ कंता जो जिणदत्ता रुवह छइ घणउ ।
तू तहु वावणु करहिउ भणु रंजावहि लोयण तणउ ।

अर्थ —विमलामती कहने लगी, "हे स्वामी और तात, वात सुनो, यह तो बौना है तथा अत्यन्त दीन वचन कहने वाला है और यह अपने को हमारा पति कहता है ? हमारा पति स्वस्थ है, पर्याप्त सद्गुणोवाला एव अत्यधिक रूपवान है । यह झूठ बोल रहा है । हमे तो विरह मे यह दीन कुवडा दीखा भी नही है ॥४००॥

तू वार-वार यही कहता है और तेरा चित्त, अरे दुष्ट (इस प्रकार) डोल गया है ? अपनी जिह्वा के अग्रभाग से ऐ भिक्षा माँग कर खाने वाले ? तू क्यो कहता है कि हम तेरी पत्निया हैं ? हमारा स्वामी तो जिनदत्त है जो अत्यन्त रूपवान है । तू तो वौना है, करही है, तथा अपनी आख एव शरीर से लोगो का मनोरंजन करने वाला है ॥४०१॥

अइ ∠ अति । करही – ऊँटनी पर सवारी करने वाला ।

[४०२–४०३]

विज्जाहरिया बोल्लइ तिरिया सो वि गुरंगु मुरिख ।
पिरथी राइ कहियउ काई (अ)पणी बात परि ।।
अम्हहु कंता तणिया बाता जाणइ सव्वहु एहो ।
यहु जाणइ पूछहि ते मिय (पु)छहु हुवइ संदेहु ।।

तुम्हि नारि निकिट्ठी तिणिउ झूठी झूठउ यहु परिवारु ।
महु मेल्लिवि पिल्लिवि अवरवि कवणुवि कहहु भतारु ।।
अरि लंपट नाइ जाइ विनाए कीरउ होहि रे विरूप ।
यह पिरथी लोए नाही कोई अम्हु पिय के रूप ।।

अर्थ —तदनन्तर विद्याधरी बोली 'हे पृथ्वीपति ! तुरन्त सुनिये । अपनी बात क्या कही जाए । यह हमारे पति की सारी बातें जानता है (या) नहीं जानता है इससे थोड़ा पूछें, जिससे संदेह मिटे" ।।४०२।।

बौने ने कहा 'तुम निकृष्ट नारियाँ हो और तीनों झूठी हो और झूठा ही यह तुम्हारा परिवार है । तुम मुझे छोड़ कर और ठेल (धकेल) कर और किसी को भर्तार कहती (कहना चाहती) हो । स्त्रियों ने कहा 'अरे लंपट तू झूठ क्या रहा है रे विरूप तू नष्ट हो इस पृथ्वी पर लोक में हमारे प्रिय के समान रूपवान कोई नहीं है" ।।४०३।।

मिय < मित – थोड़ा अल्प ।

[४०४–४०५]

तिणुपाहि बात विनंतव तणी काहे माहि नियु भडु पती ।
तुम्हारे तुम्हह पडिउ संदेहु तिहि बड बैरी कुबडो देहु ।।
हणुभु मागो दण्डो पसाउ तहि होइ जाइ मयो मायलउ ।
तुम्ह विजोग दुख करिउ पसाउ सती देह मई तोपी जाइ ।।

अर्थ —(बौने ने कहा,) "विदेश (यात्रा) की वात सुनो, ऐ स्त्रियो तुम मुझे (इस प्रकार) क्यो मार डाल रही हो (तग कर रही हो) ? तुम्हारे दु ख में मुझे सन्देह है इससे मेरी देह कुबडी हो गई है ।।४०४।।

और जब मैं अत्यधिक (दु खो की) घानी मे पड गया तो मैं बौना हो गया । तुम्हारे वियोग से अत्यधिक दु ख मे भर गया इसलिये देह जल गई और बाँह खोची (टेढी) हो गई ।।४०५।।

निसु भ ∠ णिसु भ ∠ नि – शुम्भ – मार डालना ।
घाण – घानी, कोल्हु जिसमे तिल आदि पेरे जाते है ।
पाइ ∠ पातिन – गिरने वाला ।

[४०६–४०७]

तुम्हहि सोगु दुखु भयउ महतु, वइठे जावू निकले दंत ।
परिहसु लियइ हियइ विलखातु, कहइ वावणउ हो जिणदत्त ।।
लए जु हाकट कइसे दात, सउरा ज्यों मिलवहि तू वात ।
काल्हि जु छाडि गयो रुवडउ[1], सो कि आजु भयो कूवडउ ।।

अर्थ —(बौने ने कहा,) तुम्हारे शोक मे मुझे अत्यधिक दु ख हुआ इसलिए गाल बैठ गये और दात निकल आये । हृदय परिहास के कारण विलखता रहा इसलिए जिनदत्त बौना हो गया ।।४०६।।

(स्त्रियो ने कहा,) "तुम जो हाकट (?) ऐसे दाँत लिए हुये हो, तुम सब वातें (झू ठ) मिला रहे हो । तुम कल ही (यदि) छोड कर गये थे तब तो सुन्दर थे । आज कैसे कूवडे हो गये ?" ।।४०७।।

१ मूल पाठ – कूवडउ ।

हुम्पा सेठ की कथा

[४ ८–४ ९]

झूठी भईम तिरिय महु कयहु मेरे बोल न तुमि पयहु ।
पड़े उघाड़इ सह सबु कोइ सपे बुधा कहि मोलउ होइ ।।
णिसुणि बावले हीरए मजाएउ हुपा सेठिणि बसइ पइठाण ।
असी कोडि घर द्रम्म अपार घाडि कोदइ करइ अहार ।।

अर्थ —(बौने ने कहा) हे स्त्रियों ! तुम झूठी होकर इस प्रकार दुःख (शोक) कर रही हो । मेरी वाणी पर तुम विश्वास (?) नहीं करती हो । उघाड़े पड़ जाने पर सभी हँसते हैं लगा कह कर मनुष्य भोला बनता है ।।४ ८।।

(स्त्रियों ने कहा) "ओ हीन और अज्ञान बौने सुन । एक हुम्पा नाम का सेठ प्रतिष्ठान में बसता था । उसके घर में अस्सी करोड़ अपार द्रव्य था किन्तु वह स्वयं तो घटिया चावलों का आहार करता था" ।।४ ९।।

[४१०–४११]

तीनि नारि तहु खरी गुणेगु रूप विज्जाहरि सुहु सुअंगु ।
हुपा सैठि चलि बणिजहु गयउ पूत एकु घरि पइठउ आइ ।।
घमु उपारि तेन विहूचउ आगुएउ हुपा सैठि सो भयउ ।
सेत पटोली मुंकित सिरी तीनिउ आनि त सोवे खरी ।।

अर्थ —उसके तीन स्त्रियां अत्यधिक गुणवती थी । रूप में वे विद्याधरी जो थीसी अत्यधिक सुन्दर थी । जब हुम्पा सेठ उठकर व्यापार के लिये (विदेश) गया तो वहां एक धूर्त आया ।।४१ ।।

उसने (सारे हु

और आप हप्पा सेठ बन गया। उसकी दी हुई पटोली (रेशमी साडी) को लेकर वे स्त्रिया अति प्रसन्न हुई और (उसके साथ मे) आकर तीनो ही (स्वर्ण से) लद गई ॥४११॥

[४१२–४१३]

माडे दूध निवात सजोइ, घिउ लापसी कलेऊ होइ।
केला दाख छुहारी खीर, खाँड चिरौंजी नितु दुख हरी॥
दाडिव विरसोरा वहु खाज, विलसहि राणी जइसे राज।
फूल तबोल कपूर बहुत्त, अइसो भोग करावइ धूत[1]॥

अर्थ —उन्होने दूध और नवनीत सजोकर मांडे तथा घी और लापसी का कलेवा होने लगा। केला, दाख, छुहारा, खीर, खाड और चिरौंजी नित्य दुख हरने लगे। दाडिम, विजौरा आदि बहुतेरे खाद्य से राणी और राजा की भाँति वे विलसने लगे। फूल, पान, कपूर आदि का इस प्रकार वह धूर्त बहुत उपभोग कराने लगा ॥४१२–४१३॥

१ मूल पाठ–दूत

[४१४–४१५]

घाठि कोदई जले जु गात, छाडी हप्पा सेठि की वात।
जिण वाहुडि आवइ करतार, सब शुख पुरए ए जु भत्तार॥
धूतह दीन्यो वरखु अघाइ, राजा कुल वालउ अपनाइ।
वरिस विण्णि दह वणिजह गए, पाछै बेटा बेटी भए।

अर्थ —किन्तु घाठी (अथवा घटिया) और कोदई [कोदव] [खाने मे] उनका गात्र जल गया तो उन्होने हप्पा सेठ की वात छोड दी। स्त्रियां कहने लगी, "हे भगवान हमारा भर्त्तार वापस न आए, यही हमारा भर्त्तार है क्योकि इसीने हमारे लिए सब सुख पूरे कर दिये हैं ॥४१४॥

उस धूर्त ने उन्हें अपार द्रव्य दिया। हे राजन्! उन बालाओं ने उसको अपना लिया। [सेठ के] वाणिज्य के लिए बारह वर्ष तक चले जाने के बीच उसके बेटा बेटी हो गए ॥४१५॥

[४१६–४१७]

बरिस बारह आयउ जबह घर की विवस्था दीठी अवर ।
लइय बहोडे भेटइ जबह राउ मह घर बस्तइ दीन्यो काहि ॥
तबहि नरिंद बात हसि कहइ बात एक कउ कारणु कहइ ।
हुम्पा सेठि बहु अचरज आपु, बेटा बेटी केरउ बापु ॥

अर्थ —जब बारह वर्ष पर सेठ घर लौटा तो उसे घर की व्यवस्था दूसरी ही दिखाई पड़ी। बहोडे [?] लेकर जब उसने राजा से भेंट की तो कहा 'मेरा घर तूने किसको दे दिया?" ॥४१६॥

तब राजा ने हँस कर कहा "एक बात का कारण बता। यह अन्य व्यक्ति भी अपने को हुम्पा सेठ और बेटे बेटियों का बाप कहता है" ॥४१७॥

[४१८–४१९]

हुम्पा सेठि मन विलखौ भयउ धुणइ धुणाइ करि उठि गयउ ।
नियम विरह न जाणइ जाणए कूणह दिन्ह राइ की आण ॥
रिवमणि चमकि गयौ सो तिरथु जरपइ सिंहासणु हुई थिरु ।
हाथ जोरि तिनि विनयो जाइ जह पहु दीनह करहु पसाउ ॥

अर्थ —वह हुम्पा सेठ मन में दुःखित हुआ और सिर को धुनाते हुए उठ कर घर को चला गया। इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नहीं जानता था किन्तु उसने तो धूर्त का राजा की दुहाई दिलाई ॥४१८॥

अपने मन में चौंक कर वह (हुम्पा सेठ) वहाँ गया जहाँ नरपति का

सिंहासन था। हाथ जोड कर उसने राजा से विनती की, "प्रभु, दीन पर कृपा करो" ।।४१९।।

[४२०-४२१]

तीनिउ नारि बुलावहु जाणि, सभा माहि वइसारहु ताणि ।
कहहु वात्त फुणि तुम्ह घरि जाइ, सभा मह दुमह कवण तुम्हारउ णाहु ।।
किंकरु लेण ताह पेठियऊ, लइ आइसु सुह कारण गयऊ ।
तिहू नारि सिउ आवइ तित्थु, पुहिमु णाहु निय मन्दिर जित्थु ।।

अर्थ —(राजा ने आदेश दिया) "तीनो स्त्रियो को बुलाओ तथा उन्हें सभा मे बैठाओ और तुम उनके घर जाकर कहो कि सभा मे बताओ कि दोनो मे से तुम्हारा कौनसा पति है" ।।४२०।।

उन्हें ले आने के लिए उसने किंकर भेजे। (किंकर) आदेश लेकर शुभ कार्य के लिए गया। तीनो नारियो के साथ वह वहां आया जहा पर राजा (पृथ्वीपति) का निज मन्दिर था ।।४२१।।

[४२२-४२३]

धुतह हाल्डोरु परठइय, चडिवि सुखासणि रावलि गइय ।
पूछइ राउ हियइ वियसंतु, दूमहि कवणु तुम्हारो कंतु ।।
णिसुणि वयणु मुह जोयउ तासु, जिसको करतउ सेठि विसासु ।
जेठी घरणि वोलइ तहा, णावइ सभा वइठउ जहा ।।

अर्थ —धूर्त को लिवाने के लिये हाल डोल भेजा और वह सुखासन (पालकी) मे चढकर राज-भवन गया। राजा मन मे हँस कर (स्त्रियो ने) पूछने लगा, "दोनो मे कौनसा तुम्हारा स्वामी है?" ।।४२२।।

इन वचनो को सुनकर उसने उस राजा के मुँह की ओर देखा।

स्त्रिया कु भीपाक नर्क मे जा पडी । झूठ बोलकर वे नर्क गई । हम उन स्त्रियो की माति (नही) हो गई हैं ? ॥४२७॥

[४२८-४२९]

भणइ वावणउ तुम्ह अलिय म चवहु, जैसे होइ तुम्ह पिउ तेसौ मुहि करहु ।
लछण बत्तीसह चरिचिउ अगु, रूप देखि मोहियइ अनगु ॥
सिरु थापियो पटोलो छालि, (विज्जा) वहु रूपिणी सभालि ।
छाडो वावण कला हीणगु, भयो जिणदत्त सामले अगु ॥

अर्थ —उस बाने ने कहा, "तुम झूठ मत बोलो जैसा तुम्हारा पति था वैसा ही मुझे करदो ।" उसका शरीर बत्तीस लक्षणो से युक्त हो गया जिसे देखकर कामदेव भी मोहित हुआ ॥४२८॥

उसने अपना शिर रेशमी वस्त्र डाल कर ढक लिया तथा बहुरूपिणी विद्या का स्मरण किया । हीन अग बौने की कला छोड दी, तब जिनदत्त सावले शरीर का हो गया ॥४२९॥

अलिय ∠ अलीक-असत्य ।

[४३०-४३१]

सीस उघाडि घालियउ रालि, मोही सभा सयलु तिहि काल ।
तिहु नारिस्यु कहइ हसतु, इचहु हु ति तुम्हारउ कतु ॥
देखि तिरी ते अचरिजु भयउ, चाहहि निरखहि ते विभई ।
अपरपर ते कहइ जोइ, किछु किछु होइ किछूरनि होइ ॥

अर्थ — शिर उघाड करके तथा पैरो मे राल (रग) डालकर (वह आया) तो उस समय उसका रुप देखकर सारी सभा मोहित हो गई । उसने तीनो स्त्रियो से हँसते हुये कहा, "अब मैं तुम्हारा पति हूँ ॥४३०॥

यह देखकर तीनों स्त्रियों को आश्चर्य हुआ तथा विस्मित होकर वे उसे ध्यान पूर्वक देखने लगी। वे परस्पर कहने लगी (हमारा पति) तो यह है कुछ कुछ है और कुछ कुछ नहीं है (ऐसा विचार करने लगी) ॥४११॥

[४१२-४१३]

विज्जाहुरिय कहुत हुइ बात संभलि पुहुम तणु मुहु बात ।
यहु विज्जा खेलहु बावलउ हेम पिउ देव नहीं सावलउ ॥
पुणु पच्चखु भयो जिणदत्तु, बत्तीसह लखण संजुत्तु ।
छाडी सावल वण्णी छाय भई देह सोने की काय ॥

अर्थ—विद्याधरी बात कहने लगी। हे पृथ्वीपति ! उस की बात को स्मरण कर। यह बावला तो विद्या के खेल खेल रहा है हमारा पति तो है देव ! सोने का सा है। सांवला नहीं है ॥४१२॥

तब जिनदत्त प्रत्यक्ष हो गया तथा वह बत्तीस लक्षणों वाला था। सांवले वर्ण की छाया छोड़ दी और उसकी देह सोने की काया हो गई ॥४१३॥

] ४१४-४१५]

विमलामती काए लाडि पाई सिरियामती पाय वालई ।
विज्जाहुरि लागी पठि बाहु प्रबहु छाडी जाही जिणणाह ॥
पैठी बोलइ मोहि छाड़ि देवल बइठ दूजी बोलि मोहि मैलि सायर चडिइ ।
तीजी बोलइ छाँडि गयउ गुरुंगु, बिन पिय समतहु कहिह को बात ॥

अर्थ — विमलामती दौड़कर उसके कण्ठ (गले) से लिपट गई तथा श्रीमती ने उसके पांव पकड़ लिये। विद्याधरी उठ कर उसकी बांह से जा लगी और कहने लगा अब आप हे नाथ ! छोड़कर न जाएं ॥४१४॥

कहने बड़ी बोली कि मुझे [illegible]

बोली "मुझे छोड कर ये समुद्र मे कूद पडे थे। तीसरी ने कहा 'मुझे सोती हुई छोड कर ये तुरत चले गये थे। हे प्रिय! क्या कल की बातो का स्मरण है? ।।४३५।।

[४३६–४३७]

इहा सयल भोग महि रहिउ, बारह बारिस कष्ट तुम सहिउ ।
एह बोलु मति बोलहु झूठ, तुम्हहि कष्टु हमुहि कि मुख दीठु ।।
तब जिनदत्त कहइ सतिभाउ, तुम्हहि दुख सु दरि वहि जाउ ।
पाछइ कष्टु गयो फुडु कालु, अब सुख राजु करहु असरालु ।।

अर्थ — (स्त्रियो ने कहा) "यहाँ तो हम सकल भोग भोगती रहे और तुमने बारह वर्षो तक कष्ट सहे। इस प्रकार झूठ मत बोलो, तुम्हारे कष्ट क्या हमे तुम्हारे मुख पर दिखाई दे रहे हैं? ।।४३६।।

तब जिनदत्त ने सत्यभाव से कहा, "हे सुन्दरियो, तुम्हारा दुख बह जाए (नष्ट हो)। कष्टो का स्फुट काल अब पीछे चला गया (लद गया)। अब तुम निरन्तर सुख का राज्य करो ।।४३७।।

[४३८–४३९]

जिनदत्त तिरियनु मेलउ भयो, चिर भवियउ पाउ वहि गयो ।
हरस्यो विमल सेठि तिह ठाइ, सइ राजा उठि लागिउ पाइ ।।
णरवइ सभा अचभो भयो, जिणदत्त कीरति दह दिह गयऊ ।
चउसय तीसा चौरही, पडिय राइसीह णिरु कही ।।

अर्थ —जिनदत्त और स्त्रियो का मिलन होगया तथा उन भविको के चिरकाल के पाप दूर हो गये। विमल सेठ उस स्थान पर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा सब राजा के चरणो से लगे ।।४३८।।

राजा की सभा को आश्चर्य हुआ तथा जिनदत्त की कीर्ति दसों दिशाओं में फैल गई । पंडित राजसिंह ने ये बारसौ तीस चौपाइयां कही ॥५३९॥

मखिम ∠मखिक – मुझसे– आकाशी मुमुक्षु

[५४ -५४१]

भएाइ राउ यहु किमु सलहियइ आसे चरित नु कयरसु किए ।
इसहि नु बर्न्न सके सरसुती भणइ रल्हु यहु कैसी मती ॥
हकराय‍उ जो जोइसी सुजाणु जो जोइसु को मुणइ ममाणु ।
पूछइ राउ भले चित्त समुणु सीघर¹ बिप्र धरहि शुभ लग्नु ॥

अर्थ — राजा कहने लगा "इसकी किस प्रकार प्रशंसा की जाए ! ऐसे चरित तो विद्याधरो में ही किये हैं । इसका वर्णन केवल सरस्वती ही बखान कर सकती है । रल्ह कवि कहता है 'मेरे में कितनी बुद्धि है ? ॥५४ ॥

राजा ने चतुर ज्योतिषी को बुलाया जो ज्योतिष का प्रमाण किया रता था । राजा ने प्रसन्न चित्त होकर उससे शकुन पूछा और कहा हे विप्र शीघ्र ही लग्न रखो ॥५४१॥

खयर ∠खचर– विद्याधर
सीरम ∠शीघ्र १ मूलपाठ सीरम

[५४२-५४३]

कहइ जोइसिउ लागी रीती अपरंपर इनु बहुत वरीति ।
हउ आवउ जोइस को भेउ तुम्ह को पूतह देव अभेउ ॥
मोमूनक लाइउ रोपिमउ भली वार दिन लोई मंडिउ ।
चउरी रई धरे हरे बांस तोरण बांधे फूल (पुष्प) कलाल ॥

अर्थ —ज्योतिषी ने कहा, "लाणी की रीति के अनुसार इन दोनो मे आपस मे बहुत प्रीति होगी। मैं ज्योतिष का भेद जानता हूँ, तुम्हारे ऊपर अलेप (वीतराग) देव प्रसन्न हो गये हैं। ॥४४२॥

गोधूलि मे विवाह निश्चित किया और जो अच्छा वार एव दिन था वही कहा गया। गहरे हरे बासों की चौरी रची गई तथा पूर्ण कलश की स्थापना करके तोरण (लगाये गये) ॥४४३॥

लाण — ग्रहण स्वीकार

जिणदत्त का चतुर्थ विवाह

[४४४-४४५]

बाजे पंच सबद गह गहे, ठाठा लोउ मिलि सबु रहे।
कण्ण दिण्णु केकिउ बइसारि, परिणाई विमलामइ नारि॥
नीलामणि मरगजमणि ऊज, पउमराइ[1] मणि अनुबइ दूज।
चन्द्रकंति मुत्ताहल भणे, ते सहु दिण्ण दाइजो घणे॥

अर्थ — जोर जोर से पाँच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा लोग उठ कर एक स्थान पर मिले। उसे केकिइ (घोडे ?) पर बिठाकर कर्ण दिया (?) तथा विमलामती नारी जिनदत्त को व्याह दी ॥४४४॥

नीलमणि, मरकतमणि, चमकती हुई पद्मरागमणि तथा वैडूर्य, चन्द्रकांत एव जो मुक्ताफल कहे जाते हैं उन सबको उसने डायजे (दहेज) मे दिया ॥४४५॥

१ मूलपाठ "मउमराइ"

[४४६-४४७]

साहणु वाहणु देस कुछार, अर्थ द्रव्य अफो भडार।
छत्ता लंय चमर बहु आपि, चाउरंग बल दीनिउ थापि॥

चारौं तिरिय बुलाई पास पुणु विमाणि चडियो गए आस ।
पालिवि अरथु रयणु सबु लयो, उप्पइवि सायरदत्त सिगु गयउ ॥

अर्थ — राजा ने आसन वाहन तथा कुठार देश दिये तथा अर्थ (द्रव्य) का तो भण्डार ही दिया । छत्र चंवर (दण्ड) चमर आदि बहुत सी वस्तुयें दीं तथा चतुरंगिणी सेना भी उसको (दीप) दी ॥४४६॥

तब जिनदत्त ने चारों स्त्रियों को बुलाया और अपनी माता के साथ उन्हें विमान पर चढाया । उसमें अर्थ तथा रत्न आदि सब डाल लिये और गुप्त होकर वह सागरदत्त के पास गया । ॥४४७॥

आलंब ∠ आलम्ब – आश्रय आधार
रूपय ∠ आरूप– गुप्त होना

[४४८–४४९]

सायरदत्त जब दीठउ जाइ, गलिय नाक अति अय पुण पाइ ।
कुसिउ अंगु पीव की गंधि लागी पापी बहु कुष्ठ व्याधि ॥
सायरदत्त मरि नरयह गयउ द्रव्य आपुणौ जिणदत्तु लयउ ।
ले धणु चंपापुरि सो गयउ पुणु घरि चलिवे कौ मनु भयउ ॥

अर्थ — जब उसने जाकर सागरदत्त को देखा तो उसका नाक गल गया था एवं पाँव सड गया था । उसके सभी अंग कुपित हो गये थे तथा पीव की दुर्गन्धि आ रही थी क्योंकि उस पापी को कुष्ठ रोग लग गया था ॥४४८॥

सागरदत्त मर कर नर्क गया । जिनदत्त ने अपना द्रव्य उससे ले लिया । वह धन लेकर चंपापुरी गया तथा अपने घर जाने की उसके मन में इच्छा हुई ॥४४९॥

१ मूलपाठ (गयो)

[४५०-४५१]

(सम) द्यौ राउ अंतेउर घणी, समद्यउ विमल विमला सेठिणी ।
समद्यउ नायरु नयरु को लोग, जिणदत्त च(लइ) करइ जणु सोगु ।।
लए तुरग मोल दह लाख, मइगल छ - सहस्त्र करह असख ।
सहस बत्तीस जोडरिण चाउरगु बलु बलु दीन पवाणु ।।

अर्थ — (जिनदत्त को) राजा के अन्त पुर ने सघन रूप से विदा दी । विमल सेठ एव विमला सेठाणी ने भी उसे विदा दी । नगर निवासियो ने विदा दी तथा (ज्योही) जिनदत्त चला लोग शोक करने लगे । ।।४५०।।

उसने दश लाख के घोडे, छह हजार मदगलित हाथी तथा असख्य ऊँट मोल लिये । बत्तीस हजार । इस प्रकार उसने अपनी शक्ति प्रमाण चतुरगिनी सेना जोड ली (इकट्ठी करली) ।।४५१।।

नायर — नागर

[४५२-४५३]

पाइक धाणुक हइ दह कोडि, पयदल चलिउ रायसिंहु जोडि ।
छत्तधारि वुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असख रावत दल माहि ।।
जिणदत्त चलतहि कपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी ।
हाकि निसाण जोडि जणु हुणे, अपुनइ देस पलाणे घणे ।।

अर्थ — पैदल एव धनुर्धारी दश करोड थे । रायसिह कवि कहता है, वह सेना जोड कर पैदल चला । जिनके छत्रधारी राजा पावो मे गिरते थे, ऐसे रावत दल में असख्य राजा थे ।।४५२।।

जिनदत्त के चलते ही पृथ्वी कापने लगी । इतनी धूल उठने लगी कि सूर्य नही दिखने लगा । जब समस्त निशानो को जोड कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वत ही अपने देश भाग गये ।।४५३।।

पोलि ∠ प्रतोली – मुख्य द्वार।
ढोकुली–गोफणी – पत्थर फेंकने के यंत्र।
सीस – शीर्षक – शिरस्त्राण।

[४५८–४५६]

कोट पा (उ)त्तग अगार, परिखा पूरिय जलह अपार।
गढह सेप परिजा आकुली, वाडा लेहि छत्तीसह कुली॥
चंदसिखर (वो)लइ जु पचारि, राखहु गढ खांडे की धार।
जव लगु मोहि पासु वोइ वांह, को चापिहइ कोट की छाह॥

अर्थ—कोट के (पास?) ऊंची प्राकार थी। परिखा (खाई) को अपार जल से भर दिया गया। शेप प्रजा गढ मे व्याकुल थी और छत्तीसो कुली (जाति) के लोग वाडा ले रहे थे (अंदर से घरो को वद कर रहे थे या सुरक्षित थे) ॥४५८॥

(वहाँ का राजा) चंद्रशेखर ललकार कर कहने लगा। गढ की रक्षा भी तलवार की धार पर करो। जव तक मेरे पास दो हाथ हैं तव तक कोई (परकोटा–किला) की छाया पर भी पैर नही रख सकता है। ॥४५६॥

[४६०–४६१]

पूर्व प(उलि) राइ सइ राख, परिग्गहु भड खत्रीहि असंख।
दक्षिण पउलि चडइ सुहणालु, जो परिमंडल दल खय कालु॥
(उत)र पउलि निकुंभ चदेल, जे अगिलेह ण मानहि गेल।
पछिम दिस जाय वभड वडहि, पइतव जदुहव रहि॥

(चारो दिशाओ मे मोर्चा वन्दी की गई) पूर्व की पौल की रक्षा

राजा ने स्वयं अपने ऊपर ली जिस पर असंख्य क्षत्रियों का मुख्य वर्ग नियुक्त हुआ। पश्चिम पौल के ऊपर सुरंगें (तोपें) चढ़ने सभी जो शत्रु-सेना-मर्दन के लिए यम-काल स्वरूप थी। ॥४६ ॥

उत्तर पौल पर निकुंभ चंदेल खड़े हुये जो यम को मार्ग देने को तैयार न थे। पश्चिम दिशा की ओर यादव भट पड़ रहे (?) थे जो कि वज्र पड़ने पर भी [नहीं जमे] रहते थे ॥४६१॥

[४६२-४६४]

अवरु असंखइ बहुतइ मिलिय रखहिं गढु छत्तीसउ कुलीय।
चंदसिखिर किउ मंतु तुरंतु, काहि (दूत) किन पूछहु बातु॥
मंती महामंत हकराइ उत्तरि राजा बात कराइ।
अहो मंत तू भेटहि जाइ किहु कारणि म[illegible] आइ॥
पाहुडु समद रतनु भरियाणु, भेटहि चालिउ हुउ पुहिराणु।
अवरु गंधवह लइय हकारि, जिणदत्तहु कटक मझारि॥

अर्थ— और भी बहुतेरे असंख्य (योद्धा) मिल गये और छत्तीसों कुली (जाति) गढ़ की रक्षा करने लगी। शीघ्र ही चन्द्रशेखर ने मंत्रणा की। (उन्होंने कहा) दूत भेजकर क्यों न पूछो कि क्या बात है? ॥४६२॥

राजा ने मंत्रियों तथा महामंत्रीयों को बुलाया तथा अवसर (राज सभा) में बात कराई। (राजा ने मंत्री से कहा) 'अहो मंत्री उससे जाकर भेंट करो और पूछो कि किस कारण वह आया है? ॥४६३॥

पाहुड (उपहार) के रूप में रत्नों को थाल में भर कर और वह पुहिराण दूत भेंट करने के लिये चला। गन्धर्व जनों को और बुला लिया वह जिनदत्त की सेना में चला गया ॥४६४॥

उसर ∠ ओसर ∠ अवसर – राजसभा

पाहुड ∠ प्राभृत – उपहार

चन्द्रशेखर राजा के दूत की जिरणदत्त से भेंट

[४६५–४६६]

जाइ पहुत्तउ सिंह उवारि, हाकिउ करणइ दड परिहारि ।

को तुम पूछइ कह तुरतु, जइसइ राउ जरणावउ वत्ति ।।

इहा जु चदुसिखरु भडराउ, तुहि वरु मागइ भेंट पसाइ ।

सीलवत गुरण गरणह सजुत्त, हउ तहु केरउ आयउ दूतु ।।

अर्थ —वह सिंह - द्वार पर जाकर पहुँचा तो प्रतिहारी ने स्वर्ण-दड हाँका (हिलाया) । उसने दूत से पूछा, "तुम कौन हो शीघ्र बताओ जिससे मैं राजा के पास जाकर बात बताऊँ । ।।४६५।।

(दूत ने कहा), " यहाँ जो चद्रशेखर नामका भट (योद्धा) राजा है, वह आपसे भेंट की कृपा चाहता है । वह शीलवान एव गुणो से सयुक्त है, मैं उसका दूत आया हूँ ।।४६६।।

[४६७–४६८]

भीतरि वात कहहि पडिहार, सिरघ राइ जरणावइ सार ।

पाहुड ल वहु रयरण अहइ, पूछिउ चदसिखर वहु कहइ ।।

आणि भिटावहि वोलिउ राउ, गउ पडिहारु दूतु के ठाउ ।

राजा तुम्ह कउ कियउ पसाउ, भीतरि दूतु अवधारहु पाउ ।

अर्थ — प्रतिहारी ने भीतर (जाकर) बात कही तथा शीघ्र राजा को बात बता दी । वह बहुतेरे रत्न उपहार-स्वरुप लिए हुए है, और मैंने पूछा तो वह अपने को चद्रशेखर राजा का (दूत) बतलाता है ।।४६७।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा उसे लाकर मिलाओ। प्रतिहार दूत के स्थान पर गया और कहा 'राजा ने तुम पर कृपा की है। हे दूत तुम भीतर पधारो ॥४६८॥

पाहुड ∠ – उपहार। सीरष ∠ शीश

[४६९]

भीतरि दूतु गयउ सुहिराणु, आणिउ परिउ रयण भरि थालु।
दीठउ दूतु राउ तिहि ठाउ दैवि सीसु करि नमियउ पाउ॥

अर्थ —सुहिराण (नाम का वह) दूत भीतर गया और (जिनदत्त के) आगे रत्नों का भरा हुआ थाल उसने रख दिया। दूत ने राजा को वहाँ देखा तो उसे विश्वास दिलाकर उसने (राजा के) चरणों को स्पर्श किया ॥४६९॥

[४७०]

वस्तु बंध

दूतु पयसइ णिसुणि णरणाहु।
की परिजा पंडियइ काइ देव पर पलइ कीजइ।
काइ नयर चउदिसिहि दिस रहिउ कालु उवरि देव कोपु कीजइ॥
तुम समरहि अधिकउ का सीमा अम्हि जिणि हीण।
भणइ दूत तए णरणाह फुडु भेउ बंध हइ लीणु॥

दूत कहने लगा 'हे नरनाथ सुनो। हे देव आप क्यों प्रजा को नष्ट कर रहे हैं और किस कारण पर में प्रलय कर रहे हैं? किस कारण नगर के चारों ओर आपने घेरा डाला है? और किस के ऊपर हे देव! आप कोप कर रहे हैं? यदि हम आपसे लड़ें तो हे स्वामी! हम धन बल से विहीन हैं। दूत ने कहा हे नर नाथ! इसलिये मैं स्फुट रूप से स्पष्ट बंध भेदकर कर कहिये। ॥४७० ॥

पलइ ∠ प्रलय। उवरि–ऊपर

[४७१-४७२]

भणइ दूत णरणाह सुणेहि, परजा वध म अपजस लेहि ।
महि सिहु जूझु समरि हुइ काहि, लेहि दडु सामिय घरि जाहि ।।
ण लिउ दड णु देस कुठारु, ना लिउ सहणु अरयु भडारु ।
तुम्हरइ णयरु जि वणिवरु आह, सो मोहि देउ जीउदेव साहु ।।

अर्थ — दूत ने कहा, "हे नरनाथ ! सुनिये प्रजा को वाघ कर अपयश न लीजिए । मुझ से युद्ध मे लडने मे क्या होगा । हे स्वामी ! (आप) दड लेकर घर जाइए ।।४७१।।

(जिनदत्त ने कहा,) "मैं दड नहीं लूगा न देश कोठार (खजाना) लूगा और न मैं महन तथा अर्थ भण्डार लूगा । तुम्हारे ही नगर में जो वणिकवर है उम जीवदेव साहु को मुझे देदो" ।।४७२।।

[४७३-४७४]

धम्मनिहाणु जीवदेउ सेठि, अरु नित नवइ पच परमेठि ।
नयरहि मडणु सुद्ध सहाउ, पणतसु जियत न अप्पइ राउ ।।
भणइ राउ किम पहिले चऊ, आजि[1] जु नयरहि कुइ लावऊ ।
आजु ण सेठि आउ मो ठाउ, कलिह नयरि करु बांधउ राउ ।।

अर्थ — (दूत ने कहा) "वह जीवदेव मेठ धर्म निधान है तथा नित्य प्रति वह पच परमेष्ठि को नमस्कार करता है । वह नगर का मडन और शुद्ध स्वभाव का है पर उमे राजा जीते जी नही अर्पित करेगा । ।।४७३।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, फिर पहिले कैसे कहा ? । आज उसे नगर मे कोई लाओ । यदि आज मेठ मेरे स्थान पर नही आया तो कल नगरी और राजा को बांधूगा ।।४७४।।

नयरी∠नगरी   १ मूलपाठ 'कानि'

लापड∠लपट । के ∠कियत– कितना

[४७९–४८०]

साचउ चद सिखर वड लवइ, वरु किनु नयरह कुइला ववइ ।
वरु किनु देसु निरालउ जाल, सेठि अफि जीवइ कइ काल ।
ल रहे सेठ जइ जाएा, तेउ सेठिणि सिहु कहइ नियाएा ।
रायण्हु मरणु ठाणु छइ भयउ, कारणु तिन्ह रणु माडियउ ।।

अर्थ —चन्द्रशेखर वहुत सत्य कह रहा था, भले ही क्यो न नगर मे कुचला वोदे और भले ही क्यो न देश मात्र को जला दे, सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ! ।।४७९।।

जव यह सेठ को ज्ञात हुआ तव वह सेठानी से निदान कहने लगा। "राजा का भी मरने का समय आगया है, कारएा यह है कि उन्होंने (शत्रुने) युद्ध की तैय्यारी की है" ।।४८०।।

लव ∠ लय – कहना, वोलना,

जीवदेव जिनदत्त मिलन

[४८१–४८२]

पुगु जीवदेउ कहत हियइ ए वयएा, पूत सोगु हम फूटे णयण ।
(सुत) विदेसु हमु आयो मरएा, सेठिएा देइऐ कउ करणु ।।
भणय सेठि रे वइय निकिठ, एक वार जिणदत्त न दिठ ।
तवु सेठिणि समुझावएा लियउ, करि अवसाएा एाह दिठ हियउ ।।

अर्थ — फिर जीवदेव अपने हृदय में यह वचन कहने लगा, "पुत्र के शोक मे हमारे नयन फूट गये हैं। पुत्र जव विदेश मे है तव हमारी मृत्यु आई है, सेठानी देखो अव क्या करना चाहिये" । ।।४८१।।

सेठ ने (फिर) कहा 'दैव ही बड़ा निकृष्ट है जसने एक बार भी जिनदत्त को नही दिखाया। तब सेठानी उसको समझाने लगी "हे नाथ भगवान के समय हृदय को दृढ करो ॥४८२॥

[४८३–४८४]

रुवइ इ ... सामिय पुतु तसाउ भवमु निवेदिउ जिउ धापुलउ।
अब जिन सरणु अवरु नहीं कोइ जो भइ सो सामिय होइ॥
फुरइ लयणु भव विणु गहगहइ आगउ पुतु भायमणु कहइ।
पर (इह) संकट दीसइ सोइ जो भावइ सो सामी होइ॥

अर्थ — "हे स्वामी (अपने दोनों) का पुत्र टूटा हुआ है (दूर हुआ चाहता है) मैं अपना जी (विचार) प्रकट निवेदन करूँगी। अब तो जिनेन्द्र भगवान के अतिरिक्त कोई शरण नही है। हे स्वामी! जो (भगवान) न देखा है वही होगा" ॥४८३॥

"आँखें फड़कती है तथा चित गद्गद (पुलकित) हो रहा मानो यह सब पुत्र-आगमन कह रहे हो। किन्तु सामने यह संकट दिखता है इसलिये जैसा परमात्मा को स्वीकार होगा हे स्वामी! वैसा ही होगा ॥४ ४॥

[४८५–४८६]

हमु कारनि ए मारवइ लोगु मरइ पुतु भ घरि सोगु।
इम चितेवि दुखिहि संजायु, ले विणु बालिम पर वल पायु॥
तैसिहि बालित पु इ राउ नवर लोगु चित भयउ विसमाउ।
तैहि संघात बहुत जण चलहि पुनु जिनदत्त कटक महसरइ॥

अर्थ — "हमारे कारण लोगों को न मत (न) मारे। (क्योंकि जिसका) पुत्र मरा (उसी के घर में शोक हुआ। इस प्रकार चिन्ता

करते हुए दोनों दुविधा में पड़े। शत्रु की सेना के पास (लिए जाने) के लिए चले ॥४८५॥

सेठ के चलने समय राजा नगर के लोगों के भी चित्त में विस्मय (दुःख) हुआ। सेठ के साथ बहुत से व्यक्ति चले और फिर वे जिनदत्त की सेना में प्रविष्ट हुए ॥४८६॥

मूलपाठ 'सागरदत्त'

[४८७-४८८]

सावधाण किउ दिढु चितु सेठि, लागिउ सुमरणि मणु परमेठि ।
इहि (उव?) सग्गहि जइ उवरहि, तउ आहारु तवहु कि करहु ॥
पइठिउ कटकहु वहू जण सहिउ, णइ जाइ राइ सिउ कहिउ ।
तउ जिणदत्तु भणइ मुहु जोइ, वहुले मिलियउ आवइ ॥

अर्थ —सेठ ने अपने चित्त को सावधान एव दृढ किया तथा पच परमेष्ठि का मन मे स्मरण करने लगा। (उसने सकल्प किया,) "यदि इस उपसर्ग से मैं उवर जाऊँगा तो मैं किसी तपस्वी को अवश्य अहार दूँगा" ॥४८७॥

बहुत से व्यक्तियो के साथ वह सेना मे गया और वहाँ जाकर राजा से निवेदन किया। फिर जिनदत्त उसका मुख देखकर कहने लगा, "बहुत से व्यक्ति मिलकर मिलने आए है" ॥४८८॥

[४८९-४९०]

जो हइ सेठि धम्मु कौ निलउ, सो यहु गीवदेउ कुलतिलउ ।
भणइ राउ महु जो वत काइ, वापु माइ जिहि आवतु पाइ ॥
नेत पटोली पथ पसारि, आवइ सेठि अवरू तहि नारि ।
सिंहासण दुइ रयणह जडिय, यइसइ आणि सेठि कहु धरिय ॥

अर्थ —"आ सेठ धर्म का नियम है यह जीवदेव जो कुल का तिलक है यही है। राजा ने कहा "मेरे जीते होने से क्या हुआ यदि मेरे माँ बाप पैरों (पैदल) आरहे हैं? ॥४८९॥

मार्ग में उसने नेत्र तथा पटोली (दो प्रकार के रेशमी वस्त्र) फैलाये क्योंकि वहां सेठ तथा उसकी स्त्री आ रही थी। रत्नों से जड़े हुए दो सिंहासन भी उसने सेठ (तथा सेठानी) के बैठने के लिए ला रक्खे ॥४९०॥

[४९१-४९२]

जाइ पहूते राइ अथाण बोलत बोल न कांमहि काम।
ता जिणदत्तइ पुछण लाए, काहे सेठि मउण लइ रहे॥
इहु परदेश निरंजण जाणु अणसण लगु हुइ समउ अथताणु॥
इक दुख दुज्जउ तुम्ह मांगियउ जाणु जाणि मउणव्वउ लियउ।

अर्थ —वे राजा के आस्थान (सभा मंडप) पर पहुँचे किन्तु मर्यादा ही मर्यादा में (रहने के कारण) वे कुछ नहीं बोले। इससे जिणदत्त पूछने लगा हे सेठ! तुमने मौन क्यों ले रखा है"? ॥४९१॥

सेठने कहा– इसे निर्जन प्रदेश जानो और अनसन (उपवास) होने का कारण मैंने अवसान ले लिया है। एक सुत का दुःख है और (दूसरे) तुमने हमें मांग भेजा है, अतः उपसर्ग समझ कर हमने मौन व्रत ले लिया है ॥४९२॥

अथाण — आस्थान – आस्थान – मंडप अथाई।

[४९३-४९४]

भणइ राजमति सेठि वराहि तुम्ह पीछे हउ काणु न माहि।
जाहि कइ हियइ दंड परमेठि ते तुम्ह माहि जीवरी सेठि॥

तवहि विसूरिउ वोलइ सेठि, हउ आराहउ निरु परमेठि, ।
निच्छइ देउँ देइ महि मुनिउ, अजरु अमरु जिण आपमु सुणिउ ॥

अर्थ —राजा कहने लगा, हे सेठ तुम डरो मत । तुमको पीडा (दु ख) देने का हमारा कोई कार्य (प्रयोजन) नही है । जिसके हृदय मे पच परमेष्ठि है, जीवदेव सेठ तुम ऐसे हो ॥४६३॥

तव सेठ विसूर कर (चिंता रहित होकर) बोला, "मै तो निश्चित रूप से पच परमेष्ठि की आराधना करता हूँ । निश्चय ही मैं पृथ्वी के मुनियो को देय (अहार) देता रहा हूँ और अजर-अमर जिनागम है, उन्हे मैं सुनता रहा हूँ ॥४६४॥

[४६५–४६६]

राजनु पुतु गयउ पर तीरु, तहि दुख सूकउ सयल सरीर, ।
तुम्ह वाधे हमु नाही दोपु, दुख वढे हमु पाउ मोष ॥
तवहि राउ वोलत हइ जाणि, एते कटक लेहु पर जाणि ।
मोहि नखतु जइ राजनु होइ, इइ होइ तरु आवइ सोइ ॥

अर्थ — "हे राजन, मेरा पुत्र विदेश चला गया, उसी के दु ख से सारा शरीर सूख गया । तुम यदि मुझे वदी करो तो इसमे हमे कोइ दु ख नहीं होगा (हमारा कुछ विगडता नही है) क्योकि दु ख की वृद्धि से तो हमे मोक्ष (छुटकारा) मिल जावेगा ॥४६५॥

तव राजा ने (यह सब) जानकर कहा, इस सारी सेना से शत्रु को जान लो । 'यदि मेरे समान कोई राजा है, तो वह नर श्रेष्ठ यहाँ क्यो नही आता है । ॥४६६॥

[४६७–४६८]

तउ सेठिणि वोलिउ सतभाउ, जइ पहु अवहोइ पसाउ ।
किछु परि जाणउ देउ निरुत, तुम्ह अइसौ छौ म्हारउ पूतु ॥

जिणदत्त महियल घामी हियउ, दीठउ माइ बापु बिलखियउ ।
बहिणि बोद् लोटली कराइ बारउ तिरिया लागहि पाइ ॥

अर्थ —तब सेठानी ने सत्य भाव से कहा "यदि हे प्रभु ! अब (आपकी) कृपा हो जाए । तो हे देव ! हम कुछ निरख पावें (कहें) क्योंकि तुम्हारे ही ऐसा हमारा पुत्र था ॥४१७॥

जिनदत्त का हृदय पुलकित हो उठा और माँ बाप को देखकर वह रो पड़ा । वह उठकर उनके पाँवों में लोटने लगा तथा उसकी चारों स्त्रियाँ भी उनके चरणों में लग गई ॥४१८॥

[४१९-५]

चरणनी जणणु णमिउ सटंगु, पाय पखालित परसिउ अंगु ।
गहबरि बोलइ साहस धीर अब महु सुधउ भयउ सरीर ।
सेठिणि पहुचरि मायउ हियउ पुणु आपणउ बंखण्ड लियउ ।
जाणौ पुत्त आज पुणियार छीर पवाहु चले थण हार ॥

अर्थ —उसने माता के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया तथा पाँवों को पखार (धो) कर (उसके) अंगों का स्पर्श किया । साहसी धीरवीर बोला अब मेरा शरीर शुद्ध हो गया ॥४१९॥

सेठानी का हृदय भी भर आया फिर उसने उसे अपनी गोद में ले लिया और कहा हे प्रिय ! मानों तुम आज ही पैदा हुये हो और यह कहते हुये उसके भारी स्तनों से दूध की धारा बह निकली ॥५ ॥

पियार < प्रिय + तर ।

[५ १-५ २]

मेरे जिणदत्त पुणिम मास सुण बिल पुत नहिं तु रिसरात ।
जाए बहु वा

छाडे वापह भोग विलास, पान फूल भोजन की ग्रास ।
रातहि गीद न दिवसह भूख, तुम्ह विण पूत सहे वहु दुख ।।

ग्रर्थ — वह कहने लगी, हे जिनदत्त ! तुम मिल गये ग्रौर तुमने मेरी ग्राशाग्रो को पूरग कर दिया । हे पुत्र ! तुम्हारे विना मैं निराश हो गई थी एक क्षण भी तुम्हारा वाप (तुम्हारा-स्मरण) नहीं भूलता था । वे प्रति दिन जिनदत्त २ करते रहते थे ।। ५०१ ।।

तुम्हारे वाप ने सब भोग विलास छोड दिये थे तथा उन्होंने पान, पुष्प एव भोजन की ग्राशा छोड रक्खी थी । न रात को नींद ग्राती थी न दिन मे भूख । हे पुत्र! तुम्हारे बिना हमने वहुत दु ख सहे ।।५०२।।

[५०३–५०४]

भए वधाए हाउ निसाण, चदसिखर ग्राए ग्रगवाण ।
उछली गुडी सलहहि भाट, नेत पटोले छाई हाट ।।
इम ग्रागदे गए ग्रवास, इच्छित मानहि भोग विलास ।
चहुल दाण चउ सघ कराइ, दुही दीण सव रहे ग्रघाइ ।।

ववावे हुए ग्रौर पौसो (धौसा) पर चोट पडी तथा राजा चन्द्र-शेखर उसकी ग्रागवानी करने ग्राए । गुडी उछली तथा भाटो ने स्तुति की बाजार नेत्र एव पटोर से सजाये गये ।।५०३।।

इस प्रकार ग्रानन्दित हो कर जिनदत्त ग्रपने निवास स्थान पर गए तथा मनवाछित भोग विलास करने लगे । चारो सघो को वहुत सा दान करने लगे । तथा दीन ग्रौर दुखी लोग (उनके दानो से) तृप्त होकर रहने लगें ।।५०४।।

नेत ∠ नेत्र – एक प्रकार का रेशमी कपडा
पटोर ∠ पटकूल– एक प्रकार का रेशमी कपडा

गृहस्थ जीवन

[५५-५६]

चंदसिहर अरु जिणदत्त राय रज्जु करहि वसंतपुर आय ।
एक चित्त (हुव)[1] रहिय सरीर परिजा पालहि दोउ वीर ॥
विमलमती सुउ सिमु उपण्णु एकु सुवत्तु जयवत्तु पसण्णु ।
सुप्पहु मइमेहु सुजसती ए जाए हुइ सिरियामती ॥

अर्थ — राजा चंद्रशेखर एवं जिनदत्त दोनों वसंतपुर में राज्य करने लगे । दोनों एक चित्त दो शरीर होकर रहने लगे और दोनों वीर प्रजा का पालन करने लगे ॥५५॥

विमलमती से सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए एक सुवत्त एवं दूसरा जयवत्त तथा श्रीमती से सुप्रभ मतिमेघ एवं प्रभावती उत्पन्न हुए ॥५६॥

१ मूल पाठ— वेह"

[५७-५८]

करहि रज्जु भोगहि परउ भीग पलीस पलीहा गए ।
जीवंजसा जीवदेव साहु तउ करि लहिउ सग्गहर ठाउ ॥
विज्जाहरि जायउ सुकेउ अरु जयकेउ सु मयरकेउ ।
गुणमित्तु जयमित्तु अणमावती धम्मिलमित्तु भयो विमलामती ॥

अर्थ — (जिनदत्त) राज्य करते हुए भोगों में प्रस्थापित हो गये और नित्य प्रति रस में संतृप्त होते गये । (उसके माता एवं पिता) जीवंजसा और जीवदेव साहु ने तप करके अच्छा स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया ॥५७॥

विद्याधरी स्त्री से सुकेतु, जयकेतु एवं मकरकेतु उत्पन्न हुए तथा

विमलासती (श्रृ गारमती) से गुणमित्र, जयमित्र, मनभावती तथा दविणमित्र, उत्पन्न हुये ॥५०८॥

[५०९-५१०]

वणिवरु कुलि जिणदत्त उप्पण, पाछै राजु भयो परिपुण्ण ।
भवियहु कऊण अचभौ लोइ, पुन्न फलह कि कि नउ होउ ॥
ज ज पुहमिहि दीसइ चगु, त त धम्मह केरउ अगु ।
जं ज कि पि असुदरु हवइ, त त पावह फलु जिणु कहइ ॥

अर्थ — जिनदत्त ने वणिक् के घर जन्म लिया लेकिन पीछे वह राज्य मे परिपूर्ण हुआ । लेकिन हे भविको! इसमे कौनसा आश्चर्य है? पुण्य से क्या क्या नही होता (कौन कौन से फल नही प्राप्त होते) ? ॥५०९॥

जो जो पृथ्वी पर सुन्दर दिखता है, वह वह धर्म का अंग है, और जो जो कुछ भी असुन्दर होता है, वह वह पाप का फल है— ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का कथन है ॥५१०॥

[५११-५१२]

जिणवरु धम्मु निछम्मु अभोइ, सग्ग मोख कहु कारणु होइ ।
राजभोग किर केती माति, निछउ पालहु चइवि भराति ॥
उक्क वहण वहराइ निमित्तु, लहिवि भोय ससारह वित्तु ।
राजु देवि जिणदत्तह सव्वु, चदसिखरु तपु लाग्यो भव्वु ॥

अर्थ — जिनेन्द्र भगवान का धर्म निश्छद्र और अभोग (भोग रहित) है इसलिये स्वर्ग मोक्ष का भी कारण है । राज्य भोग की कितनी ही सीमा हो (कितना ही परिमाण हो) निश्चय ही भ्रांति का त्याग कर (उस धर्म का) पालन करो ॥५११॥

जाइवि दीठे मुणिवरु पाइ, करि तिसुधि णिरु लागउ पाइ ।।
तुम्हहिन वदन सक्कइ कोइ, जरा मीचु तुम्हि घाली खोइ ।।

अर्थ — जिनदत्त ने जब यह सुना और जान लिया कि (उसके) गुरू (आए) हैं। उसने अतत सात पैंड चलकर उन्हे नमस्कार किया। फिर आनन्द के धौंसे बजवा कर परिवार सहित वह (उनके पास) वदना के लिये गया ।।५१५।।

उसने वहां जाकर मुनि के चरणो के दर्शन किये तथा (मन,वचन, काय) तीन प्रकार की शुद्धि कर उनके चरणो मे वह निश्चित रूप से पड गया और उसने कहा, "आपको वदना कोई नही कर सकता क्योकि वृद्धावस्था एव मृत्यु तुमने खो डाली है" ।।५१६।।

तत्वोपदेश

[५१७–५१८]

पूछइ जिणदत्तु जिणवर धम्मु, कह (हुमु) णीसरु गालिउ कम्मु ।
देव एकु अरहतु मुणेहु, दया धम्मु सहु भेय सुणेहि ।।
गुर निगयु सगुम चतु, मज्ज मसु महु चइ निरभतु ।
पचुवर निसि भोज चइज्जु, लवणिउ अणगालिउ जलसज्जु ।।

(फिर उनसे) जिनदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के धर्म के विषय मे पूछा । मुनीश्वर ने कहा "कर्मो को नष्ट करो। एक अरिहत देव के मानो तथा दया एव धर्म के भेद को सुनो"।

मुनि ने कहा निग्रथ गुरू की सेवा करो। मदिरा मास मधु को निभ्राति त्यागो। पाच उदम्बर तथा रात्रि को भोजन त्यागो। नवनीत तथा बिना छने हुए जलका प्रयोग त्यागो

णासिय ∠ णासित—नष्ट हुआ
णिग्गंथ ∠ निर्ग्रन्थ —परिग्रहहीन मुनि

[५१९-५२]

अणुव्वय पंच गुणव्वय तिण्णि चउ सिक्खावउ धरि चउवण्ण ।
अंतयालि सल्लेहणु होइ ए सावय वय भासहिं जोइ ॥
पुणु अणयार धम्म बहु भेय कहिउ मुणिण भवभय छेय ।
सत्त तच्च सग णव पय दव्व पंचकाय पुणु जाणहि भव्व ॥

अर्थ — पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत (इन बारह व्रतों को) चारों वर्ण (ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र) धारण करें तथा अन्त समय सल्लेखना धारण करे, ये श्रावक के व्रत कहलाते हैं ॥५१९॥

फिर मुनि ने भव-भय को छेदने वाले अणागार (यति) धर्म के अनेक भेदों को कहा । हे भव्य । सात तत्त्व (सात) नय नव पदार्थ (छह) द्रव्य और पंचास्तिकाय को तुम जानो ॥५२ ॥

[५२१-५२२]

बारह भावण करिहु वियारि, संजमु णेमु धम्मु तउ धारि ।
धम्मंतरि परमप्पा बुज्झि, उत्तम झाणु कहिउ मइ तुज्झि ॥
पुणु पयत्थु पिंडत्थु वियत्तु, रूव जुत्तु पय चउ धरेवु ।
मइ रउद धम्म चउ भेउ सुक्क झाणु चक्करिउ असेउ ॥

अर्थ— और कहा बारह भावनाओं का विचार (चिन्तन) करो तथा संयम नियम (व्रत भवाण) धर्म और तप इन चारों को परमपद के लिये अभ्यन्तर (अन्तरंग) रूप से जानो । अब मैं तुम्हें उत्तम ध्यान को कहता हूँ ॥५२१॥

फिर पदस्थ, पिंडस्थ, जिनेन्द्र के रूप के समान (रुपस्थ) तथा अनत (गुणो के धारण करने वाले) रुपातीत (सिद्धो के) ध्यान को जानो। आर्त, रौद्र, धर्म एव शुक्ल ध्यानो के भेदो को जानकर ग्रहण एव त्यागो ।।५२२।।

अलेउ – नही लेने योग्य

रूवगय–रूपातीत

[५२३–५२४]

दंसणु णाणु चरणु रयणाइ, आखिय किरिया अरु पडिमाइ।
चारि नियोयवि कहिय वियारि, जिणवत्त कहिउ मुणिंद सुसारि ।।
बहु पयार आयुमु वज्जरिउ, णिसुणिवि राहणु मनु गह गहिउ।
भव कूवि बूडतिहि मलहारि, सामिय पय विण को ससारि ।।

अर्थ —दर्शन, ज्ञान एव चरित्र, रत्नादि को, सपूर्णक्रिया तथा प्रतिमाओ को कहा। चारो अनुयोगों को विचार करने को कहा, और कहा, हे जिनदत्त ! "यही सब सार है" ।।५२३।।

अनेक प्रकार के आगमो को कहा जिसे सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो गया। (जिनदत्त ने कहा) भव कूप मे डूबने वाले के पाप (मल) को हरने वाले स्वामी के चरण के विना ससार मे (और) कौन (सहारा) है ।।५२४।।

[५२५–५२६]

पाछे जिनवत्त अवसरु लहिवि, पूछइ मुणिवरु कहु सहु सरिवि।
णाणवत सामिय वय करहु, महु मण ससउ फुडु अवरहु ।।
बहु तिरिया सहु गरुवउ नेहु, किण कारणि सामिय अखेहु।
वुइ चपहि इकु सिहल दीपु, किमु विज्जाहरि लहिय सरुपु ।।

अर्थ — पीछे जिनदत्त ने अवसर पाकर मुनि श्रेष्ठ से सर्व वृतांत कहने को निवेदन किया। हे ज्ञानवंत स्वामी मुझ पर दया करके मेरे मन की (स्फुट) शंका को दूर कीजिये ॥५२५॥

हे स्वामी किस कारण से चारों स्त्रियों से मेरा अत्यधिक स्नेह है। तथा उनमें से दो चंपापुरी एक सिंहल द्वीप से और एक सुन्दर विद्याधरी कैसे प्राप्त हुई सो सब कहो ॥५२६॥

पूर्व भव वर्णन

[५२७-५२८]

विमलाहणु बोलइ ए रिसउ देसि अवंती जासें विसउ ।
पुरि उज्जेणि अजिम सिम्रासि तहं बलदेउ सेठि पुणरासि ॥
तहि सिवदेउ बहु बालउ पुतु, धम्म कम्म करि भयउ संजुत्तु ।
ताउ जिणेसरु न्हवणु करंतु, हुयउ कुलि गऊ सग्ग तुरंतु ॥

अर्थ — वे विमलानन (निर्मल मुंह वाले) ऋषि इस प्रकार बोले विश्व में अवंती नाम का देश है उसके उज्जयिणी नगरी में अजित (राजा) का निवास था। वहीं गुणों की राशी वाला (गुणवान) एक बलदेव सेठ था ॥५२७॥

उसके धर्म कर्म से संयुक्त शिवदेव नामका बुद्धिमान बालक पुत्र हुआ। (उस बालक का) पिता (बलदेव) जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करते हुए कुरोग से मरकर तुरन्त ही स्वर्गवासी हुआ ॥५२८॥

कुलि ∠ कलिम – कुयोग

[५२९-५३]

सु दालिदह पीडिउ घरउ पर छांडिया न धम्म मायुराह ।
रहि लिय हियइ बसइ जिण सोइ बरणी करहि सु भोअणु होइ ॥

मुणि एकु वण माहि ज्झाण समाहि, तहि पय पूजित वणजी जाहि ।
छठउ मास तवु पूजिउ तहि, भामरि गयउ जति पुरु माहि ।।

अर्थ — हे जिणदत्त! (शिवदेव की पर्याय मे) तू अत्यधिक दारिद्र्य से पीडित था लेकिन (तूने) अपने धर्म को कभी नही छोडा । तेरे हृदय मे नित्य जिनेन्द्र देव वसते थे और लेन देन करके तू अपना पेट भरता था ।।५२६।।

वन मे समाधि के ध्यान मे लगे हुए एक मुनि थे जिनके पद- पूज कर (तू) वणिजी को जाया करता था । (इस तरह तू) छह माह तक उनकी सेवा करता रहा । तव वह मुनि नगर मे भ्रामरी (अहार) के लिये गये ।।५३०।।

[५३१–५३२]

तू पडिगाहि घरहि लइ गयउ, पाय पूजि पुणि थाढउ कियउ ।
लइ वाइणो घरहि ते जाइ, महा मुणीसरु चरी कराहि ।।
जसवइ जिनवइ गुणवइ जाणि, चउथी सुहवइ मणि परियाणि ।
देखित तोहि धम्मु कइ भाग, चारिउ तिरिय भइय अनुराग ।।

अर्थ —तू (उन मुनि को) पडिगाहन कर (आहार के लिये) खडा कर दिया । स्त्रियाँ अपने घर से वायणाँ (लाहना) लेकर जहाँ महा मुनीश्वर अहार ले रहे थे, आई तथा जसवती, गुणवती, जिनवती तथा चौथी शुभवती चारो नारियो ने मन में निदान (उस अहार का अनुमोदन) किया और तुझे धर्म भाव मे देखकर वे चारो स्त्रिया तुझ पर अनुरक्त हो गई ।।५३१–५३२।।

चरी – आहार करने की क्रिया ।

[५३३–५३४]

मुनहि अहार एकु कदाण, भई घणी ते घरिणी णियाण ।
पुण्ण पहाउ एक जिणदत्तु, मुणिहि दाणु दीनउ पइमिति ।।

तहि मरेवि वहि एणितिहु राम पढमु सग्गि सुरवरु संजाय ।
विविहु भोग माणिवि तहि चइवि श्रावकि जीवदेउ पुत्र भवउ ॥

अर्थ —मुनि को एक कवल मात्र प्रहार देने से निदान करने पर वे तेरी स्त्रियां हुई। हे जिणदत्त! यह सब मुनि को परिमित (अल्प) आहार देने के पुण्य का प्रभाव था। ॥२१३॥

हे राजन्! सुनो तुम मर कर प्रथम स्वर्ग में श्रेष्ठ देव हुये। फिर वहाँ विविध प्रकार भोगों को मानकर (भोग कर) तथा वहाँ से चय कर तुम जीव देव के पुत्र हुए ॥२१४॥

[२१५-२१६]

पुइ मरि चंपापुरी उपण्णा तिहुल दीवहु इकु आयण्णा ।
एक भई विज्जाहर धीय चारिउ तुम संबंधी तीय ॥
जिणदत्त तिसुण उपण्णो बोहु विगमणि छंडिउ माया मोहु ।
जइ पुनु बोर वीर तउ करइ सो मरु मोक्ष पुरी पइसरइ ॥

अर्थ —वो मर कर चंपापुरी में पैदा हुई। एक सिंहल द्वीप में पैदा हुई तथा एक विद्याधर की कन्या हुई। (इस प्रकार) चारो तेरे (पूर्व भव) के सम्बन्ध से स्त्रियां हुई। ॥२१५॥

पूर्व भव का वृतांत सुनकर जिनदत्त को बोध (ज्ञान) उत्पन्न हुआ और उसने अपने मन से माया और मोह को छोड़ दिया। जो कोई वीर घोर तप करता है, वह मर कर मोक्ष नगरी में प्रवेश करता है ॥२१६॥

[२१७-२१८]

पुनु पुरवइ दीनिउ राजु, भइ साहिम्मउ अपुणौ काजु ।
बहु नारि सिहु जिणदत्त ताहि, दीया भैइ मुणीवर पाहि ॥

दुद्धर पंचमहव्वय पालि, णाण जलेण कम्म क पखालि ।
परम समाहिं जोइणी रूउ, तव लछी छुडु पठयो दूतु ॥

अर्थ — (फिर जिनदत्त ने) अपने पुत्र सुदत्त को राज्य दिया और कहा, मैं अपना काज (आत्म हित) करुँगा । चारो स्त्रियो के साथ जिनदत्त ने मुनीश्वर के पास दीक्षा ले ली ॥५३७॥

तव जिनदत्त ने दुर्द्धर पच महाव्रतो का पालन किया तथा ज्ञान जल से कर्मों के कीचड को धोया । जब मुनि जिनदत्त परम समाधि के योग मे थे तव तप लक्ष्मी ने शीघ्र ही अपना दूत भेजा ॥५३८॥

[५३९–५४०]

विणवइ दूतु णिसुणि दयधत, इ तोडे रयवर के दंत ।
मोहमल्ल रणि घालिउ मारि, हउ पाठयउ सामी तव नारि ॥
तव लछी निरुहउ ठयो, खेद खिन्नु एहि आवत भयो ।
मज्झु वियोउ नाउ तिहिं धरिउ, . ॥

अर्थ — दूत ने कहा, "हे दयावान सुनो, तुमने काम के दात तोड लिये हैं । तुमने मोह रूपी योद्धा को रण मे मार दिया है इसलिये हे स्वामी, मुझे तुम्हारी तप स्त्री ने भेजा है ॥५३९॥

तुम्हारी तप रूपी लक्ष्मी उदासीन होकर स्थित है । मैं खेद खिन्न होकर यहाँ आया हूं । मेरा नाम उसने विवेक रखा है ॥ ५४० ॥

[५४१–५४२]

सुणि विवेय तुहि पूछउ बात, (ज) य दोसु पइ दीठे जात ।
मणमथ सहिउ दीउ मइ दीठ, मुक्ति लछि ते नियड वइठ ॥
मुक्ति लछि ज (इ) हो सइ दासि, तापहि छूटहि हम निरुभासि ।
पउजोवहि विन्निवि जसुकति, मुणिवरु तिसु तोडइ ते (द) त ॥

(जिनदत्त ने कहा) हे विवेक सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। पहिले वाले दोष देखे जाते हैं। मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे काम देव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि की है। मुक्ति लक्ष्मी जब (हमारी) दासी होगी तथा हम निश्चय रूप से भ्रमास देकर छूटेंगे। जिसकी कांति प्रकाशित होकर निकलती है ऐसे मुनि भ्रष्ठ (काम देव) के दांतों को तोड़ डालते हैं। ॥५४१–४२॥

विवेय ∠ विवेक

पज्जोवहि ∠ प्रद्योतित – प्रकाशित करना

[५४३–५४४]

रतिपति जो इह सो तउ भत्ति, प्रहो विवेय मत्ति लिउ जत्ति।
चिंतवहि जाइ मुणिवर गरिठु, मुत्ति णिव्वंतजि जो लिउ एठु॥
पहिलउ हूंतउ लिय परिरत्तु सा छंडिवि भइ भयउ आसत्तु।
इव विवेय अइसाहि तित्थु मुणिवरु गणु अच्छइ जित्थु॥

(जिनदत्त ने कहा) यहाँ जो (पहिले) रति पति था वही तप लक्ष्मी का पति है। हे विवेक शीघ्र ही निश्चित रूप से जाओ और गरिष्ठ (बड़े) मुनिवर से जाकर कहो कि मुक्ति निर्विनि (उसे) निश्चित रूप से इष्ट है। पहिले मैं अपनी ही (लक्ष्मीपर) अनुरक्त था। उसे छोड़कर मैं फिर (तप लक्ष्मी) से आसक्त हो गया। अब हे विवेक हम उसी तीर्थ जायेंगे जिसमें मुनिगण उत्तम रहते हैं।

[५४५–५४६]

णिक्कारणि हउ लिउ पाठउ जइ तुहु सामी आइ बीनयउ।
ता जिणदत्त मुणिवरु वरइ भव समुद्र जो गुरुयर रहइ॥
णिविसमु परकप्पउ भाइ कक्कसणागु अलंगु उपाइ।
गुणु छइ पउ वम्म लउ लेइ लीअइ अब मरि जे दह मए॥

(विवेक ने कहा) हमे निश्चित रुप से निष्कारण भेजा गया है और मैंने हे स्वामी ! तुमसे आकर निवेदन किया है। इस पर मुनीश्वर जिनदत्त कहने लगे कि इस भव समुद्र मे कौन (जीव) सुखसे रह सकता है। ॥५४५॥

निर्विकार परमात्मा का ध्यान करके तथा अन्त मे तीसरे भव मे केवल ज्ञान प्राप्त करके और आठ कर्मो का क्षय करके जिनदत्त ने निर्वाण लाभ लिया। ॥५४६॥

[५४७-५४८]

दुद्धर घोर वीर तउ पालि, साहु सगि दुह कम्म पखालि ।
हनि ते नारि लिगु गय सग्गि, तुह रायसिह काजि निय लग्गि ॥
यह जिनदत्त चरिउ निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह सगहइ ।
वित्थरु भवियह्रु सुणहु पुराणि, यहु जिण दोस देहु महु जाणि ॥

अर्थ — उस वीर ने दुर्द्धर तथा घोर तप का पालन कर सारे दुष्कर्मो का प्रक्षाल कर (धो) दिया तथा वे (चारो स्त्रियाँ) स्त्री लिंग छेद कर स्वर्ग गई। तू भी रायसिंह, अपने काज (आत्म हित) मे लग ॥५४७॥

जो इस जिनदत्त चरित को नित्य कहेगा, वह अशुभ कर्मो को चूर कर शुभ कर्म का सग्रह करेगा। हे भविको, इस पुराण को विस्तार से सुनना और इस विषय मे मुझे (मूख) जान कर दोष मत देना ॥५४८॥

नियः- नित्य

ग्रथ समाप्ति

[५४९-५५०]

जो जिणदत्त की निंदा करइ, सुनत चउपही जलि जलि मरउ ।
जो यह कथा घालिहइ रालि, तहु मिछत्ती दइ यहु गालि ॥
मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु ।
देखि विसूरु रयउ फुड एहु, हत्यालवणु बुहयण देहु ॥

अर्थ — जो जिनदत्त (चरित) की निंदा करेगा वह इस चउपई (बंध–काव्य) को सुनते ही जल जल कर मरेगा। किन्तु जो इस कथा को अपने पास (रख) धारण करेगा (हृदयंगम करेगा) वह मिथ्यात्व गवा देगा ॥५४९॥

मैंने उस जिनदत्त पुराण को देखा है जो प साधु द्वारा विरचित जो ऐसा (अथवा अतिशय) प्रमाण है। मैंने इसे स्फुट रूप से रचा है। हे बंधुजन हस्तावलंबन (हाथ का सहारा) दीजिये ॥५५ ॥

अइस ∠ ईदृश – ऐसा ।
अइसइ ∠ अतिशयित – विशिष्ट ।

[५५१–५५२]

जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु तिसको होइ णाणु णिव्वाणु ।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु कहइ रल्ह अरथाई कउ पुत्तु ॥
छय सतावन कहु सय माहि गुणवंत को छापइ बाहि ।
सत्थु पुराणु सुणिउ नउ सत्थ भणइ रल्हु हउ ण सुणउ अत्थु ॥

अर्थ —"जो जिनदत्त के उपाख्यान को सुनता है उसके ज्ञान और निर्वाण होता है। वह अजर अमर पद को निश्चित प्राप्त करता है यह अरथाई का पुत्र रल्ह कहता है ॥५५१॥

(यहाँ तक कुल) छः सौ (छंद) में से सत्तावन गए (कम हुये)। कौन गुणवान अपनी बाहां (कटिया) छिपाएगा? नहीं पुराण एवं शास्त्र मैंने नहीं सुने हैं तथा रल्ह कहता है मैंने अर्थ पर भी विचार नहीं किया है। ॥५५२॥

णाण ∠ ज्ञान ।

[५५३]

जिणदत्त पूरी भई चउपही, छप्पन होणवि छहसय कही।
सहसु सलोक विन्न सय रहिय, गथ पमाणु राइसिहु कहिय ।।

अर्थ — जिनदत्त चौपई छ सौ मे से छप्पन कम (५४४) चौपई मे पूरी की गई। रायसिंह कवि कहता है कि ग्रन्थ का प्रमाण एक हजार श्लोक प्रमाण है ।।५५३।।

इति जिणदत्त चउपई सपूर्ण

सवत् १७५२ वर्षे कार्तिक शुदि ५ शुक्रवासरे लिखत महानद पालव निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृश पुस्तक दृष्ट्वा तादृश लिखित मया।
यद् शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ।। १ ।।

शुभ भवेत् लेखकाध्यापकयो। श्रीरस्तु। पचमीव्रतोपमनिमित्त

।।शुभ।।

शब्दकोष

अ

अइ— ४००,
अइरावइ = ऐरावत — २३
अइस = ऐसा — ३६२, ५५०
अइसी= इस प्रकार की—१०१,४६७
अइसे = ऐसे — ४४०
अइसो = — ३८२, ४१३
अइसौ —२८१
अइसइ = ऐसा – ४७,२०५,२२०, २२२
अउसप्पिणी = अवसर्पिणी — ३०
अउर = और — ७४, १३७, १४४ ३१४, ४८३
अउरु = और — ४७, ४२५
अकहा = न कहना — ४७५
अक्खउ = कहना — ११६
अक्खर = अक्षर — २०
अकाजु = व्यर्थ — २१३
अकावसि = आकाश — ३५४
अकिट्टमि = अकृत्रिम — २६१
अकुलाइ = व्याकुलहोना — १००
अकेलउ = अकेला — ३६७
अखइ = कहना — ३४५
अखउ = कहना —२०, २६७
अखहु = कहना — २२१
अखेहु = — ५२६
अखड = पूर्ण — १७६
अखय = अक्षन — ५३,
अख्यइ = कहना – ४१७
अखिउ = कहना – ३८२
अगनिउ = अगनित – १२६, २८५
अगम = अथाह – १६४
अगर = सुगंधित द्रव्य – ५३,१७२
अगवाण = अगवानी – ५०३
अग्गिलेह = आगे लेने को – ४६१
अगोटिउ = रुकना – १३२
अघाहि = थकना – ७०
अघाइ = गहरी – पेटभर, प्रसन्नता ३०१, ४१५, ५०४
अघाई = – १४६
अघोटिउ = रोकना – १३६
अचरिजु = – ४३१
अचागले – दुष्ट – ४०१
अचामउ = – २७१
अचेयण = अचेतन – ७८
अचभउ = आश्चर्य – ३६१
अचभो = – ३६०
अचभौ = – ४३६,५०६
अछ = बैठे हुए – ३७८
अछइ = – २७३,३३६ – ३४३, ५४४

अपहि = कुमार्ग – १४३
अपुणइ]
अपुनुइ] अपने – ३५, ४५३
अप्पाणउ = अपने – १५७
अपार = – ४०६,४५८
अफौ = – ४४६
अबूझ = अज्ञ – १८८
अब्भतरि = अतरग – ५२१
अभइ = – ५५१
अभिडत = भिडना – ४७०
अभोइ = अभोग – ५११
अमर = – ५५१
अमरउ = आम्रवाटिका – १६५
अमल = निर्मल – १४
अमिउ = अमृत – २४
अम्ह = हमारा – ४००,४०३
अम्हारी = मेरी – ३६१
अम्हह = अवे, = १८, ४०२
हमारा
अम्हि = हमारा – ४७७
अमुल्ल = अमूल्य – ५३,
अयसउ = ऐसे ही – २३१
अयाणु = अज्ञ – ३२२
अयालि = अकाल – २२५
अर = और – २६५
अरथ = लिए – ३२४
अरहंतु = अर्हंत् – ५४,५१७
अरि = – ४०३
अरिकम्म = कर्मशत्रु – ७
अरिमडल = शत्रुसमूह – ४५५
अरु = अरहनाथ तीर्थंकर – ७,
अरू = और – १०, ३५, ७०,आदि
अरुणेइ = अरुण, लाल – ५
अरे = – २२८, २६१, ३५४,
४०१, ४७६,
अरथु = द्रव्य, धन – ४४६,४७२,
अर्थ = – १३७, १३८, ४४६,
अलखणु = लक्षण रहित –३७२,
अलहादी = प्रसन्न – ५८
अलिउलि = भ्रमर समूह – ३४६
अलिय = – ४२८
अलेउ = लेप रहित – ५२, ४४२
५२२,
अव = अव – ३८०, ४३७,
४८३, ४६६,
अवहु = अव – ४३४
अवधारहु = धारण करना – ४६८
अवधारि = – ३३७
अवविउ = छोटे – ३०३,
अवर = और – ६६, २८६
अवरहु = और – ५२५
अवरु = और – २,६३,६८,११५,आदि
अवरुवि = और – ४०३
अवरति = विरक्त – ४४
अवलीवाला = – २७८
अवस = अवश्य – १११,
अवसरि = अवसर – ३४२
अवसरु = अवसर – ५२५
अवसाणु = मृत्यु – ४८२
अवसि } = अवश्य – ८३,११६,
अवसु } = अवश्य – ४८३
अवमुख = दुख – ३०५

अवहेरि = चिन्ता – २१८ २९१
अवहुकइ = दूर करना – २ ८
अवास = मकान – १२७ २११
स्थान – ५ ४
अवासहिं = आवास – ११
अवासु = आवास – ४१
अवहोइ = – ४६७
अवती = – ५२७
अविचार = विचार रहित – १५
२७८
अव = ऐसे – १११
असरण = शरण रहित – ४
असराल } = – ४५,२ २
असरालु } = निरन्तर – ६५ १७५
४१७
असिक्रम = तलवार – ४५५
असिवर = तलवार – २२८
असीस = अशीष – १५१
असोइराय = अशोक राजा २७६
असोक = अशोक – १९ १९६
२१८
असोकसिरी = अशोक श्री – २१८
असोय = अशोक – २८२, २९१
असोयसिरी = अशोकश्री – २८१
असोयहु = अशोक – १ २
असंख = असंख्य – १७१ ४५१
४५२ ४६
असंख्य = – ६५१
असमर = असंख्य – ४६२
असी = अस्सी (८) – ४ ६
असुह = असुभ – ५४

असुरव = असुन्दर – ५१
अहइ = आज – २२१
अहव = भी – १९५,११ ४१७
अहनिसि = रातदिन – ५१
अहलउ = निष्फल – १ १
अहाव }
अहार } = आहार – ४ ६
अहिउ = – ११
अहिसरण = अभिगमन – २
अहिसाविउ = प्रसन्न होना – ११४
अहो = – ७२,१११ १२८ १२७
अमा = मर्यादा – ११
अंकवास = अंकपाली – १७
अंकुस = अंकुश – १४५,१५८
अंग = शरीर – ५७ ८२,१ १ २८२
अंगवइ = अंगीकार करना – ४५४
अंगु = – २२४ ४२८ ४२९
४४८ ४४१ ४६६ ५१
अंचलु = अचल – ७६
अचुह = बिना किसी के छुए हुए – ५१

अंजणि] = अंजनी गुटिका १५१
अंजनी] = – २८८ १११
अंजणीया = अंजनवती – १५४
अ वसु = – १५२
अ डव ड = एक पक्षी का नाम – ८१
अ त = सीमा पार – १७
अ तवाल = अ तसमय – ५१६,
अ तर = – १६६
अ तराल = दूरी बीचमें – १८६
१५७ २४१

अंतरालइ = अंतराल – ७०,
अंतरु = – १६८,
अंतु = अन्त – २६६
अंतेउरु = अन्त पुर – ४१,८८ आदि
अंथइ = अस्त होकर – २९९
अंधु = अंधा – २५
अंब = आम्र – १६६
अंबराइ = अमराइया – ३४
अंबिमाई = अंबिका माता – १०
अंबराउ = आम्रराजि – १७५
अंबसाहार – सहकार – ३२
आमके वृक्ष

आ

आइ = ५६,८४,११२, आदि
आइ अणाहु = आदिनाथ तीर्थंकर– १
आइत्त = आकार – ५१३
आइताइ = आकर – २०५,
आइयो = – १२०,१२३,
आइवि = – ५३४,
आइस = आज्ञा – ३३५
आइसु = आज्ञा – १०५,४२१
आउ = – ४७४,
आए = – ५०३,
आकुली = व्याकुल – १३४,४५८,
आखण = कहना – ३४१,
आखहि = कहना – ५१६,
आखिय = सपूर्ण – ४२३,
आखु = अक्षय – ३५७,
आगइ = आगे – १२३,१५५,३०४,
आगम = शास्त्र – १४
आगमणु = आगमन – ४८४

आगली = बढी हुई = ६६,१०१,२७७,
आगले = अग्र भाग – ४०१,
आगि = अग्नि – १३३,
आगिउ = आगे – ४६६,
आगिथम=आग को रोकने वाली–२८७
अगुली = अंगुली – ६५
आगे = सामने – ३९९
आचल = अंचल – १२
आज = –५००
आजि = – ४७४
आजु = – २१२,२१३,२१६,४०७
आण = सौगन्ध – २५२,३५१,४१८,
आणि = सौगन्ध, लाकर – १०७,१५०
आणु = – २१६,३८३, आदि
आणियउ = लाना ३६५
आणद = आनन्द – ६२,५१५,
आणदिउ = प्रसन्नहोना – ५८,
आणदे = – ५०४
आते = कवि के पिता – २६
आदि = – १८४,
आदिनाह = आदिनाथ – २१६
आधउ, = आधा – २३८
आधौ = आधा – २६४
आन = अन्य – ४२४
आनि = लाकर – ३५९, ४११
आनदउ = आनन्दित – २८५
आप = अपनी – २४, २०१,
आप आप कु = अपने को – १२६
आपणउ = ५००
आपणो = अपनी — ३८०
आपणु = स्वय — ३०८

ए

एउ = यह – ३११
एक = – ८५, ८६, ३०६ आदि
एकइ = एक – ३६४
एक्कर = एक अकेला – ४७, ७५, २२२
एककउ = एक – १०५
एकचित्त = ५०५
एकगु = कोई – १२१
एकतु = कोई – १२१
एकति = कोई – १२१, १२२
एकनु = कोई – १२१
एकल्लउ = अकेला – १५७
एकवति = इकलौता – २१२
एकह = एक – १४६
एकहि = एक साथ – १७८
एकु = एक – २१२, ३०२ आदि
एग्यारह = ग्यारह – ३६१
एगारह = – १३०
एठु – इष्ट – ५४३
एत्यतरि = इसके बाद – ७७
एतउ = इतनी – ३६६
एतहि = इस प्रकार – १२७, १७६
एतिउ = ऐसा – ३४९
एती = ये – ३९९
एते = उसी – १४२, ३४४, ४९६
एमु = इस प्रकार – २२३, २९४
एवहि = इस प्रकार – ४०२
एवा = इस प्रकार – २२८
एस = ऐसी – ३१५
एसउ = इस तरह – ७२
एहा = यहा – २४१
एही = इस – ३६१
एहु = यह – ८०, ३३१, ३८२, ५५०
एहो = अहो – ४०२
ऐसी = – २७८
ऐसो = – १२४
अैसाउ = इस प्रकार – २८३
अैसी = इस प्रकार – २६५
ओकार = – ६४
औगण = अवगुण – ३१२

क

कइतगु = कवित्व – २२
कइन्हु = कवि – २००
कइलास = कैलाश – २७८
कइसइ = किसी प्रकार – ३८३
कइसउ = कैसा – ३६३
कइसे = ऐसे – ४०७
कईस = कवीश – २२
कउण = कौन — १४२, २०७, ५२९
कउणइ = किसी — ३३०, ४५४
कउणे = कौन — २१९
कचनार = वृक्ष विशेष — १६६
कठु = — ३१२
कटक = सेना — ४५५, ४६४ आदि
कटकइ = सेना – ४८८
कठखड = काष्ठ के टुकडे – २५९
कठपाडल = पौधा विशेष — १७४
कठ्ठत्रि = कष्ट — १५८
कडइ = कडा — १९५
कडाप = कटास – २७९

ख

गवाइ = - १५६
गव्वु = गर्व - ५०, ३८७
गवेसिउ = तलाश करना - २२२
गसहि = ग्रसना - २२१
गह = - ५२४
गहगहइ = गदगद - १७७, ४४८
गहगही = - १६४
गहगहे = - ४४४
गहवरइ = व्याकुल होना - २७१
गहिउ = - ५२४
गहियइ = टटोलना - ३८४
गहिर = गहरे - ३४१, २५६
गहिरउ = - १६५
गहिरी = गम्भीर - ३५६
गही - - ३१२
गहीर - गम्भीर = १३८
गहु - दुख, आग्रह = ४०८, ३११
गहो - लिया - २६८
गाज - गर्जना - २३, ३५६
गाजइ - - १६५
गाठि - गांठ - ५७
गाम - ग्राम - ३३
गामिणी - गामिनी - २८८
गात - शरीर - ३७२, ४१४
गादह - गधा - ३५४
गाल - - ४७७
गालि - गला देना - ५४६
गालिउ - - ५१७
गालिवि - गाली - २२७
गावहि - - ६०, १२५
गिर - पवत - २६७
गिरि - - ४५२

गीत - - १२५, २८०, ३२१
गीतु - गीत - ६०
गीद्ध = - १६२
गीव = ग्रीवा - ६६
गुटिका = - २८८
गुडी = - ५०३
गुण = ७, ४५, ३०६ ६०, आदि
गुणगा = - २७२
गुणणिहि = गुणनिधि - १५
गुणदत्तु = - १८०
गुणपाल = - १८६
गुणमित्तु = गुणमित्र - ५०८
गुणरासि = - ५२७
गुणवइ = गुणवती - ५३२
गुणवइ = गुणव्रत - ५१
गुणवाल = गुणपाल - ८८
गुणि = - १३६
गुणेइ = - १५८
गुणग = गुण सम्पन्न - ११८
गुणहि = - १८२
गुपत = गुप्त - ३०८
गुपति = छिपी २५५
गुपति निहाणु = गुप्तनिधान - १८८
गुमु = - ३४६
गुर = - ५१८
गुरु = वृहस्पतिवार - २६, ५५, ३६०
गुसइ = स्वामी - १५६
गुसाईं = स्वामी - ३२३
गुसाईऊ = स्वामी - १५७
गुसाइणिदेवि = गोस्वामिनीदेवी - १६
गूजरि = गूजरी - १७०
गूड = गूडी - २८४

छुडु = शीघ्र – ४२५, ५३८, ५४६
छुरी = – ६५, ३६५
छुहारी = छुहारे – २३, १७१, ४७२
छूटउ = छूटना – ३ ४६
छेली = बकरी – ३७५
छोला = – १८३
छोहु = स्नेह – ३२९
छोहु = क्षोभ – ३४४
छडि = छोडकर – १५४
छदु = छद – १४,१५, २०, ३२८
जइ = जो, जैसा, यदि, जब, – २०
२३, ११८, १३१
१४२, १६६, १६७, ,२१६, २४७,
२५२, ३१६ ३०५, ३३५,
४८०, ४९७, जाकर, – ३३९, ३४८,
३८३, ३९२, ३९३, ४१२, आदि
जइणवि = – ३५१
जइतो = – ३३१
जइनी = जैनी – ४५४
जइयह = – १४७
जइयहु = – ७३
जइर = जो – ८३
जइवौ = – १७८
जइसे = जैसे – ३४, ४१३
जइसह = – ४६५
जइसवाल = जाति का नाम – २६
जइह = जाकर – २६७
जउ = जभी – ३५५
जक्ख = यक्ष – ११
जक्खिणी = यक्षिणी – ११
जगणत्थु = जगन्नाथ ६
जगणाह = जगत् के नाथ – ३

जगत्तय = जगत्त्रय – ५
जगमगतु = जगमगाना – २९१
जगु = जगत = ६८
ज्झति = शीघ्र – १५४
ज्झाण = ध्यान – ५३०
जडित = जडी हुई – १३४
जडिय – ४९०
जण = जन, – २२ आदि
जत्थ = – २५
जणणि = माता – ३५
जणणी = – ४९९
जणणु = पिता – २२३
जणाइ = जानने पर – २३०
जणावइ = बताना = ४६७
जणि = मत – २६६
जणिवउ = पैदा करना ३८८
जणु = – ३१, ७१, ८७,
जदुहव = यादव – ४६१
जन = – २२३, ३१५
जनमु = जन्म – ४२४
जपउ = जपना – ५२
जम = यम – १२
जम्मु = जन्म – ५९, ३०५
जय = – १
जयकारी = जय जय कार – ३३८
जयकेतु = – ५०८
जयजयकारु = जयजयकार – ३५९
जयदत्तु = – ५०६
जयमित्तु = – ५०८
जयसारु = –१०
जर = जरा, वुढापा – ९
जरा = वुढापा – ५१६

जासु = – ३०७, ३७६

जाहि = जाना – ३३, ७०, ७४ आदि

जाही = – २२८

जाहु = – १३१, १२२

जिउ = – ३७४, ४८३

जिण = जिन – ७, ६, १३२, १४८

जिणणाहु = जिनेन्द्र भगवान – ४५

जिणदत्त
जिणदत्तह
जिणदत्तहि
जिणदत्ता
जिणदत्तु
} २, १६, ११६, १३० ११६, ४०१, २१० = नायक का नाम ४०१

जिणदेव = – २६२

जिणनाहु = – ४३४

जिणभुवणि = जिन मन्दिर – १५४

जिणवर = जिनेन्द्र देव – १, १४, २५ ५०, ५१७

जिणसुत्त = जिन सूत्र – ५५

जिणहरु = – १५८

जिणिंद = जिनेन्द्र – २४५

जिणु = जिनेन्द्र देव – ३, ७१, ५१०

जिणुत्तु = – ५२२

जिणेसर = जिनेश्वर – ३१४, ३६०, ३८५

जिणेंद = जिनेन्द्र – ३, ३१७

जित्थ = जहाँ – ३४५

जितनु = – २२०

जिन्ह = – ६८

जिन = जिनेंद्र

जिनदत्त = १२८, ५४८ आदि

जिनवइ = – ५३२

जिनु = जिनकी – ७१

जिम = जिस प्रकार – २२१, २६२

जिमृ = जैसे – ६२, २२४

जियउ = जीना – ३१४, ३१५

जिमणार = जीमणवार – १२४

जिवायौ = जिमाया – १४५

जिसु = जिसको – १००

जिहू = जिन्होंने – ७,८६,३२६,६६६

जिहि = जो – ३७२, ४८६

जीउ = जीव – २२६

जीउदेव – जीवदेव – ४६, ४७२

जीन = जीतना – ३५८

जीति = जीतकर – १३०

जीतु = जीत – ३२७

जीव = – ६, ४५, २३१ आदि

जीवइ = जीवित रहना – ३८८,४७६

जीवउ = – १५६, ४७६ ४७७

जीवकहु = सपेरा – ४८६

जीवदया = प्राणियों की दया,

जीवदे = – ४७५

जीवदेउ = जिनदत्त के पिता का नाम – ४५, ६०, १०८, ११३,१३१,१५६ ४७३, ४८१, ५०७, ५३४

जीवदेव = जिनदत्त के पिता का नाम – २५७,२६१,३१८,३८६,४८६

जीवरखहु = – ३७

जीवजस = जीवजसा (सेठानी का नाम) – ४५, ४६, ३८६, ५०७

जीहु = जीव ४०१, ४७६

जुगल = युगल, दोनों – ६२

जुझ = युद्ध – ४७१

जुत्तु = – ५२२

झूठी – ४०३, ४०८

झूठे = – ३५०

झखहि = बक बक करना ३०६

झप = कूदना – ३७८

ट

टलीय = छोडना – ३०७,

टापुणु = – ४०५,

टेकि = टेकना – ३४६,

टेव = आदत – २११,

ठ

ठइयो = ठहरना – २६६,

ठई = – ७७,

ठए = – १३५,

ठणवइ = नमस्कार करने योग्य–१६,

ठयउ = स्थापित किया – १७६,२१८, २८७,

ठवण = – १६२,

ठवणु = स्थान – १०४,

ठव्विणु = लगा रहना – ६८,

ठा = स्थान – १५१,

ठाइ = स्थान – २२, ३४, १४६, १७२, आदि

ठाउ = स्थान – ६, ३१, १०३, आदि,

ठाट = गौरव के साथ – ३५२,

ठाठा = – ४४४, ४५६,

ठाडउ = खडा – २६७,

ठाढउ = खडा कर दिया – ७६,

ठाण = स्थान – २५२,

ठाणु = ठान कर (निश्चय करके) – ३६४, २८०,

ठाणे = स्थान – ६५,

ठार = – २१०, २२८,

ठालउ = वेकार – ३३६, ३४३,

ठाली = बेकार – ३३६, ३४३,

ठाहरि = ठहर कर – २०१,

ठाहो = – ३४२,

ठिए = – १७०,

ठिय = – २६८,

ठेट = – २४३,

ड

डगडगाण = डगमगाना – २४८,

डराहि = – ४६३,

डरि = डर – ३४६,

डसण = दात – ३४६, ३७८,

डसणी = – ६७,

डहउ = जलना – १३

डही = घोषणा – ३४८,

डाढी = डाढी – १२२,

डाहउ = कष्ट देना – २३०,

डाहु = दाह (चिता) – ८२,

डोकरी = वृद्धा – २१५,

डोम = – २१७,

डोमु = चाडाल – २१२, २३२, २३३,

डोर = डोरे – १०६,

डोलइ = डोलना – ४०१,

डोला = – १२२,

डोगर = पथरीले टीले पर्वत – ३४८,

ढ

ढलइ = पिघल जाना – १०१,

णाणि = गिराना – १८६ ४२
णीकुसि = – ४५७

ण

णइ = – ४८८
णमि = नमिनाथ – ७
णमिउ = नमस्कार करना – ४११
णमोयार = णमोकार मंत्र – १५८
णय = – ५२
णयण = नयन – १ ४८६,
णयणु = नयन – ३१७ ४८४
णयरि } = नगर – २२२, २६१
णयरी } = नगरी – २६६, १४५
णयर = नगर – ४ ४०२
णर = – ४२१ ५१४
णरइ = – ४९७
णरणाहु = – ४७१
णरयहि = – ४२७
णरवइ = नरपति – ४१६, ४३६
णरु = नर – १४
णरेंद = नरेन्द्र – २६८
णव – नी – ११५
णवइ = नमस्कार करना – ८
णवगह = नवग्रह – ११
णवहि = नमस्कार – १ ४४
णवि = – ४२१
णविवि = नमस्कार – १
णहवणु = अभिषेक – ५२
णह = नभ – ६५
णहयर = – ११०
णहि ० निश्चय से – १०
णहु = नहीं – ४ २

णाइ = नाम – ३१ ४४
णाउ = नाम – ५१५
णाण = ज्ञान – १८ ५२१ ५१८
५७१,
णाणवंत = ज्ञानवंत – ५२५,
णामे = नाम – ५२७
णासइ = नष्ट करना – १४१
णासि = नाश करना – ७
णाहु नाथ – ११ ४८१
णाहिणरेसर = नाभि नरेश्वर – १
णाही = नहीं – १५४
णाहु = नाथ – ४२ ४२१
णांकव = अपराधी – ३५
णिआसि = निवास – ५२७
णिक्कारणि = बिना कारण – ५४५,
णिम्मवियउ = निर्माण करना – ३११
णिय = निज निरय – ५७ १८
११ १५८ २९१ ३१८ ५४४
णियमणि = निज मन – १६२ ४१६
५३६
णियरे = पास – ७
णियाणु = निश्चय – ३१४ ५३१
णिरास = निराश – ५ १
णिरु = निश्चय से – ५८ १११ २६०
४३६ ५१६ ५२६ ५४५
णिरजण = – ४६२
णिसिहु = – ५३४
णिसुण = सुनो – ४० ५३६
णिसुणई = ") – २
णिसुणहु = सुनो – ३२ ९६६
णिसुणहो = सुनो – ४ ४३
णिसुणि = – ८३ ११४ ४ १

त

दहगा = अग्नि, जलाना – १२,
दहदिह = दशो दिशाएँ – २६५,
दहिउ = दही – ४२४,
दक्षिण = दक्षिणी २७०, ४६०,
दाइजी = दहेज – १२६,
दाइजे = – २३६,
दाइजो = – ४४५,
दाइजौ = – २८५,
दाउ = दाव – १२९,
दाख = – ३३, १७१, ४१२,
दाडिव = दाडिम (अनार) – ४१३,
दाण, दाणु = दान – ४५, ४८, ५०, ५०४,
दातलय = हसिया – ३७८,
दान, दानु = – १४०, २८५,
दानि = दानी – २७९,
दाम = कीमत – ३४, ६१, १०३, मुद्रा, १२६,
दामु = एक सिक्का – ७२, ८२,
दारिदह = – ५२९,
दारिद्द = दारिद्र – २७९,
दारुण = भयकर – २२५,
दास = – १६७, २४४,
दासि = दासी – ८३, ११९, ५४२,
दाहिण = दक्षिण – ३०,
दिए = – १८४,
दिखाल = दिखलाया – १०५,
दिखालइ, दिखालहिं = – ७०, २३५,
दिखु = दिखलाई देना – ३५३,
दिठ = दृढ – ४८२,
दिठउ = देखी – २२४,
दिठि = दृष्टि – ७१, ७७, १००, २८६,
दिठिय = देखी – ९०,
दिठियउ, दिठियऊ = देखा – ११४, १५४,
दिठु = देखी – ८५, ४८७
दिठु = दिखाओ – ३२६,
दिढ-मतु = दृढ मन्त्रणा – १०३,
दिण्ण = दिया – १२६, २२२, ४१८,
दिण्णु = दे दिया – १९, ४४४, ४४५,
दिन, दिनु – ५९, १२७, १५१, २११, ३३७,
दिन्न = दिये – २३९,
दिन्नु = दिया – २९५,
दिपइ = चमकना – २४, ४४, ९८,
दिपहि = चमकना – ४१, ८६, ९५, २९६,
दिपे = – ३५०
दियइ = दिये – २९५,
दियउ = देना – ८२,
दिवपालु = – १८१,
दिवस = दिन – ६३, ३४८,
दिवसह = दिन मे – ५०२,
दिवसी = दिवस – ३४०,
दिवाइ = दिलाना – ३८३, ५१५,
दिवाए = – १७०,
दिसाटणु = रातदिन – ३३८,
दिस = – ४६१, ४७०,
दिसइ = दिशाएँ – ३०९,
दिसतर = देशान्तर – १३९, ३६३, ३८७,
दिसतरु = देशान्तर – १४०, ३८८, ३८९, ४०४,
दिह = दिशा – ४३९,

२६१, २६६,
देखहु = – ११५, १३३,
देखालियउ = दिखाया – २७,
देखि = देखकर – २२, १००, आदि,
देण्ण = दैन्य – ११२,
देव = – २११, २१६,२३५, आदि,
देवति = देव – २६३,
देवलु = देवल – ३८१,
देवि = देवी, देकर, ११ ५१२,
देश = – १८६, ४५३,४५६,
देस = देश – ८५, आदि,
देसासु = सास रोककर –' १६२,
देसि = – ५२७,
देसु = देश – ३१, ३२, आदि,
देसतर = देशान्तर – ३२४,
देह = शरार – ६४, ६६, आदि,
देहि = दत थे – २३, २४, आदि,
देहु = देवें , दवा – ८०, आदि,
दाइ = दो – ४५६,
दोइ चारि = दो चार – १५१,
दाउ = – ५०५,
दोपु = – ४६५,
दास = – ५४८,
दोसह = दोप – ७,
दोसु = दोप – २०, २१, आदि,
दड = – ३५, ३५३, ४६५, ४७२,
दडु = – ४७०, ४७१,
दत = दात – ४०६, ५३६,
दतूमालि = दातोवाला – ३४५,
दतमरि = पुष्ट दात – ३५८,
दतसूलि – पुष्ट दात वाला – ३४७,
दता सेठि = – १८६,
दसण = दर्शन – ३८,
दसणु = दर्शन – ५२३,
दांत = – ४०७,

ध

धण = धन – ३६, ४७, आदि,
धणकण = धनधान्य – ८६,
धणदत्तु = – १८०,
धणदु = कुबेर – १२,
धनदेउ = – ५२७,
धणवाहण = धनवाहन-नाम – २०२, २१६,
धण्ण = धन्य – ११३,
धणी = धनी – ६३, आदि,
धणु = धनुप – ६८, आदि,
धणु देइ = धनदेय – १८४,
धध = – १८३,
धन = द्रव्य – १३५,
धनु = धन – १६४, १८५,
धन्नी = स्त्री – ३६६,
धम्म = धर्म – १, २१, २७, आदि,
धम्मु = धर्म – २, ३४, आदि,
धम्मुद्धरण = धर्मोद्धारक – १,
धर = धरकर – ८, २२६,
धरइ = धरना – ५१,६२, आदि,
धरण = पृथ्वी – ४५३,
धरणिंदु = धरणेन्द्र – १२,
धरमु = धर्म – ४८, १४०,
धर्मपुत्र = धर्मपुत्र – १७६,
धरहि = लेकर – १८७,२४५, ४४१,

निरमणु = निश्चित मन में – ४४
नियाण = निदान – २६१ ४८
नियत = निश्चय – १४१
निर्बसि = निवसिनी – ५४१
निरकरइ = निश्चय रूप से करना – १५८
निरखहि = देखना – ४२१
निरखे = देखे – १५१
निरमतु = – ५१८
निरवासी = उलझने वाली – ११६ १४१ १४१
निरवासु = न रहने योग्य – १४७
निरविस = विष रहित – – –
निरासउ = – ४०६
निव = निश्चित ही – १८ ५२ ५१ ६८ १८६ आदि
निरत = – ४६७
निरत = – ५५१
निवमाति = मामाव – ५४२
निरहुइ = वराहीन – ५४
निसत = – ४ ६
निवडइ = व्यतीत होना – २११
निवरइ = रहना – ४६
निवा पु = निवास – १५४
निव्वाणु = – ५५८
निवास = नवर्मान – ४१२
निवारइ = दूर करना – २ ६,
निवारिउ = मना करना – –
निविमणु = निविकार – ५४६
निस = रात – ११५
निसाण = निसाना – ४५१ ५ १ ५१८,
निसि = रात्रि – २०१,
निसिमोव = ११८
निसुण = सुनो – ११६ २६१
निसुणहि = सुना – ८५ ४०५,
निसुणाव = सुनकर – ११५,
निसुनहि = सुनो – १ ८
निसंगु = निःशंक – २१२
निसु महु = मार डालना – ४ ४,
निहुर्य = निश्चय से – ११७
निहालु = निधान – २६२, २८८
नीकउ = मच्छा – १११ १५ २१४ २६५ आदि
नीकी = मच्छी – २२४
नीको = मच्छा – ११२,
नीत = – ५ ७
नीद = निद्रा – १६
नीवउ = निन्दा करना – २१६
नीर = पानी – १६४
नीर = नीर-पानी – ११८
नीरहु = जल में – १४१
नीलामणि = – ४४५,
नीले = नीले वर्ण वाले – ६१
नीव = नींव – १६६
नीसरइ = निकली – २ २२६ ४५६,
नीसरमो = निकला – ११६
नीहरिउ = बचे – ११७
नेउर = नेवरी – ६१
नेत = नेत्र एकरेशमी कपड़ा – ४६ ७ १,
नेमु = नियम – ९ ५२१
नेवाडउ = निवारिका – १७४

नेहु = – ५२६,
नदरण = पुत्र,-नदन – ६०,
नदरणवरणु = नदनवन – १५१,
नदरणु = पुत्र – २६१, ३१८,
नदन = पुत्र – २५७,
नदनि = पुत्री – ८६,
नदनु = पुत्र – १५६,
निंद = निद्रा – २२४,
निंदइ = नीद मे – २२७,
निंदा = – ५४६,
निद्राभूती = निद्राके वशीभूत – ३४३,
नींद = सोना – ३०७, ३०६,
नींदमरिण = नीद मे – ३११,
न्योते = निमन्त्रण – १२०,
न्हवरणु = अभिषेक – १५२,
न्हाति = नहाते हुये – १०२,

प

पइ = पहिले के – ५८१,
पइठ = प्रस्थान किया – १२२,
पइठउ = जाना – ४१०,
पइठारण = प्रतिष्ठान – ४०६,
पइठिउ = पहुँचना – १५४, ४८८,
पइठी = बैठी – ३८४,
पइठू = बैठना – ८५,
पइमिति = परिमिति – ५३३,
पइरतु = तैर रहा – २६६, २८३, ३४२,
पइसरइ = प्रवेश करना – २०३, ४८६, ५३६,
पइसरहि = पास – ४५६,
पइसार = प्रवेश द्वारा – १६०,
पइसारि = प्रवेश – २६६,
पइसारिउ = पीछे छोडा – १६७,
पउसि = प्रवेश कर – २२८,
पउ = – ५५१,
पउमप्पउ = पद्मप्रभ – ४,
पउमराइ = – ४४५,
पउलि = पौल – ४५७, ४६०, ४६१,
पखालित = धोये हुए – ४६६,
पगार = प्राकार – ८७,
पच्चखु = प्रत्यक्ष – ४०, ४३३,
पचार = पुकार कर – २६२,
पचारहि = ललकारना – २१६,
पचारि = पुकार कर ३५२, ४५६,
पच्चारि = प्रताडना – १३०,
पच्चारिवि ललकारना – २२७,
पच्छण्णु = प्रच्छन्न – १५४,
पछतावउ = पश्चाताप करना – २२०,
पछिम = पश्चिम – ४६६,
पज्जोवहि = प्रकाशित करना – ५४२,
पटतरइ = तुलना – १०२,
पट्टय = – १०६,
पटवा = रेशमी वस्त्र बुनने वाला – ४३,
पटोली = – ४११, ४६०,
पटोले = रेशमी वस्त्र – १०३, ६१, ५०३,
पटोलो = – ४२६,
पट्ट = – ११२,
पट्टरिण = नगर – ३४४,
पट्टिया = पटिया – ६६,
पाठइ = भेजना – १४७,
पठवउ = प्रेपित किया – १३२,

पठाइ = भेजना – ८२
पड़ = पट-चित्रपट – १ ५,
पडइ = गिरकर – ६२ २१ २४२
१६४
पडतम = पड़ने पर – ४६१
पडवें = देना – ११७
पडहि = – २४६
पडही = पटही (बाजा) – १८
पडाइ = गिर पड़ा – १४
पडाइरद = ‥ ‥ – १६१
पडि = चित्रपट – १ ४ १ ६
पडिउ = पड़ना – ७६ ११४ ११६
११७ ‥ ‥‥भाति
पडिगाहि = ‥‥ ‥‥ – ६११
पडिच्छती = गिराकर – १२७
पडिमाइ = प्रतिमा – ५२१
पडियउ = पड़ा – २ ५
पडिहार = प्रतिहारी – ४६७
पडिहार = ‥ ‥ ‥ – ४६८
पड़ी = गिरी – ११ ५५, ४२७
पड = चित्रपट – ‥ ‥ ‥ ‥
पड = पड़ना – ४ ८
पड़ण = पढ़ने के लिये – ६१ १२६
पड़त = पढ़ते हुये – ६५
पड़ु = ‥‥‥ = ५१४
पढ़िजन = नहीं पढ़ा है – २
पणवइ = प्रणाम करते है– १५ ६६
पणवउ = प्रणाम करता हूँ– १ ७८
पणमउ = प्रणाम करता हूँ–११ १२
पणाम = – १६६
पणाठी = नष्ट करना– १०१
पणोन = प्रनि– ५ ०
पत = – ११२
पतइ = पात्र– २ ४
पताका – – ११२
पताल = पाताल– २४१
पतालहि – पाताल– ११७
पतिआर = विश्वास– १ १
पत्ति = पत्नी– ५५
पतीयइ = विश्वास– ११६
पद = – ५२
पदमनि = पद्मिनी– १ ० २७४
पदमावती = पद्मावती देवी – १
२७३
पदारथ = वस्तु (रत्न)– ८६
११२ ११५
पदार्थ = – १८७ २ ६
पदोम = मजबूत– १७
पम = – २८६
पमणइ = कहने लगा– ४७
पमणेइ = ,, – २११
पमणेवि = – ६६
पमणेहि = – ९६१
पमाए = प्रमाण– २४
पमाणु = प्रमाण– ६ ५५ ५५१
पमुह = – ४२६
पय = पद चरण– ८ १४ २५
१६६ ५२४ ५१
पयइ = प्रकट– ६
पयडेनहु = प्रतिपादित करना– ९१
पयडनि = प्रकट करती है–९८
पयत्थ – पदार्थ– ५२२
पयदम = पैदल– ४५०
पयगाइ = पद गाना– १६०

पयपच = पंच पद (पञ्च परमेष्ठि)– २५३,
पयार = – ५२४,
पयासहि = प्रकाशित– ३७१,
पयसित = प्रवेश होकर– ३५४,
पयी = पैरो मे– ६२,
पयड = प्रचण्ड– १६४,
पर = अन्य, लेकिन– ४२, ४७, १११, १६४ आदि
परऐमिय = परदेशी– २२३,
परकम्म = पराक्रम– ३६२,
परखि = परीक्षा– ८१,
परछण्ण = छिपा हुआ– ३७१,
परछनु = प्रछन्न, छिपकर– ३०८,
परजा = प्रजा– ३५, ३६६, ४७१,
परठइ = प्रस्थापित किया– ५०७,
परठइय = भेजना– ४२२,
परणाइ = विवाह करना– २३६,
परणारि = परस्त्री– ३५,
परणी = व्याही, विवाह किया– ३६०,
परणेइ = विवाहना– ३८०,
परतह = प्रत्यक्ष– ३२,
परतिय = दूसरी स्त्री– २१४, २५७,
परतिपु = प्रत्यक्ष– ४२४,
परतीर = समुद्रपार– १७६, १७६,
परतु = – ४२७,
परतूस = प्रतोष, सन्तोष– ३०१,
परदव्वह = परद्रव्य– ६८,
परदेश = – ४६२,
परधान = प्रधान– १८८,
परनारि = परस्त्री– ६८,
परम = – ५३८,
परमप्पउ = परमात्मा– ५४६,
परमप्पा = परमपद– ५२१,
परमेठि = परमेष्ठि– ५२, ४७३, ४८७, ४६३, ४६४,
परवाणि = प्रमाण– १०३,
पखालि = धोना– ५३८, ५४७,
परलोप = परदेश– २२२,
परसइ = स्पर्श करना– ८,
परसन्नी = प्रसन्न होओ– १६,
परह = दूसरो की– ५०,
परहस = प्रसन्न– १४५,
परहसु = परिहास– २२२,
पराई = दूसरो की– १४१, २१४, ३६५,
पराण = प्राण– २५२, ३०४, ३१४, ३५७,
परि = गिरना– २४१, ४०२, ४६७,
परिखा = खायी– ४५८,
परिगहु = विश्वास– ३५०, ४६०,
परिजा = प्रजा– ४५६, ४५७, ४५८, ४७०, ५०५,
परिठइ = रखना– ३३४,
परिठविउ = परिस्थापित– ६६,
परिणइ = परणाना– ३४६, ३७२,
परिणाई = – ४४४,
परिणाम = नतीजा– ३७६,
परिणामु = नमस्कार– ५१५,
परिणावहि = विवाह करो– २८४,
परिणाविय = विवाह किया– २८५,
परिणिय = विवाही– ३६०,
परिणेइ = परणी, व्याही– २५६,
परितहि = पडते ही– १६६,
परिपुण्ण = परिपूर्ण– ५०६,

परिमइम = अनुरक्त– ४६०
परिमाणु = परिमाण– १६४
परियणु = परिजन– ४७ ११ १६४
परिया = पड़ा– ४६ १४२
परियाणि = ~ ~~~ ~~ ~ – ५१२
परिरत्त = अनुरक्त– ५४४
परिवाणि = प्रमाण १४
परिवार = – १ ४
परिवारहु = ~~ ~ – ५११ ५१५
परिवारई = कुटम्ब– ४५,
परिवारु = परिवार– ४ १
परिसिउ = ~ – ४६६,
परिसिय = स्पर्शकर– १६६
परिहुरउ = थोड़ा– १६७
परिहरहि = दूर करते हैं– १६६
परिहरि = परित्याग कर– ५ १५८
परिहासु = परिहास– १५६, १६३
१७४ ४ १
परिहारि = प्रतीहारी– ४६५,
परीक्ख = परीक्षा– १८७
परीति = प्रीति– ४४१
परु = – ४२६
परतसु = किन्तु उसे– ४७३
परोहणु = बहाम– १८६, आदि
परपरु = परम्परा– १६६
पलइ = प्रलय– ४७
पलाइ = भावना– २१
पलाणी = पलाणा– १२१
पलाण = भावना– ४२१
पलारि = पलाना (भागना)– १४९
पलाव = प्रलाप १५६,
पलावे = – २ ७

पवण = पवन– १६२
पवाणु = प्रमाण– ४५१
पवासी = ~~~~~ – १६८
पवाहु = ~ ~ – ५
पवाहु = प्रवाह– १
पसण्णु = प्रसन्न– ५ ६
पसाइ = प्रसाद कृपा– ४६६
पसाउ = पुरस्कार में– १६ आदि
पसारउ = प्रसार करता हूँ– २२
पसारि = फैलाकर– १ १८६
४६
पसगि = प्रसग– २८
पसंसु = प्रशंसा– ५
पहर = – २६६
पहरण = कपड़ा– २१८
पहरियउ = पहनना– २१८
पहरु = पहर– २१७ १ १ ५६
पहाण = पत्थर, प्रधान– १६२
पहारहि = प्रहार– १५८
पहाँ = पास– १३९
पहि = पै– १६६,
पहिमइ = पथिक– १६,
पहिया = पथिक– ११
पहिरइ = पहिने हुये– ६६, २ १
२११ २१२ २२१ २२४ २२५,
पहिरउ = पहरा– २ ५, २१६ १
१ १
पहिरि = पहिन कर– ११२
पहिलउ = – ५४४
पहिलउ = पहला– १
पहिले = – ४७४
पहु = प्रभु पर– ६ १५८ १२५,

बहुती = बहुत प्रकार से,– ११३,१६०,
बहुतक = बहुतेरा – १८४,
बहुतु = बहुत – १६६,
बहुते = – ८८८,
बहू = – ४५५,
बहृत = बहुत – १६२,
ब्रह्मा = – १०७,
बाढइ = बढा– ६२,
बात = – ११७, १३२, आदि
बाधइ = – ४७६,
बाप = पिता – २४२, ३८८,
बार = देर, समय – ११४, १२४,
बार-बार = – ७०, ३२५,
बारह = – ४१६, ५०१,
बाल = मजरी – १८०, २३०,
बालकहु = बालक – १४८,
बावणउ = बौना – २२५,
बांधि = बांधकर – २८०,
बाहु = भुजा – ४५६,
विज्जाहरु = विद्याधर – ३४२,
विलखाहि = विलखना – ५६,
विंबु = प्रतिमा = ५४,
बीसा = बीस – २००,
बुधि = बुद्धि – २१, २७, आदि
बुरी = – २०६, २११,
बुलाइ = बुलाना – १०४, १०६,आदि
बुलाये = – ६६,
बुलालउ = बुलाना – ३३७
बुलावहु = बुलाना = ४२०,
बूड = डूबना – ४८,
बूडउ = डूबा हुआ – २६०,
बूडणहारु = डूबने वाले – ६७,
बूढण = वृद्धा को – २१६,
बूढी = वृद्धा – २०६,
बेधिउ = बेधना – ७६
बेर = बोर – १७२,
बैठ = – १४१,
बाल = – १११, आदि,
बालउ = – ५६, आदि,
बालगोल = – ३६४,
बोलि = बोलना – २३०,
बगालि = बगाली – २७०,
बंदियइ = वंदना करना – ५०,
बंध = बांधकर – ४७०,

भ

भइ = हुइ – १०१, ३०६, ३८२, आदि,
भई = होगई – २३४, १६०, आदि,
भउ = हुआ = ६६, आदि,
भउभाउ = भेदमात्र – २५०,
भउह = भोहे – ६८,
भगति = भक्ति – ११७,
भड = भट, योद्धा – ३८८, ४६०, आदि
भटराउ = योद्धा – ४६६,
भडवाह = भटराज – ३४६,
भडारी = भंडारी – १३२,
भण = कहना – ५५, २५१,
भणी = कहलाना – ८६, २७१, आदि
भणेइ = कही – २७२,
भणताहि = कहते हुये – २२३,
भत्तार = भर्त्तार (स्वामी) – ४१४,
भत्तारु = भर्तार (स्वामी) – २५७,

म

महमहणु = मधुसूदन – १०७,
महरू = – १८१,
महघी = अधिक मूल्य वाली – १७६,
महा = – ५३१,
महापुराणु = महापुराण – ६४,
महाबल = महाबलवान – ११८,
महामति = – १८३,
महामत्र = – ४६२,
महावतु = महावत – ३४५,
महावत्थु = महावत – २४५,
महि = मध्य मे – ७६, २४२, आदि,
महि मडल = पृथ्वी मडल – ८६,
महियलि = पृथ्वी पर – २,
महिलइ = मध्य मे – २६४,
महिष = भैसे – १८६,
महु = मेरी – ११, १६, २० आदि
महाछउ = महोत्सव – ५७,
महोवहि = महोदधि – २५६,
महावेगु = महावेग – २६१,
महत = – ४५७,
महतु = बडा – ४०६, ५१३,
मृग = हिरन – ३७६,
म्हारउ = मेरा – ४६७,
म्हारिय = मेरी – १५०,
म्हारी = मेरी – २४६,
माइ = माता – १६, २७, २८, आदि
माईयइ = समा जाना – ६२,
माखइ = – ४८५,
माग = – ६८,
मागइ = मागना है – ४६६,
मागह = – ४७५,
मागि = माँगी – ३३०, आदि,
माझ = मध्य – २३३,
माझिझ = मध्य मे – १५३,
माटी = मिट्टी – ३४७,
माठी = सुडौल – ६६,
माडियउ = तैयारी करना – ४८०,
माण = मान – २३, ३५७,
माणसु = मनुष्य – २११, २२७,
माणिक = रत्न – ४१, १३५,
माणिवि = माणकर – ५३४,
माणु = मान – ३६,
माणुसि = मानवी – ३३३,
माणुसु = मनुष्य – २२१,
माता = माँ – २७, २८, ३८६,
माति = सीमा – ५११,
माथे = मस्तक पर – १६२,
मानइ = मानकर – २६१,
मानहि = मानते थे – ४६१, ५०४,
माय = माता – २६३, ३८६,
माया = – ५३६,
मायारु = माया – ३६,
मारइ = मारना –
मारउ = मारूगा – २२८, २३०, २६५
मारण = मारना – ४४,
मारणु = घात – ३६, २६४,
मारि = घात – ७१, १००, आदि,
मारिउ = मारना – २२३,
मारु = मारे – २६३, ४५७,
मारुवेग = वायुवेग – २६१,
मारोगा = – २७४,
माल = माला – २१८, २४१, ३७४,
मालती = – १७३,

मासिरा = मासिन – २११ १६५,
मासिणि = – २ ५ २ ६
मासिरिणस्मौं = मासन ए – २१५
मासिन = – २ ६,
मामी = एक जाति – ४१
मास्हती = मौता पूर्वक – १ १
मास = महीने – १७ ५६, आदि
माह = में – ११९
माहि = मे – १४ १८ आदि
माहिनउ = मारना होना
माही = – २२८
मांमउ = मागता – ११३
मांगिमउ = – – – ४१२
मांझि = मध्यभाग – १५३
मांडे = – ४१२
म्हारो = हमारा ८ १
मिच्छी = मिथ्यात्व – ५४६
मिटावहि = – ४६८
मिठिया = मधुर – २२१
मिमि = – १५६
मित्र = मित – ४ २
मिगलायणि = मृग नयनी – ६७
मिगइ = मिमना – १९५ १५१
मिलवहि = मिलाना – ४ ७
मिलवइ = मिलकर – १६२
मिलहि = – – – – – १८१
मिलि = मिलकर – १२२ आदि
मिमिउ = – १२१
मिमिए = – १८७
मिमिय = मिल गये – ४६९
मिमियउ = – ४ ८
मिमी = – ६ १८६

मिसे = – १५,
मीच = मौत – २१४ – आदि
मीचु = मृत्यु – ४२ ५११
मीठू = मीठे – ४२४
मीनु = मीन (मछली) – १६
मुकउ = मरा हुआ – २११
मुक्के = मुक्त – ६
मुख = – ४१६
मुखी = मुखवाली – १५७
मुठि = मुट्ठी – १८ ७१
मुणइ = – ४४१
मुणउ = जानो – २६६ ५५२
मुणसु = मनुष्य – २६५
मुणसाइ = मनुष्यता – २६४
मुणहु = – ५१७ ५४८
मुणा = मरने पर – २५१
मुणि = जानना – ६४ ५१
मुणिजन = नहीं जानता – १६४
मुणिवर = मुनिवर – ५५, ५७ आदि
मुणिसइ = – ४४५
मुणिसुव्वा = मुनिसुव्रत – ७
मुणिई = मुनिवर – ६९
मुणिद = – ५९ ५२१
मुणीसर = मुनीश्वर – ५११ ५१७
मुत्तारवी = – २८७
मुत्ताहल = मुक्ताफल – ११५, ४४२
मुत्ति = मोक्ष – ५१ आदि
मुदिगर = मुद्गर – १६१
मुह = मोह – २९१
मुनि = – ६६ ५१४
मुनिउ = – ४६४
मुनिनाह = मुनिनाथ – २ ६,

मत = मंत्रणा – २४८ आदि
मति = मन्त्री – २ ५,
मंतिहि = मंत्रियों – ११६ आदि
मंदर = महल – १६
मदार = – १७४
मंदिर = प्रासाद महल – ८६
मंदोदरि = मंदोदरी – २७५,
मस = मांस – १६,
मसु = मांस – ५१८
मन्त्र = मंत्रणा – १६४
मंत्री = मन्त्री (सचिव) – २ १
१६८ ४११

य

यह = यहां – ४१२ आदि
यह रही = हरी होना – १६४
यहि = – ११६
यों = इस प्रकार – १७

र

रई = रची – १६८ – – आदि
रउद = रौद्र – ५२२
रखहि = – ४१२
रचउ = रचना करना – ११
रचीय = – १२५
रचे = – ४२७
रजउ = – १८१
रजह = रजन – १२५,
रजिवह = रोमें सभी – १२४
रति = युद्ध में – ५१६,
रपु = – ४८
रतन = – ११२
रतिपति = कामदेव – ५४१
रथनुपुरि = रथनुपुर – २१७
रमइ = रमने लगे – ७१ ७६
रमामयु = रामायण – ६४
रचय = रचना करना – २५ ५५
रयण = रत्न – ४१ ११४ आदि
रयणु = रत्न को – २१८
रयणह = – ४६
रयणाइ = रत्नादि – ५२१
रयणसह = रत्नों को – २४१
रयणि = रात्रि – १ ७
रयणी = रत्न – २११
रयणु = रत्न – २६२ १७१ आदि
रयवर = काम – ५१६,
रयह = कवि का नाम – १५ आदि
रविभाम = सूर्य के प्रकाश में – १७६
रस = – ७६
रसण = रसना – २८८
रसु = रस – २८८
रम्या = रमा – ११
रहइ = – १२१ १५ आदि
रहणु = रहना – २२४
रहस = मुख – १६५
रहहि = रहना – २८८
रहावइ = सान्त्वना – ११६
रहि = – ४६१
रहि = उरना – २७ – आदि
रहिय = रहना – २२८ – आदि
रही = रहना – १६१ – आदि
रहु गइ = चल रहो – २१५ २१ २६६
रहे = रहना – १७ १४८ आदि
राइ = राजा – १६१ आदि

राइचपउ = रायचपा – १७३,
राइण = राजा – २१०,
राइसिहि = राजसिंह कवि – २००,
राइसिहु = राजसिंह (रल्ह कवि)–८,
राइसीह = राजसिह – ४३६,
राइसुन्दरि = राजसुन्दरी – २२२,
राउ = राजा – ४, आदि,
राउमति = वुद्धिमान राजा – ४६३,
राख = रखी – ४६०,
राखहि = रखता है – १४०,
राखहु = रक्षा करो – ४५६,
राखि = छोडकर – २६२,
राज = राज्य – १२७, ४१३,
राजथाणु = राजा का स्थान – ४०,
राजनु = – ४६५, ४६६,
राजभोग = – ५११,
राजा = नृपति – ४०, ४१, आदि
राजासइ = राजा स्वय – ३५१,
राजु = राज – ३२, आदि
राणि = रानी – २६८ आदि
राणी = रानी – २०२ आदि
रातहि = रात्रि को – ५०२,
राति = रात्रि – २१०, २६६, ३००,
रामा = – २७८,
राय = राजा – २२३ आदि
रायणु = राजन् – २३८,
रायप्हु = राजा – ४८०,
रायसिउ = राजसिंह – २६८,
रायसिह = ,, – ५४७,
रायसोय = राजा अशोक – २६५,
रायस्यौ = राजा से – २१६,
रालि = डालना – २४१ आदि
रावत = राजा – ४५२,
रावलि = राजा – ४२२,
रासि = समूह – ७, ८३, ११६,
राहणु = – ५२८,
राहाइ = रहा – ३४०,
राहु = – १३,
रिसउ = – ५२७,
रिसहाइ = वृषभादि – १,
रिसहु = वृषभनाथ – १,
रिसि = ऋषि, मुनिवर – ५८, ६२,
रिसीस = ऋषियो के ईश – ३,
री = अरी – २०७,
रीती = – ४४२,
रुउ = रूप – ५३८,
रुदन = – २०८
रुधित = धारण किया – १५४,
रूप = सौन्दर्य – ८४, आदि,
रूपजा = रूप मे – ८३,
रूप निवासु = रूप का निवास – ४१,
रूपरासि = रूपराशि – ६०,
रूपसुन्दरी = – २७३,
रूपष्टि = रूपकी – ८३,
रूपाहे = – २७१,
रूपिणि = – ४२६
रूपु = रूप – १००, १०४,
रूलइ = हिलना – ६८,
रूव = रूप – ४६, ६० आदि
रूवडउ = सुन्दर – १६६ आदि
रूवडी = रूपवती – १११, ११७,
रूव मुरारि = रूप मुरारि – २७१,
रूवह = रूपवान – ४०१,
रूवहि = रूप की – ११६,

रूसि = कोभित – १ ६
रेख = रेखा – २७२ ४७२
रेवती = रानी का नाम – २७५
रेह = रेखा – ६४ –आदि
रोपि = रोपकर – ११५
रोपिउ = खड़ा किया – १६२
रोपियउ = – ४७१
रोय = – ३
रोस = रोसा (क्रोध) – ४२५
रोवइ = रोती है – १५४ आदि
रोवहि = „ – २१५ – आदि
रोवंती = – २२२
रोसु = रोष – २१
रोहणि = रोहिणी – १
रोहिणी कंतु = रोहिणी देवी के पति चन्द्रमा – १२
रग = – ६३
रंजणु = रञ्जायमान – ४५,
रंजावहि = रिझाते – ११५ ४ १
रंजि = रञ्जायमान (प्रसन्न) – २१
रंभ = रंभा – १७५,
रमाडे = – २७१

ल

लइ = लिया – ७६ ८ आदि
लइकर = लेकर – २१९
लइजाइ = लेजाना – १७५
लइवि = लेकर – ४११
लए = लिया – ४ ७ ४५१ ४६१
लक्खण = लक्षण – २
लक्खण = चिह्न – ५६ १ ४२८
लक्खण = लक्षण ४२१
लग्गु = लगा – २३
लग्गण = लग्न – १५६
लग्गु = लगना – ६७ ४५६
लग्गेण = लग्न – ११७ १२४
लग्गु = मुहूर्त – ११२
लग्गि = लगी – ५४७
लग्गिउ = – ४६६
लच्छि = लक्ष्मी – ११६ – आदि
लच्छी = लक्ष्मी – ५१८ – आदि
लज्जालु = लज्जाशील – ६६,
लज्जविणु = बिना लज्जा के – ६८
लट्ठि = – ४१४
लद्धउ = प्राप्त किया – २५८,
लयउ = लेकर – ५३ ६४ आदि
लये = लिये – ४५१
लयो = लिये – ११७ आदि
ललाट = भाल – ६८
ललित = फली हुई – १ ६
लवइ = कहना – ४७५,
लवणिज = नवनीत – ५१८
लवणोवहि = लवणोदधि – १
लवम = लोध – १७६
लहइ = प्राप्त करना – २६४ आदि
लहेय = लेकर – ५१
लहुर = – २४७
लहुरि = – ६६४
लहिउ = प्राप्त किया – ५ ७
लहिय = प्राप्त करना – ५९६
लाइ = लाकर – ८ ११६ ४ १
लावइ = – १
लाकड़ी = लकड़ी – १७७
लाख = लक्ष – ७२ २ आदि

लावु = प० लाग्गु – ५५०,
लागइ = – १४८,
लागउ = लगता है – १०, ५१६,
लागि = स्पर्श कर – २४२, २५५,
लागी = – ११४, २४६, ३१७,
लागु = लगा – २३२,
लागे = लगे – ३६६,
लाग्यो = – २२७, आदि,
लाडि = लाड़ी – २७०,
लाणी = – ४४२,
लापड = लपट – ४७७,
लापसी = – ४१२,
लयइड = लगाना – १४३,
लाव = – ७५,
लावऊ = लाओ – ४७४,
लावण्ण = सुन्दर – ७८,
लावत = – ३५५,
लावहि = लाना – ३०६,
लावै = लगावे – ७२,
लिउ = लिया – २५२,
लिखइ = – १४६,
लिखत = लिखते हुये – ६५,
लिखतह = लिखते ही – १०४,
लिखी = लिखी हुई – ११७,
लिय = लिया – ४७२,
लिलाडेहि = ललाट पर – ७७,
लिलार = ललाट – २६०,
लिहाइ = लिखाकर – ११२,
लिगु = – ५४७,
लीए = – १८५,
लीज = लेना – ४८, ३२४,
लीणु = लीन – ४७०,

लीय = लेकर – ३३१,
लीलाग्ग = भोग-विलास –
लीलि = निगलना – १६५,
लीव = बालक – ६६,
लेइ = लेकर – ७६, १४७, ३७४, आदि
लेउ = – ४७०, ४७८,
लेख = – ११६,
लेखइ = समझना – ३४७,
लेग्गि = पत्र – १४६,
लेण = लेने को – १४६, ४२१,
लेत = लेना – ४११,
लेपसो = लेप से – ३३२,
लेहि = लेते है – ३४, १६२, आदि,
लेहु = – ८१, ४६६, आदि,
लोइ = लोग – ३२, आदि,
लोउ = लोग – १६६,
लोए = लोक – ४०३,
लोक = ससार, लोक – ८७,
लोकु = लोग – ३५६,
लोग = – २३५, ३११, आदि,
लोगु = लोग – ११६,
लोगुवागु = जन समुदाय – ३६६,
लोचन्न = लोचन – २८२,
लोटणी = – ४६८,
लोणु = नमक – १४०,
लोपहि = छिपाना – ३२२,
लोभिउ = लोभी – ३६६,
लोय = लोग – ४२, ३६६,
लोयण = लोचन – ४०१,
लोह टोपर = लोहे की टोपी – १६२,
लोहे मार = लोहे की मारी –
लंक = कटि – ६२,

संपट = सपटी – ४ १
सपटइ = संपटी – १२८
सतिय = सिये – ६
संद = – ४४६

व

वइ = – ४८१ ५४६
वइठ = बैठकर – १२२ ५४१
वइठ्ठ = बैठी – ४२१
वइद = वैद्य – १७
वइराइ = वैराग्य – ५१२,
वइरिउ = बैर – २२१
वइस्स = वैस – १८८
वइसइ = – ४६
वइसरइ = बैठ गया – १२६,
व^सारहु = बैठाना – ४२
वइसारि = बैठाकर – ११ ११६
वइसि = बैठकर – ७७ २२१
वउ = वपु (शरीर) – ६६
वउलसिरी = – १७१
वकार = 'व' से प्रारम्भ होने वाली – १७
वच्छ = वत्स – १४४ ३६२
वज्ज = वज्र – २८८
वज्जणी = वज्रणी – २८८
वज्जरिउ = – ५२२ ४२४
वज्रु = इन्द्र का आयुध – ३११ ३२८
वट्ट = – ४७
वट्ट = – ४७६
वडइ = बड़ी – १४३
वडण = गिरना – ५१२
वडवानल = समुद्र की आग –
वडवार = बड़ी देर

वड्डहि = बदले में – ४११
वड्डा = बहुत – २६६
वड्डे = – ४६५
वण = वन – ७७, ११२ १४७ ५१
वणाली = – ५१
वण्णं = – ४४
वण्णइ = वर्णन करना – १
वण्णउ = वर्णन करना – ४
वणजारे = व्यापारी – १८७
वणमहि = वन में – १२७
वणपाल = वनपाल – ५१३
वणसई = वनस्पति – ५१४
वण्णिउ = – ६५,
वण्णियइ = वर्णन – ४ ६
वणिठु = महाजन – १७
वणिज = व्यापार – १७६
वणिजइ = वनज व्यापर – ४१ ४१५
वणिजारिहु = – २४
वणिजाए = व्यापारी – १८६ १६१
वणिजार = – १७
वणिवर = व्यापारी – १७७ १६१
वणिवइ = व्यापारी – १६६, ४७२
वणिजार = वणिक जन – २१६
वणिंद = वणिकों में इन्द्र – ५५४
(जिनदत्त)
वण्णी = – ४३१
वण्णु = वर्ण – ६२
वत्त = बात – ६८ २२१ ३६१
वत्ति = बात – ४६६,
वत्तीमइ = – ४११
वत्त = बात – २११
वत्थ = वस्तु = ११

बिमणो = बिनती – ४११
बिनु = बिना – ४६ ११४ ११५
बिनोद = रंजन – ६६ २८ १२८
बिम = – ६५१
बिमिमि = निकसती हैं – ५४२
बिपरितु = बिपरीत – १२६
बिप्पइ = बिप्र – ११२
बिप्पु = „ – १ ५ ११२
बिप्पुरिउ = बिस्फुरित – १
बिप्र = – ४४१
बिभ्रम = भ्रम – २८
बिभूपित = भूख रहित – १२६
बिमल = बिमलनाथ – ५, ११ आदि
बिमलमइ = बिमलमति (टी) – १ १ १५४
बिममसति = – ११७
बिमससेठ = बिममसेठ – ८१
बिमसा = – ४५
बिमलाएणु = – ५२७
बिमलामइ = बिमलामती – ४४४
बिमलामति = „ – १ १
बिमलामती = – ११८
बिमलाश्रेठिणी = बिमला नाम को सेठाणी – ८६,
बिमलु = बिमल – १२४ ११६ आदि
बिमलुमनि = बिममसती – १२७
बिमाए = बिमान – २११ ११७
बिमसन = बिमसणु – १४१
बिमगाइ = हँसकर – ११३ २ ६
बिमर्मित = बिर्मित – १६८
बिमगु = – १५१ आदि
बिमापि = व्याधि बीमारी – १

बियारि = बिचार – ५२१ ५२१
बियूर = पूरित – ३६
बियोइ = बिवेक – ५४
बियोम = बिरह – १७७
बिरति = बैराग्य – ६४ ९८
बिरच = वृद्धि – ६१
बिरमउ = बिरचित – ५५
बिरमउ = बिरमा – २१४
बिरली = – २१४
बिरसोरा = बिजौग – ४११
बिरह = बियोग – ४ – आदि
बिरिणि = बिरहिणी – ३१६
बिरुद्ध = बिरोध में – १५२,
बिरुद्ध = बिरुद्ध – १५
बिरूप = असुन्दर – १२८ ४ १
बिलसणि = बिलसणा – १ ७
बिलसाइ = बिलसते हुये – १२६ ११७ — आदि
बिलखाणिउ = रोते हुये – २१६
बिलखिपउ = – ४६८
बिलसीद = ? कर – २१
बिलसो = बिलसना – १५७ ४१८
बिलषहु = व्यतीत करना – १
बिलसाइ = भोगने लगे – —
बिलसहि = बिलसना – ४११
बिलसत = भोगता है – २६६
बिमादमी = – ११३
बिमाउनि = बनापुन
बिनाए = बिनाना – ४ १
बिमादन = देश का नाम – १ ६
बिमाण = – – ५ २ ५ ६
बिमाणपउ = बिमान नि – १ १

विलिखाइ = विलखना – ३१३,
विलका = विश्राम किया – १६०,
विवऊ = सविवरण – १०८,
विवहउ = विनिष्ट – ३२३,
विवहारु = व्यवहार – ६७,
विवाण = विमान – ४४७,
विवाणु = ,, – ३६६,
विवारी = – ३७,
विवाह = – ११६, १२६,
विवाहउ = विवाहना – ३६२,
विवाहणु = विवाह के लिये – १२२,
विविह = – ५३४,
विवुह = विवुध – २२,
विवुहजण = विबुधजन – २१,
(विद्वज्जन)
विवेय = विवेक – ५४१, ५४३, ५४४,
विवोय = वियोग – १५८,
विशाख = पुत्र का नाम – २२२,
विषम = गहरा – २५४,
विषमु = ,, – २५६,
विषय = विषयो मे – ६७, ७२,
विषयन – सुख (भौतिक) – ३०६,
विषयह = विषय पर – ६६,
विषे = मे – ३४,
विसउ = विश्व मे – ५२७,
विसमाउ = विस्मय – ४८६,
विसमु = विषम (भयकर) – ३४६,
विसय = विषय – ६८,
विसहर = विषधर (सर्प) – ३६६,
विसहरु = सर्प – २२६, २२६,
विसासु = विश्वास – ४२३,
विसाहण = खरीदने को – २०६,
विसाहि = खरीद कर – ३४,
विसीसु = विश्वाम – ४६६,
विसूरिउ = – ४६४,
विसेषइ = विशेपता लिये – ८६,
विहडि = विघट – २६३,
विहप्पइ = वृहस्पति – १३,
विहथउ = विलसना – ४११,
विहलघन = विह्वलाग – १०६, ११८,
विहसणदे = – २७३,
विहमाइ = हसकर – १६२, २१७, ३०१
विहसत = ,, – २१५,
विहाण = प्रात काल
विहार = जिन मदिर – ८७, आदि,
विहारइ = – ३७,
विहारह = – ३७,
विहारहु = मदिर मे – ३६५,
विहारि = मदिर – ३७, आदि,
विहारी = ,, – ३३८,
विहितहि = बहुत – ६१,
विहिवसेण = विधिवशात (भाग्यवश) – २५६,
विहीणु = विहीन – ३६, ३७३,
विहु = कुछ – २५६,
विदु = जानना – २३,
विंमई = – ४३१,
विंभउ = विस्मय – १०२, २२१,
विंभिउ = विस्मित – ८०,
वीकठ = – १८२,
वीचि = – १६६,
वीतराग = – ३५१,
वीती = व्यतीत – ३०७,
वीनती = प्रार्थना – २३७,

वीनवउ = विनती करना – १४५
वीपुमा = – १ ५
वीयराउ = वीतराग – ५२
वीयराय = „ – २५,
वीर = बहादुर – ७५ ~ ~ आदि
वीरणाहु = वीरनाथ (म महावीर)
– ८
वीरमदे = – २७६
वीरराइ = – १६१
वीरु = वीर – ७२ ~ ~ आदि
वीरन्ह = वीरों मे – ७७
वीसइ = – १८१
वीसहे = – १८२
वीस = वीस (२) – १६, ~ आदि
वीसमइ = विस्मृत – २१२
वीसरइ = भुलाना – ५ १
वीहु = वीनी – १५१
वुज्भि = – ५८१
वुठ = वुध – ११
वुत = – – १७
वुवा = – ४
वुलाइ = १२
वुलाव्य = वुलाना – १६१
वुसि = राजा – ४५२
वुह = वुधमान – १७ ४६
वुहयण = वुधजन – ५५
वूभ = वूके – १७८
वूड = वूवना – १६५
वूडि = – २४७
वूडिउ = डूबा हुआ – ७२,
वूडिवि = „ – १४१
वूड लिहि = – ५ ४
वूडपा = – २४८
वूडि = वृथा – २२२,
वेग = – २२८
वेगइ = शीघ्र – २६८
वेगि = „ – १६१ १६७ २ ७
वेखियइ = वेखना – १४४
वेटी = वेटी – १८१
वेठि = बैठना – ४६ ४७५,
वेठिउ = घेर लिया – ४५६
वेड = वाल – १६८
वेणानयर = वणा नगर – १६१
वेणासण = – १८४
वेण्णि = दोनों – ११५
वेधियउ = विह्वल – ७६
वेर = – १७२
वेल = – १७१
वेसि = सता – १५७
वेसा – १६८
वेसा = वेश्या – १७ ७
वैठिउ = – २२४
वोमु = – १२६
वाल = – ११८ ४७६
वोलइ = बोले – ५८ १७ १ १
वालण = बोलना – १४१
वोलन = – ४६६,
वोलहि = बोलना – १६८
वोमु = वात – ७१ आदि
वाले = कहना – १७६
वामइ = वाला – १ ६
वाहण = वहाज – १ ८
वाहु = वाव – २११
वध = वाहना – ४२ ७४

वदरण = वन्दना – ७७,
वदणु = वन्दनार्थ – ५१७,
वदन = वदना – ५१६,
वदरा = – २७,
वदहु = वदना करके – १५६,
वदि = ,, – २६१, २६२,
वदिणीजण = वन्दी जन – ८८,
वधइ = बाधकर – ३२६, ४७८,
वधण = वधा हुआ – ३४४,
वधणी = – २८६,
वधि = याधना – ३५६,
वभण = ब्राह्मण – ३७,
वभणु = ,, – ३३५,
ववालु = जोर शोर से – १७५,
वसविद्धि = वश वृद्धि – ६७,
व्यवहरइ = व्यवहार – ३५,
व्याकारण = – ६४,
व्याधि = व्याधि – ४४८,
व्याहु = विवाह – ३२६,
व्योहार = व्यवहार – ३२,

श

शब्द = आवाज – १७५,
शरीर = देह – ११८,
शुक्लज्झाण = शुक्लध्यान – ५२२,
शुखु = सुख – ४१४,
शुद्ध = पवित्र – ५१४,
शुभ = – २८८,
शुहिणालु = दूत का नाम – ४६४,
श्रवण = श्रमण – ५०,
श्री रघुराइ = नाम – ३६५,
श्रीवसतमाला = – २७६,

ष

षण-षण = क्षण २ – ३४४,
षोडसु = सोलह – २४,

स

स = वह – १५७, ३५८,
सइ = उनके, राजा – १, २८०, ३५०
सइहार = सहकार – १६६,
सउ = सो – १६५, २००,
सउकु = उत्साह पूर्वक – ६०, १२५,
सउ घी = सस्ती – २०१,
सउरा = सब – ४०७,
सकइ = कर सकना = ३६२,
सक्कइ = – ५१६,
सकउ = सकना – १७८,
सकरू = शकर – १०७,
सकहि = सकना – ३६३,
सकहु = ,, – ७३,
सकार = 'स' से प्रारम्भ होने वाले –
सकुटवउ = सकुटुम्ब – ३२,
सके = – ४४०,
सखी = सहेली – १०२, २४५, २५६,
सग्ग = स्वर्ग – ३१, ५२८,
सग्गमोक्ष = स्वर्गमोक्ष – ५११,
सग्गवर = श्रवक – ५०७,
सग्गहि = उपसर्ग – ४८७,
सगि = – ५४७,
सगुणु = शकुन – ५७, ४४१,
सगे = – ४०८,
सजण = सज्जन – १११,
सजि = सजना – २५१,
सडि = – ४४८,

सत = सतीत्व – २४७ १ ७ आदि
सत्त तच्च = सप्त तत्व – ५२
सतमाउ = अच्छी तरह (सत्यभाव)– ८९ आदि
सत्तपर = सप्त अक्षर (णमो-अरिहंताणं) – २५१
सत्तावन = ५७ – ५५२
सतिभाउ = – ४१७
सती = – २४७ २५ आदि
सतीत्तं = सतृष्ण – ५ ७
सतूकार = सत के भोजनालय – ११
सत्थ = – १८, ५५९
सत्थवाह = – १
सत्थहि = साथ – १
सत्थु = शास्त्र – ५५
सत्थे = व्यापारी दल – २२२
सद्द = शब्द – १४
सधर = धरा पर – १ ६
सधार = – १८१
सनमधु = सम्मान – १२६
सनि = शनिवार – ११
सनु = – ४१२
सपत्तु = – १४६
सप्पू = सर्प – २२७
सप्तभग = स्याद्वाद के सात सिद्धांत – १४
सफल = फल सहित – १२
सब = सर्व सभी – ४२ ४४ आदि
सबद = – ४४४
सबही = – ४१
सबु = सब – ४ १२४ आदि
सभा = बैठक – ११४ आदि
सभाइ = भाव सहित – १० ११२
सभामइ = सभा में – ११
सभामि = स्मरण कर – २२५ २०५
समचित्त = शान्तचित्त – ४
समच्चइ = – १४५
समरिय = – १४४
समत्थु = समर्थ – ६ ११
समद = समुद्र – १४१ २६१
समवत = अशोक – २६६
समवविजय = समुद्रविजय (भ० नेमिनाथ के पिता) – ८
समवइ = समवी – २६१
समवहि = – २१०
समवी = ज्योंही (वर पक्ष) – १२६
समवत्त = – ४५
समवी = – ४५
समरि = लड़ाई में – ४०१
समलु = – ४१५
सम्मणु = श्रमण साधु – ११९
सम्हारि = संभालना – ११७
समाइ = समाना – १६८ १६६,
समाणा = ,, – २१
समाएह = – १८
समाणिय = समान उम्र की – ६
समाहि = समाधि – ५१ ५१
समाहिगुप्त = समाधिगुप्त – ५१४
समीठु = सुमधुर – १२६
समीप = पास -साथ – १६४
समु = समान – ४० ७४ ४२७
समुम्मयण = – ४ २
समुद = – १ १
समुद्द = समुद्र – १६५, २५४ २६१

साहर = साहूकार – ११८,
साहस = साहसी – २५८, ३८६, आदि
साहसु साहस – १३६, २४२,
साहि = सहारे – ३६७, ५३७,
साहिव्वउ = साधू गा – ५३७,
साहु = सेठ – ३८, ५८, ११३, आदि
साकरे = साकले – १९१,
सामौ = सध्या समय – २१७,
सिउ = से, सव – २९३, ४२६, आदि
सिऊ = – ३८,
सिखवय = शिक्षा व्रत – ५१,
सिखि = – ३८,
सिग्घु = शीघ्र – १५४,
सिगरी = सभी – १२१,
सिठ = प्रसिद्ध – १३,
सिद्धउ = सिद्ध हुआ – २५९,
सिद्धि = – २८७,
सिर = मस्तक – १५४,
सिरघ = शीघ्र – ४६७,
सिरह = सिर पर – ९८,
सिरह = ,, – १५३,
सिरि = सिर – २२८,
सिरी = – २६८,
सिरीखड = श्रीखड – ४७२,
सिरिगुण = – १८०,
सिरिमइ = श्रीमती – २२१,
सिरिमति = , – २५६,
सिरीया = ,, – २७, २५४,
सिरीयामति= ,, – २३६, आदि,
सिरु = सिर, मस्तक – ८, २२९, आदि
सिला = शिला – ३३३,
सिलारूप = शिला के रूप मे – ३३५,
सिलाहु = शिला – ३३४,
सिवदेउ = – ५२८,
सिवपुरि = मोक्ष – ४,
सिहु = साथ – १०२, २९८, आदि,
सिंगारमइ = शृङ्गारमती–२८१, ३४२,
सिंघलदीपि = सिंघलद्वीप – ३९०,
सिंचण = सींचना – १६८,
सिंचि = सींचकर – १०६,
सिंचिउ = सींचना – १६९,
सिंदुवार = – १७४,
सिंह = प्रमुख – ४६५,
सिंहल = सिंहल – ३४०, आदि,
सिंहासण = – ४९०,
सिंहासणु = सिंहासन – ४१६,
सिंहुज = – २८६,
सीखिउ = सीखा – ६५,
सीखी = – ३३३,
सीघर = – ४४१,
सीमा = – ३८, ४७०,
सीयल = शीतल – ५,
सीयलक = ,, – १४,
सीयलु = ,, – ५,
सोया = सीता – ३९९,
सीरघु = श्रीरघु – ३८५,
सील = – ३८,
सीलवत = शीलवान – ६६, ४६६,
सीलु = शीलव्रत – १५७, २५१, आदि
सील्हे = – १८२,
सीवल = सेमल – २६०,
सीस = – ४३०,
सीसइ = – ३९,
सीसे = शिरस्त्राण – ४५७,
सीहहि = सिंह – ३५७,
सीग = – १८४,

सुमरी = स्मरण करना – ११२
सुर सिंह = स्वच्छन्द – २८७
सुउ = सुत – १ २१६
सुकइ = सुकवि – १५, १६ आदि
सुकीठ = कठिनाई से मिलने योग्य–१७१
सुकुमाल = सुकोमल – १ १
सुक्क = शुक्र – ११
सुक्केउ = सुकेतु – ५ ८
सुख =   – ४१७
सुखक =   – ५१४
सुखसरइ = सुख प्राप्त होना – २ ८
सुखसेणवलि = सुखसयनावली – २७५
सुखासण = पालकी – १२१ १२८
सुखि =   – १५,
सुखिया = सुखी होना – १ १
सुगु =   – २२४
सुगुणगुण = सद्गुणों वाला – ४
सुचंगु = भागी भक्ते स्वास्थ्य वाली –
सुचिव = छोड़कर – २२१
सुजाण = सुजान – १ ४
सुजाणु =   – ४४१
सुठ = सुन्दर – १८१
सुठि =   – ४
सुठु =   – १८१ ४१ आदि
सुण =   – २ १ १ २
सुणइ = सुना – ११० ५५१
सुणहु =   – २५
सुणहि = सुनो – १ १ १६१
सुणी =   – २११

सुतउ = सूता हुआ – २७७
सुतधार = सूत्रधार – १ १ १ ६,
सुतधारि =   „   – ७८ ८४
सुतधारी =   „   – १
सुतमउ =   – २७११
सुतारि = सुन्दर तारिका – ११७
सुतु = पुत्र – ८
सुदतह =   – ५१७
सुदत्त = सुदत्त – १८ ५ ६
सुधि = सुलक्षण – २१
सुध =   – ४७१
सुधउ =   – ४६८
सुधि = सुध – ११
सुधउ =   „ – १८
सुधरति = धारण करना – २
सुनत =   – ५४१
सुन्दरि =   – २२१,
सुमहि =   – ५११
सुमइ = सुना – १५७
सुमि =   – १
सुमिउ = सुना – २५६
सुम्हि =   – २
सुपराइ = सुपाव – १४२,
सुप्पहु = सुप्रभ – ५ ६
सुपासु = सुपार्श्वनाथ – ४
सुपियार = प्रेम सहित – ४२ २ २
सुबात = वार्ता – १४१
सुमइ = सुमति – २७४
सुमन्नाहु = सुमतिनाथ – १

सेवाउ = सेवा करना — --- --
सेवा = — १२४
सेप = सेव — ४१८
सीह = यहीं — ४८४ ~ ---- आदि
साउ = „ — २११
सोग = शोक — २८५
सोगु = शोक — ११५ ----- आदि
सोचसी = मरना — ११३
सोजि = घस — १ ---आदि
सोत्तह = सोने का — १८१
सोठियहि = शोभित — १८
सोनवती = — २७७
सोने = स्वर्ग — ११५,
सोपुण = पुन — १८१
सोभाव = सुन्दर वचन — २७१
सोभित = शोभित — १४१
सोम = चन्द्रमा — ११ आदि
सोमदत्त = सामदत्त — १७
सोम = यही — ५८
सोरठी = सौराष्ट्री = ९७
सोलह = ११ — २८१ आदि
सोपह = सामा — १ १
सोपण्ड = स्वप्न — २८२,
सावसु = सोने मे — २१२
सोवती = सोती हुई — ११८
सोवन = स्वर्ण — १ २७२ आदि
सोवह = सोना — १ २
सोवहि = सुशोभित होना — १ आदि
सोवि = यह सोना — ११४ आदि
सोवतिय = सोती हुई — १ ८,
सोहइ = शोभित — ८१ ~ आदि
सोहउ = „ — १४१
साहहि = „ — ५५ १ १
सोहा = — १५
सोहियउ = शोभा देना — ४५,
सो = — १ १
सोवर = सोना — २२५,
सोहो = सम्मुख — ११३
सक = शंका — १०४
सकट = — ४८४
सतदीव = संतद्वीप — ११८
संगहइ = संग्रह — ५४८
संगुम = — ५१८
संघ = — ५ ४
संचल = सिंहल — २
सचइ = संच — ११
सघात = समूह — १११ २२५, ४८१
सचिउ = संचय किया हुआ — ५४
संजमु = संयम — २, ५२१
संठाव = — ५१४
सजुत = सहित — ४७ १ ८ आदि
संजुत्तु = संयुक्त — ४१७ ५ ८
संजुत = — ११
सजोइ = संजोकर — ४१२
संत = शान्त — १८ आदि
सतापु = सताप — १११ ११७ १४२
सति = — २४१
संतिभाइ = शांतिभाव — १
संतु = शांत होकर — १७
सतुट्ठी = संतुष्ट — १७
संदेहु = सन्देह — १ २ आदि
संपइ = सम्पत्ति — ४ आदि
सपत्ति = वैभव — १
सपय = सपति — १४४